

महादेवी का काव्य

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

अब हम छायावाद के वसन्त ऋतु की सबसे मधुर, भाव-सुखर पिकी महादेवीजी के काव्य पर आते हैं। यद्यपि छायावादी युग में कामायनी के समान एक उन्मुख महाकाव्य की भी सृष्टि हुई, पर मुख्यतः वह प्रगीत-प्रबोध युग रहा जिसकी सुतहसी परिणति कला-बोध भाव-व्यञ्जना तथा रस-मूस्य की दृष्टि से निश्चय ही महादेवी के गीतों में हुई है, जिन्हें छायावादी भाव-साधना के युग की प्रेम-साधिका मीरा भी कहते हैं। उनकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित एवं भाव-संस्कार-अनित सुस्पष्टता का छोटक होने के कारण उसमें अन्तःसंज्ञिता धारा का-सा प्रच्छन्न प्रवेग तथा भावना की निगूढ़ गहराइयों मिसली हैं। उनका भाव-जगत् प्रसार का-सा हिम-बिद्ध समरस-गुंम या निरासा का-सा महत्-प्राणता से उद्गमित सागर नहीं है। वह अन्तर्मुखी भाव-साधना के पवित्र अक्षुब्धों से ढीठ तप-पूठ स्पष्टिक-मुञ्ज प्राण-वेतना का रश्मि-कलस मखिर है जो स्वयं उनका हृदय के भीतर का उनका सुवम रत्न हृदय है। वह प्राणों की सञ्चरना से सौरभ-गुंजरित मनोरम सृष्टि है जिसका चाँदनी का प्रांगण चन्दन की भाव भोती गन्ध से निश्चित है। प्रसाद मानव भावना के चिरन्तन संपर्प को युग की पीठिका में उतारकर, मानसी गौरी की भाव मणिमाळा की सोमा पर मुग्ध हो उसका समाधान समन्वित ज्ञान मूय पर अवस्थित आनन्दभाव की उच्च एकान्त व्यक्तिमूर्ती सुमि पर दे नए। उन्होंने निराकार चिन्ता को भी साकार सपुण शिवत्व के ही माध्यम से अभिव्यक्त किया। शिव के व्यक्तित्व के साकार निराकार स्वरूप अधिक स्पष्ट संयोजित होने के कारण उन्होंने सीधा निराकार निःसीम सौन्दर्य-स्वरा को मुख्यतः बीडिक दृष्टि से शरीर प्रतीकों-विषयों के माध्यम से व्यक्त किया और महादेवी जी ने भी निराकार के ही बोध को प्रधानतया भावार्थक दृष्टि की मुक्त सञ्चरना तथा सुल-कुल के सौन्दर्य की रंपीगी के माध्यम से गीतमय मार्मिक अभिव्यक्ति की। उनके भावनाकाण की मेक-वृत्तियों का बंधकर, अन्तर्बोध का रश्मि-बाण बार-बार ध्यात होकर, अपन प्रकाश के बिद्युत्-संघ बरसाता रहा है। हमारे शब्दों में जिस निराकार दृष्टि का निरासा के बुद्धि से ग्रहण कर अपने काव्य-गट में अकठरित किया उसी को महादेवी जी ने भावना-अनित हृदय की अंकार द्वारा कला-वैभव-मण्डित तथा प्रतीक-विश्वित किया उनकी अभिव्यक्ति भीरा की-नी सीधी या निरासा की-सी शक्ति-व्येकित



महादेवी का काव्य	६	सुमित्रातन्त्र पंत
नाम्य-कथा	१८	महादेवी
महादेवी एक सखीका	४२	इन्द्रनाथ महात्म
महादेवी का काव्य व्यक्तिगत	६०	नखबुकारे बाबपेमी
कथा पद्य	७६	विश्वम्भर 'मामब'
शीपसिया	८१	मगन्त्र
मीरजा	८८	विजयेन्द्र स्नातक
महादेवी और प्रकृति	१०६	पद्यमिह शर्मा 'कमसेध
वेदना और कला	११४	कुमार विमल
महादेवी का काव्य	११६	रामरतन भटनागर
महादेवी के रेखाचित्र	१४६	गोपालकृष्ण कौस्त
चित्र-साधना	१५२	जयनाथ 'नसिन'
कवि और काव्य विमलक	१६६	कमलाकान्त पाठक
सौन्दर्यानुभूति	१६०	मानन्दप्रकाश शीश्रिठ
जटीत के चमचित्र	२०	आशा गुप्त
मद्य-चरिमा	२०८	सूर्यप्रकाश शीश्रिठ
स्वप्न-मयाग एक मनोविश्लेषण	२१४	कवम धीर
पीड़ा में प्रेमतरङ्ग	२२०	मधु भारती
परिनिष्ठा पुस्तक सूची	२३१	

न होकर प्रतीकों-बिम्बा का मीलन-सुष्ठुण से अप्रत्यक्ष बनाना करती है। प्रमाण मे भावना का निरपेक्ष रूप मे सुदम विवेचन तथा मूर्त्तिकरूप किया महादेवी न भावना क संबिदों का सूक्ष्म विरूपेण तथा उनक मुक्त-दुःखमय और अधिकतर दुःखमय स्वप्नों क दण का चित्रण किया है। महादेवी का काव्य मुख्यतः भाव-अवेदना प्रधान है अपन दर्शन बोध या मूक्य-बोध को उन्होंने भावनाओं के आरोहण-अवरोहण के लिए स्थापान-मान बनाया है। उनमें मध्यमूर्त्तिक रहस्यवादी अभिव्यक्ति का जो सबसे अधिक प्रभाव मिलता है इसका मुख्य कारण उनका नापी-हृदय का गहन-संज्ञा तथा कालान्ता सामाजिक परिस्थिति की पुच्छभूमि में नापी-जीवन की सीमाएँ ही हैं। इन कुछ परिस्थितियों में अपन भीतर भावनारमक अन्त सन्मुख करने की भावना से अधिक उपयोग उन्होंने रहस्यवादी प्रकाश का अभिव्यक्ति के लिए ही किया है। जो समीपून पीडा या वेदना प्रकाश क मस्तरु मे स्मृति-मी धारण की बहु महादेवी क भावना प्रगण मे अविश्व चहरी तीव्र तथा ममस्पर्शी होकर व्याप्त मिलती है। उनके काव्य का सर्वप्रमुख तत्व बेचना वेदना का आनन्द बेचना का हीनर्य वेदना के लिए ही आत्मसमर्पण है। बहुतो वेदना के साम्राज्य की एकछत्र साम्राज्यो है और कोई मुक्त उन्हें आत्म-विस्मृत या आत्म-नगम्य हान का नहीं चाहिए। मुक्त तो शान्तीही है वेदना ही चिरस्थापी चिरव्यापी एक चिर-स्फुहणीय है। उनकी काव्य-सृष्टि के मध्य आत्माओं पर विचार करने से पहल हम उनकी दृग वेदना मूर्च्छा की आत्म-जागृति पर विचार करते।

महादेवी की ही स्थापनादियों में एतन्नाच बहु चिरगुण भाव-जीवना कवयित्री हैं जिन्होंने नये युग के परिप्रेक्ष्य में राग-तत्व के दृढ अवेदन तथा राग मूक्य की अविश्व ममस्पर्शी सम्भोज अलभुणी तीव्र-अवेदनारमक अभिव्यक्ति की है जिसका कारण प्रैसा मैंने अभी कहा है स्पष्ट उनका नापी-व्यक्तिरूप है। इसका तन्मय उनके निरी वैयक्तिक जीवन में उलगा नहीं है—उनका व्यक्तिगत जीवन का सामाजिक दृष्टि से तथा स्वभाव से भी गन्धुनित ही रहा है। वह एक सम्पन्न घर में पैदा हुईं उनका माता-पिता तथा परिवार का बातावरण भी मिथिल सलून ही रहा। उनकी स्वभाव व्यक्तिकण आशाशाका की पूर्ति क पम में भी कोई ऐग दुःख्य स्वरूपान या बाबाएँ नहीं उपस्थित हुईं फिर मत् अचरणीय बेचना का मसार उन्हें मपन हृदय में बर्षों बसा लिया ? उनका-या विनासी परिणाम प्रिय सामानाश्रिया में इसका नहीं मिलता उनकी निरुद्धन भावाभुन ही प्रसिद्ध है। किसी विनाशप्रिय अवनर या घटना के हृदय-नै समा से ही उनकी हताश्री बर उठनी है और वह हीन में नीच-गार हो जाती है। क्या वह उनके हृदय की वेदना क मुक्त या पात्र अचमुक्तन मान है। गया तो नहीं जान पटना। वह एक प्रख्यात महिला-विद्यालय में प्रथम कुल में आ-नरायण गकारिता है। उन्ही क अविश्व अवनरों तथा आत्म-त्याग से उम मरणा का उद्भव तथा विचार हुआ। अनेक मरणा-तन्मयी मरणों का उन्हें मारण के साथ सामना करना पटना है। जीवन-मरण क प्रति सीकाचार तथा सामाजिक व्यवहार क प्रति उनकी दृष्टि प्रबुद्ध है। कर्वाई रचनों में गाई बीना की शक्तिनी की है फिर वह क्या बात है कि उन्ही ने गिराई मुक्त की विविधवर्गी जीवन परिस्थितियों में कबल वेदना का ही आनी अन्त-व्यक्तिनी कुता ? और उन अपने तन-मन

से अद्भुतों से बहुसाकर अपन सम्पूर्ण उत्सर्ग से उसमें प्राप्त नरकर, समस्त सहानुभूति की उस व्यापकता प्रदान करके तथा अपने कवि-हृदय के अर्धव्य स्वप्नों, और अकल्प सौन्दर्य-बोध से इसका शृंगार-सजाव करके उसको स्यामावारी काव्य के अनिन्द्य कला-वाक्य के शासनरूप के भीतर एक अद्भुत निराकार प्रीति-प्रतिमा की तरह प्राप्त प्रतिष्ठित कर दिया। निरवयव ही यह व्यावहारिक वयार्थ के अर्थात् के प्रति कर्तव्यनिष्ठ महादेवी का रूप नहीं है—यह उनके सूक्ष्म अन्तर्गत के बेतन उपवेतन सूक्ष्म-वेतन स्तरों में व्याप्त उस चिरन्तन भारतीय नारी उस आने वाली विषय-नारी का रूप है उस अज्ञेय राग-रास की अन्तस्तप्त स्वप्न-सौन्दर्य मूर्ति चिरहृदय उपपुत्र सूक्ष्म-सुन्दरतम परमात्माओं से निर्मित बिराट प्रतिमा का रूप है, जो विश्व की या सृष्टि की प्राण-पीठिका पर अनादि काम से प्रतिष्ठित है। जहाँ प्रसार के रूप में स्यामावाद ने भारतीय संस्कृति का अमृत चम इस युग को दिया निराशा न समस्त देह-मान-मन तथा बायथिक इन्द्रों से ऊपर की आराम प्रमोति का निराकार स्पर्श दिया वहाँ महादेवी न इन युग के लिए इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उस राम-मूल्य की प्रच्छन्न गूढ़ अन्त-सत्ता की और इगित किया जिसके बिना आप वासे युग के वयार्थ का अल्पि-पत्र प्राण रस-सौन्दर्य तथा मानव हृदय के प्रम स्पर्श से बन्धित रहकर केवल एक किमाकार वामन-सा ही नवीन युग की पीठिका पर अट्टहास करता होता। भले ही महादेवी ने उस मूल्य को केवल संकेतात्मक और कहीं-कहीं पर निष्ठात्मक या निषेधात्मक अभिव्यक्ति ही हो। सूक्ष्म भाव-प्रपण महत् राम सम्मोहनमयी महादेवी की इस वेदना के मूल भारतीय संस्कृति में महरे अत्यन्त महरे पैम हुए मिलते हैं। हमें अपने मध्ययुगों के जीवन में एक सश्लिष्ट दृष्टि डालनी होगी कि कैसे यह राम की आहारिनी-सक्ति अकथनीय अगाध वेदना-संघन म बचन गई और इनके क्या कारण थे? किस हृदय तन मध्ययुगीन जीवन या काव्य राग बतता के विकास में सहायक हा सका और कहीं उसके लिए परिस्थितियों के सौहृ कपाट अट्टहास मिस।

प्रथम चित्र हमारे सम्मुख राम-युग की सांस्कृतिक मान्यताओं का माता है, जिसमें बतबर और महर्षियों के जीवन की तुलना में कृषि जीवन के स्थायी परिवेष में राग मूर्तियों के लिए एक सामाजिक मर्यादा, एक स्त्री-पुरष के सदाचार आदि की भूमिका मिलती है जिसने राग भावना के विकास, कितरग तथा परिवर्तित के लिए एक व्यापक मुक्त नैतिक पीठिका प्रस्तुत की। सदियों तक यह नैतिक-सन्तुलन मानव-समाज के अन्तर्गत वयर्ष को अपनी मान्यता के अंकुश से प्रसस्त राजपथ पर परिचालित करता रहा। सीता राम की युग्म भावना के पावन सात्विक स्थिति प्रांगण पर राम-वेदना अपने धीम-मग्न सज्जाध्य चरण बढ़ाती रही। उस युग के निषेधात्मक की राजमणि इतनी निर्मम थी कि दन्तकथा ही सही पर एक भोरी के संका प्रकट करने पर, भारतीय गृह्य जीवन-मर्यादा की रक्षा के लिए वी राम ने निष्पन्नक सीताजी का भी परिष्कार कर दिया। यह आत्मीय रामायण का चित्रपट है। किन्तु इत्य-युग में न जाने कहां से और कैसे एक अविशेष हृदय मन्धित करते वाली, मयमपुर बंधी-बन्धि मुनाई पड़ने लगी। अन्ततः तन इत्य-युग अपनी आधिक राजनीतिक सांस्कृतिक आर्थिक सौन्दर्य-बोध सौंद-बीब आदि की सात्विक राजस मान्यताओं में पूर्ण विकसित एवं पुष्पित-

पस्मिन्न हो चुका था और राग भावना राम-युग के नैतिक प्रांगण की सीमाओं के भीतर मात्र थी। तथा नीला-नृत्य करती हुई जब अपने विकास तथा अभिव्यक्ति के लिए 'दुमरी भाव भंगिमा तथा नील्य-श्रेयसा की प्रतीक्षा में थी— क्योंकि निरन्तर अमल विद्याम-शमता ही का नाम जीवन है— कि सहसा रस-रूप कृष्ण का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति के राग-प्रासाद में व्यक्त होता है और राम-युग की मर्यादाओं के तटों को छूने हुए, राम-भावना सौन्दर्य शोच तथा रसाह्लाद का एक अमूर्तपूर्व तबीन प्सावन भारतीय मर-गायियों के जीवन में उपस्थित होता है। गृहस्थ की देहरी से बाहर निकलकर गावों की रैमाठी हुई गायियों-नील-मन की मुभि भूलती हुई गई बंसी-स्वनि पर मुख्य राग भावना सुन्दान के सीमित क्षेत्र ही में सही महामारत से लेकर अयदेव के भीत-गोविन्द' तक और पीछे रीति-काव्य के युग में मुक्त अभिव्यक्ति पाती रही। किन्तु यह निरवस्थापी राग-सिन्धु का उद्वेगन क्या उस युग के घट में समा सकता था? कृष्ण तो उस युग का एकीभूत अन्त-स्थित व्यक्तित्व थे। उनका चैतन्य तो लोक-जीवन की छिद्रि या व्याप्ति तक नहीं सका था। निदधय ही वह राम-संचरण कागमा और जीवों के रूप में बँधकर कृष्ण-संगियों की सीला के रूप में सामबरय पाकर, एक वैयक्तिक सामजायत सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूर्त बनकर रह गया। राम जिस प्रकार सामाजिक-परमबोध या सामूहिक मूर्त के प्रतीक हैं कृष्ण उगी प्रकार परम व्यक्ति-मूर्त के प्रतीक हैं। साथ ही उस रागोत्थान को तत्कालीन बाह्य परिस्थितियों की सीमाओं के कारण एवं समदिक लोक-जावन में अभिव्यक्ति न मिल सकने के कारण उनका एक दुसरा पक्ष फिर बिरह-मूर्ति राधा के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है। कृष्ण-युग के राग-नाटक को विपत देह मूर्तों के लुप के दोने में सौभानकर रचना सम्भव नहीं था— क्योंकि अपने विकास के निगर पर भी कृष्ण-युग की बहिर्गम परिस्थितियों की सीमाओं में प्रकारान्तर उपस्थित नहीं किया जा सकता था। अतः कृष्ण-युग ने राजतरव के आध्यात्मिक मूर्त-संकेत को तो रबीवार किया पर जीवन तथा प्रायो के स्तर पर उमका उपभोग करने के लिए उसे सामूहिक के बदल वैयक्तिक रूप प्रेम-साधना का विषय बना दिया और राग-वतमा के विरह-रूप एवं परम वतना के एवास्थित तद्गत अन्त स्वरूप के प्रतीक या साक्षर होते हुए भी कृष्ण और राधा के व्यक्तित्व में कृष्ण-युग के परिस्थिति-सीमित देह-मूर्त को भी रबीरुन बनना जैसे उस युग की विद्याता एवं बाधना थी। नहीं तो रामयुग के बदल्य वेग को न रोक सकने के कारण लोक-जीवन में घोर अनाचार फैलने की अनिवार्य सम्भावना थी। फिर भी एक दूमने ही परिश्रेय में कृष्ण और गोविन्द की क्षेत्रीय भूमिका में उग रागतरव की विद्यता पावनता एवं विरह-मूर्त को प्राणों के स्तर पर भी उस युग का रबीरुनि देनी पड़ी और व्यक्तिगत रूप से उम परम राग-भिरता या 'रमो वै त कृष्ण तरव ही प्रकपापना के लिए जीवन की भूमिका के बन्ते मरुभाष की भूमिका ने व्यक्त किया।

महामारत के बाद भारतीय संस्कृति में हास-विषय के बिज् उपस्थित होने लगे थे। ब्रह्म के उदय तक भारतीय वैयक्तिक-वर्माशाखा विधि विधानों की महोभंता में अहीमृग हो गया था। ब्रह्म का विधान एक उन्नत नैतिक आत्म-साधना का एक इमी के प्रति बिश्रोह था। ब्रह्म के आत्मन के बाद ही भारत भूति तिन अबाधनीय बाधना की आक्रमण

भूमि बनकर पराधीनता के पाप में डूब गयी और कब और कैसे उसकी ज़ारी समस्त रायभाषना की विभूति को समेटकर मध्ययुगीन गृहस्थ के कटबरे में गुलित होकर, फिर भ्रमर्ष में बली गई, कब रीति-काव्य की भूमिका में परकीया अभिसारिका, विप्रसम्भा क्षणिकता आदि नारी-रूपों में उसने पुन अग्य लिया और प्रेम की प्रतीक्षा में रत हुआय उत्पन्न उच्छ्वसित, विरहिणी के अस्वि-संज्ञ ने सौख्य-भावना को अविहृत कर लिया इस सबसे आप अच्छी तरह परिचित हैं। मही मध्ययुगीन भारतीय राय भाषना का निरूह कृष्ण एव देह-बोध मुच्छित साहित्यिक स्वरूप तथा इतिहास रहा है। और इसी रागतत्व के मर्मरसी उद्गमन एव बायरन की प्रतिनिधि गायिका बेदनामूर्ति कवयित्री महादेवी हैं जिन्होंने विरहभय प्राण-पुष्प की मोपन रहस्यमयी बंदी-ध्वनि का आम त्रय स्वीकार करके रस-सागर की उत्तम तरंगों में बहती-उतरती अवुस्य-स्वसं से रोमभित होती हुई, भारतीय मध्ययुगीन राय-वतना राधा की विरह-रग पीड़ा विप-मूर्च्छित बेदना की आनन्द मूर्ति निष्कमुप 'दीपसिता' को तरह बहरह जसती हुई, प्रीति-साधना को पुन अपने काव्य के चित्रपट में अभिव्यक्ति की है। और यह राधा की प्रेम-वेदना जिसे सबह छोड़ सक्ती है, न भुसा सक्ती है न बीत है। सक्ती है प्रत्येक भारतीय नारी के भीतर, युग-नाये तथा विरह नारी के भीतर आज नबीन संवेदनों में प्रकट हो रही है। भारत ही मही समस्त विरह में काव्य और साहित्य मही नहीं आधुनिक मनोविज्ञान और हृद्यन में भी एवं क्रायड आदि के उन्मत्तन-अवेतन मन के उचित प्राण आरों तथा निबिबो केस्तरों ग्रन्थियों आदिके विरस पत्र में भी यह रागतत्व नये विकास नये सामाजिक चित्रण नये स्त्री-मूर्त्यों के सम्बन्धों क निरूपण में प्रकट होने क लिए अपने स्वय को बोधित कर रहा है। उन्मीलनी मदी का स्वच्छन्दतावाद भी इसी से प्ररित है। रागतत्व का मया मूर्त्याकन नई नारी का उदय भविष्य की अवरसंसादी सम्भावनाओं में म है। राग-भूत्य की मायी अरुभारया टपकी सामाजिक परिणति उसके आध्यात्मिक नैतिक प्राणिक एवं मनोवैज्ञानिक पणों का पुन मूर्त्याकन स्त्री-मृदय के मायी वैयक्तिक-सामाजिक सम्बन्ध आदि ऐसे गम्भीर तथा व्यापक गृहस्थ के प्रश्न इस युग के उत्पान के साथ उदय हुए हैं कि जिनके बारे में विस्तार से कहन और उस विस्तार का स्वरूप एवं मूर्त्य-निरूपण कान में अभी मनेक वरक और सम्भवत पाती नि-रोप हो जायगी। इसका संक्षिप्त चित्रण मने आज की युगमूर्ति से जहाँ तक सम्भव हा मया है 'भोकापतन में भी किना है किन्तु यह सब कहने से मेरा तात्पर्य यह है कि माध-अरुण महादेवी की काव्यात्मक वेदना का कारण हमें आत्मा-परमात्मा मन छोडकर वर्तमान अविश्वसित संकीर्ण मरजागमुखी सामाजिक यत्नार्थ क निर्मम-संस में तथा मायी वाद्यों के स्वर्ण में खोजना चाहिए। उनकी कवि-दृष्टि अत्यन्त संबिदनशील तथा काव्य-साधना अत्यन्त प्रच्छन्न रही है। काव्य-भूमिका की दृष्टि से यह हमारा युग की प्रेमयी है जिन्होंने राधा तथा मीरा की तरह नये वैतन्य-बोध का स्पन्द पाने तथा उन्म में तन्मप हा जाने के लिए भावनिष्ठ हृद्यन म वेदना का बूटे पीकर, प्रेम-भावना की है। यदि आप महादेवी को बीडमिदुर्णा या किरिचयन मन या इत्यम युग की मोपिका या मरुपुण क गृहचित्र में बड अरुपुच्छिता देह-बोध हीमिड ननी नहीं बनाना चाहते जिसे तुपयो- 'माधम' में अनुभूया उपदेष्ट वैती है, और जिन मध्ययुगीन गृहस्थ की सीमा में न अं सक्ते

के कारण उन्होंने स्वतः उससे बाहर निकलकर, उस प्रेम वा राम भावना की पीड़ा-सीतलस चन्दन-शक्ति आराधिका बनना स्वीकार किया जो गठ युगों के इन सभी नारी-रूपों या राग-मूर्तियों का अतिक्रमण करके तर-नारी के जीवन के लिए तथा सामाजिक परिवेष्ट प्रस्तुत करना चाहती है और यदि हम उनकी काव्य चेतना को या उन्हें एक स्वल्प नव जीवन-उत्प्रेष से भरी युग प्रकुण्ड धाने वाली नारी के रूप में देखना चाहते हैं तो आपको यह मानना ही पड़ेगा कि उनकी इस निगूढ़ मिथीम भाव-वेदना का कारण निश्चय ही इस निश्चय-व्यापी राग-अवेदन का गभीर आह्वान तथा उद्वेगन है—उसने सामाजिक गूँदगा की कठियों के दुःसह बोझ के कारण भसे ही कैसी ही प्रकल्पन अभिव्यक्ति उनका काव्य में पाई हो। त्रिभु प्रकार उनके समस्त या अविनाश काव्य का आसीनका ने मध्ययुगीन रहस्यवादी निवृत्तिमूर्ती बृत्ति से मूर्त्याकन किया है उसे मैं इस बीती जागती मानती हूँ, त्रिभुके रूप का प्राणनात स्वल्पन भतीन के सब कविबस्त वन्दनो को छिन्न भिन्न करने की क्षमता रखता है निश्चय ही महान् अन्वय समझता है। उक्त हमें मध्ययुगीन की पीठिका से हटाकर इसी युग के बाहरी-भीतरी बौद्धिक हादिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक सगुण मर्मस्पर्शी मोहव्यापी प्रभावों की ठरिमष्ट सप्रतिभ भूमिका पर गहरा कर देखना चाहिए।

यह ठीक है कि जगहाने पत्र-तत्र मध्ययुगीन रहस्यवादी अभिव्यक्ति के प्रभावों को दृष्ट करके उक्त छायावादी युग के अनुरूप नवे प्रतीको एक विम्बो में हातकर अनुस्यू मूर्त के प्रति अपनी गौर उमक अभाव की पीड़ा और भाये चलकर उतने भीतर में एक नई भास्या भागा तथा अपने ध्येय की विजय का वाली भी है, पर इतसे उन्हे कबीर या मीरा की बक्ति में उतने पीछे नहीं पिछाया जा सकता। जायरन की बेसा मे ऐसे प्रभाव गभीर छायावादिता में कम-अधिक माया में पडे हैं जो महादेवी में अधिक विगाई लेते हैं पर जो इन तरह समझ करते हैं कि उन्होंने अत्यन्त दूड और बुद्ध भी समझे जाने वा न राग-अवेदन या प्रेम-अवेदन को अपनी काव्य-वस्तु के लिए चुना—और नारी होकर बह न चुनती तो और कौन चुनता? कि उनकी इसी नारी की स्थिति ने उम अभिव्यक्ति का भीर नी रहस्यमयी बना दिया। उन्होंने अज्ञान प्रियतम की बात कही है उमके लिए उनका प्राणा में व्याप भी मयसी है उनका स्वप्न-दर्शन या स्वप्न भी उन्हे कभी मिता है और बीच में बह रानी जो भी गया है पर यह अज्ञात प्रियतम तो बह प्रेम-मूस्य या राम मूस्य है त्रिभु उन्होंने निवृत्ति के जानन् में मण्डित न करने प्रकृति की पीड़ा के माध्यम में व्यक्त किया है जो उनका युग का आघट्ट था। और आप यदि मध्यापक अर्थ की बृत्ति गकीर मीरा आदि मन्ना तथा मध्ययुगीन भवता के काव्य-तरता प्रतीरा विम्बो का विचारा करें तो उन्हे और अन्त-मय में कविता को भी आप गयी रग-मूस्य की गान्ता में निरन पायेगे त्रिभु की अनिवाय उपोदिता व्यापन गौर जीवन तथा विर मय के लिए है त्रिभु आन मीरदर रम-मय के बिना इन महान् वैशानिक युग या सांदिह मानाजिक वाता भी जगती ही बुद्धि-विरलेता की नवाचीय में अन्त-मयि पत्र प्रम अन्तर्गति मन्तर आदता तथा अन्त-गन्तुमन के अभाव में कभी भी अपने ही गान-गान के कारण त्रिभु अन्त-मय में अन्त-मय गयता है। विर जीवन में प्रवर्तित

उसकी गति देने वाली उसमें संयोजन भरतीबासी अन्तरात्मा का ही नाम रस-शैतन्य या रासतत्त्व है। यह दूसरी बात है कि मध्ययुगीन मिथिस्थ सामन्ती जीवन-परिस्थितियों के कारण जब तक विज्ञान ने अड़ की प्रगति नहीं लोमी थी रस-ईश्वर को जो अपने में पूर्ण, किन्तु अपनी सृष्टि में विकास के पक्ष में है जो सृष्टि न रखकर स्वयं सृष्टि में प्रसरित है जो कृष्ण-शैतन्य से भी विकसित तत्त्व है, उसे बिबन-जीवन में संयोजित एक मूर्त करना तब सम्भव नहीं था। ईश्वर या परमात्मा या परात्पर आदि ब्रह्म के रूपों को बिबन-जीवन से बिच्छिन्न मानकर केवल आत्मा के बराबर पर उन्हें परम सत्य के रूप में मानना तथा निवृत्ति-पक्ष की साधना से उस चरम बोध-बिन्दु के स्पर्श या साक्षात्कार को जीवित रखने की व्यक्तिवारी पद्धति मुख्यतः बुद्ध के निर्वाण-रक्षण की भारतीय दर्शनों में परिणति के स्वरूप में तब प्रथमित हो गई थी किन्तु धार्मिकार्थिक सार्वभौम सत्य इन साधकों और संतों का भी उस उच्चतम सत्य को बिबन-जीवन की संयति में परिणत करने का ही रहा है जिस न भस ही तब न जानते हों। बाह्य जीवन-मति में ईश्वर को प्रतिच्छिन्न न करने की अममर्षता के कारण उस आत्म सत्य-बोध को पीढ़-दर-पीढ़ी जीवित रखने के लिए ही वे प्रकाश-बाहकों की तरह केवल उच्चतम परोल-बिन्दु के रूप में उसका प्रचार करते रहे। मैं युग-युगों के संस्कारों की भूमि से मरी इस नैतिक-व्रतन से ओढ़ी गई सामन्ती-मूर्तों की चरित्रा को स्यों-की-र्यों नहीं छोड़ देना चाहता इस व्यापक प्रकाश में बोकड़ मये युग क अनुबध राग-भावना में रमित दगना चाहता हूँ। वैसे भी स्वकीया-परकीया से परे सामाजिक वीस धीन्वर्ष की भूमि पर प्रतिच्छिन्न स्त्री-गुण्य की प्रीति-मुक्ति की रस-प्रतिमा को ध्वजदप तथा सामाजिक संस्कार तथा मूर्त्य देना है। यह एक दीर्घ प्रक्रिया भले ही हो और इसकी कई स्थितियाँ भी हों पर गत सामाजिक विज्ञान में जड़ीभूत रास-शैतना को नवीन रूप से जीवन-सक्रिय हाता है और मये बिबन को नवीन धीन्वर्ष-बोध तथा धक्ति से प्ररित करना है इसमें मुझे मग्गह नहीं। महादेवी के काव्य का उद्देश्य निवृत्तिभूतक आत्मा-परमात्मा से मिलन को मानना उनके प्रेरणा-स्रोतों को बिसकुल ही न समझने के बराबर है। उनकी-नी पीढ़ा मीरा-कबीर किमी में इतनी भाषा में इसलिये भी नहीं है कि चाहे मान-वच न हो चाहे भक्ति-पक्ष से केवल व्यक्ति-मुक्ति चाहते रहे हैं और महादेवी का युग सौर-मुक्ति का, बाण्ड्य दैत्य बुग्य अक्षिरा अन्वकार तथा सदाकित स्त्री-युक्तों की परस्पर महानुमृति से पीड़ित असंयों की संघ्या में बिबीन भोक-जीवन की मुक्ति एवं पुनर्निर्माण का युग है इसलिये उनकी प्रेरणा का स्रोत मध्ययुगीन जीवन-दृष्टि में होना सम्भव नहीं हो सकता। इतना अर्थ है वह मध्ययुगों की केवल अनुपूर्व या प्रतिध्वनि भर रही। मध्ययुग या दन युग के जीवन-दशात को सम्पक दृष्टि से समझने के लिए सामाजिक परिस्थितियों एवं परिवेश का मान अनिवार्य है उसके बिना वर्णन का सत्य जीवन-गुण्य रिक्त प्रकाश भर है।

महादेवी ने अपनी मुनिमार्गों तथा बिबेपनात्मक मठ में ध्यानावाट रक्ष्यचार तथा अपनी अनुभूति के बारे में जो कुछ लिखा है उसे ध्यान में रखते हुए भी मैं उनके नाय-तत्त्व एवं काव्य-वस्तु के प्रति अपना एक पृथक दृष्टिकोण रखता हूँ तथा उसे यथार्थ पर साधारित मानता हूँ। यह सम्भव है कि रामारमक मूर्त्य की सृष्टि उन्हीने घनीभूत

बेचना के रूप में उसके बौद्धिक मूल्य के प्रति अपरिचित रहकर केवल अपनी अन्तःप्रेरणा से
 की हो रही है। उनके प्रतीक-विधानों में पौड़ी-बहुत सजाव-सम्बन्धी कृत्रिमता होत हुए
 भी उनकी रहस्यमयी बेचना की अभिव्यक्ति में गहरी स्वाभाविकता मिलती है। उष्ण
 कोटि की सृजन-प्रक्रिया के लिए मूल्य का बोध अनिवार्य आवश्यकता नहीं भी हो सकती
 युग बेचना के मातामरुत में ऐसे अनेक सूक्ष्म-स्फूर्त तत्त्व व्याप्त रहते हैं जो स्रष्टा या कला
 कार को अज्ञात रूप से लक्ष्य की ओर प्रेरित करते रहते हैं। और वह कवि की सुदम भाव
 प्रवणता तथा बहुत संचित-शक्ति पर निर्भर करता है कि वह युग की अन्तःप्रेरणा के
 संकेत को कितीनी गहराई तथा व्यापकता से ग्रहण करने की समता रखता है और उसका
 कला-बोध उसे कितने सक्षम सम्प्रेषणीय उपकरणों के माध्यम से मूल्य की अन्तःप्रेरणा को
 अभिव्यक्ति के सौन्दर्य से वेष्टित करने में सफल होता है। बहुत सम्भव है अपनी बहिः
 जीवन की व्यस्तता एवं व्यपता के कारण वह सुदम प्रकाश-विम्ब अथवा उपोधि-विष्णु अथ
 बाह्य जीवन प्रभावों के भ्रम से बाधित होकर सृजन-सक्रिय भी न रह गया हो अथवा
 उसकी ध्यान अन्तरपट से मित भी गई हो पर ऐसा प्रतीत नहीं होता। सम्यक अन्तःपरि
 स्थिति तथा एकाग्र एकाग्रता मिलने पर वह पुनः अधिक प्रभावोत्पादक रूप से व्यपत एवं
 रचनाशील हो सकता है। यह जो भी हो छायावाद को और विशेषतः महादेवी की
 रहस्यमयी अभिव्यक्ति को मध्ययुगीन निष्कृतिमुल्लो वैयक्तिक साधना की रहस्यवादी भूमि
 पर रखकर देवता समीपकों की अपने मूल के प्रति अप्रवृत्तता तथा मध्ययुगीन मायताओं
 से बाधित मस्तिष्क एवं बुद्धि का ही शोक है। मध्ययुगीन में जिसे युगीन से अज्ञित
 भारतीय अन्तःप्रेरणा का बीजन्त श्रोत मूल्य था और उसके स्थान पर केवल विधि-विधान
 के तर्कों के बीच बेचना-पारा के पठित सूक्ष्म विज्ञ ही शेष रह गए थे। मनुष्य केवल
 अर्ह-वेगित है-मूल्य का प्रतीक व्यक्ति-मात्र रह गया था और व्यक्तिगत पाप-मूल्य की
 भावना से पीड़ित एवं महत् सामाजिक विकास की भूमि से विच्छिन्न होकर, आत्ममुक्ति
 परमात्मा तथा स्वर्गकामी बनकर द्विज जीवन से असम्बन्ध परोत तत्त्व की ओर उन्मुख
 हो गया था। निश्चय ही अपनी समस्त कल्पना बेचना संवेदना आत्म-विसर्जन अथवा मर
 मिटन की भावना को लेकर भी महादेवी की काव्य-दृष्टि इती महान् विस्तारबेचना से
 स्पन्दित सौम्य-संभवोन्मुखी तथा समानोन्मुखी है। उसमें एक प्रचलन आत्मा का सम्बन्ध
 तथा नये जीवन प्रमाण की अवधिमात्र भी सौन्दर्य है। वह विपत सामाजिक राय-मूल्यों
 के बन्धनों अथवा-अर्थियों की श्रृंखलाओं से मुक्ति भी चाहती है जो उनके काव्य से अधिक
 जिनमें वह शरीर-मर्त्या के प्रति अधिक लगन है—उनके लक्ष में सबसे छाहगी वाली
 पात्री है। उन्होंने अपने काव्य में जिन गहन-बुद्ध रागात्मक दृष्टि की समंभरी बदना को
 अभिव्यक्ति की है उनके बिना नये मूल्य का एक आपात ही अंधारा रहता। उनके काव्य
 से प्रभाव की-सी मारकता निराशा की-सी क्षति का परिभव न मिलता है। पर उनमें जो
 एक अन्तःप्रेरणा पीड़ा (सादृशिक वेद) की अनुभूति है वह राग बेचना तथा प्रेम भावना
 के प्रति परबल-भूत अकथित तथा निष्कृ-अज्ञान गायनीय तत्त्व की अन्तःप्रेरणा सादृशिक
 वाली देने में लक्ष्य है। महादेवी भारत में पैदा हुईं और उन्होंने प्रेम को अन्तःप्रेरणा
 अभिव्यक्ति की वह बरिचय में होतीं ता सम्भवतः इन लक्ष्य में मिलेक जाउदिय २-२०

प्रपीठ मिळती, जिससे राम-राज के गम्भीरतम अन्तमूख्य पर—मैं आध्यात्मिक मत्स्य ज्ञान-बूझकर नहीं कह रहा हूँ कि उससे छिद्र रहस्यवादी भ्रम न कैंने—प्रकाश नहीं पड़ता। परिचय की बहिर्मुखी प्राप्ति की भूमि पर प्रतिष्ठित राग-मूख्य का अन्त-संस्कार होना है, नहीं तो वह काएद्विमत उपचेतन अबचेतन अन्धकार के गर्तों में गिर सकता है। रामात्मकसत्य के नये मूख्य तथा मई सामाजिक मान्यता के अभाव के कारण आज हमें बीटनिकस हंप्री जगरेणस तथा अन्यथा कवितावादी आदि का अचोमुखी-विद्रोह देखने को मिस रहा है। उनमें युग-तम्य का भसे ही एक अंश वर्तमान हो पर इसमें सन्धेह नहीं कि उनकी आस्था दिग्भ्रान्त है। रागमूख्य को वेह की संकीर्णता से ऊपर उठाकर व्यापक सामाजिक भूमि पर प्रतिष्ठित करता है जिससे उसका बहिर्-संस्कार हो सके। इसी ध्यावावादी कवियों ने अपने-अपने ढंग से राम-मूख्य के उन्नीत सौन्दर्य को अपनी काव्य-वस्तु में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नारी को उसका प्रतीक बनाकर उसे मध्ययुगीन बहु-बोध तथा राग-श्रेय की संकीर्ण कामाग्ध वैदिक कारा से मुक्त कर, नवीन राग-जनता की सौन्दर्य-मिथ्या के रूप में अपने मुक्त उन्नीत भाव-स्वप्नों से उसकी नवीन मूर्ति निर्मित कर, व्यक्ति-मोह के घरातल से उठाकर विस्तृत सामाजिक बरातल पर लोक-जीवन मपल कर्म म सप्तम मामबी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। ध्यावावाद की यह अमूख्य रेल लोकमानस के लिए है—वह केवल रोमैण्टिक स्वप्न-व्यवस्थावादी भ्रम-मुक्ति का ही संदेय बाहक नहीं रहा उसम उस मुक्ति को एक उच्च सामाजिक बरातल भी प्रदान किया है। वीसा सम्भवतः मैं पहले भी कह चुका हूँ महादेवी के काव्य में ध्यावावादी अभिव्यजना तथा भाववस्तु ने अपनी पूर्णता प्राप्त की उसम ध्यावावादी स्वप्न-दृष्टि का सौन्दर्य तथा ध्यावावादी बुद्धि भावोच्छ्वसित हृदय की बद्धकन अधिक सूक्ष्म होकर अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ती है यद्यपि उसमें ह्लास के चिह्न भी उतने ही स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। उनके काव्य के और भी अनेक पदा हैं पर उनकी मुख्य बन की ओर मैं ऊपर संक्षेप मं संकेत कर चुका हूँ। अन्य ध्यावावादियों की तरह उनके प्रतीक विम्व-विधान सांसादिक संकेत तथा प्रकृति चित्रण के अनेक जायाम रहे हैं जिससे कभी ताशात्म्य प्राप्त करके कभी उस उपकरण बनाकर उन्होंने अपनी अभिव्यजना को सौन्दर्य-शील तथा ममस्पर्शी बनाया है। उनके काव्य में विरव-नारी क अवुप्त-भ्रम अतिक्रियत राग-भावना की विद्रुह हृदयानुमूर्ति है। उनकी दृष्टि अन्तर्मुखी तथा वैयक्तिक ही है जो उनकी भाववस्तु के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। सामूहिक जीवन का महत्तम एवं उच्चतम सवेदनों का वैभव विवियत उन्नीत व्यक्तित्व-दृष्टि ही प्रदान कर सकती है। महादेवी की काव्य-दृष्टि का भी विकास हुआ है। शीपसिता में उनकी 'आमा की बरना जितन-गम्भीर तथा आवासीय हो गई है।

वेदना के रूप में उसके बौद्धिक मूल्य के प्रति अपरिचित रहकर केवल अपनी अन्तःप्रेरणा से
 की हो इसीलिए उनके प्रतीक-विधानों में पौड़ी-बहुत सजाव-सम्बन्धी वृद्धिमत्ता होती हुए
 भी उनकी रहस्यमयी वेदना की अभिव्यक्ति में बहरी स्वाभाविकता मिलती है। उच्च
 कोटि की सूत्र प्रक्रिया के लिए मूल्य का बोध अभिवाय आवश्यकता नहीं भी हो सकती
 युग-वैतना के बातावरण में ऐसे अनक मूल्य-रूपन तरह ब्याप्त रहते हैं या सप्टा या कता
 वार का अज्ञात रूप से सत्य की आर प्रेरित करते रहते हैं। और यह बलि की मूल्य भाव
 प्रवणता तथा गहन संवेत्ता-व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह युग की अन्तःप्रेरणा के
 सत्त्व का किन्ती गहराई तथा व्यापकता से ग्रहण करने की क्षमता रखता है और उमका
 कता-बोध उन किन्त सहाय उपप्रेषणीय उपकरणों के माध्यम से मूल्य की अन्तःप्रेरणा का
 अभिव्यक्ति के सौन्दर्य से विलिप्त करते में एकत्र होता है। बहुत सम्भव है अपनी बहि
 र्भाव की व्यस्तता एवं व्यग्रता के कारण वह मूल्य प्रकाश बिन्दु अथवा उपोति-बिन्दु अथ
 वाच्य जीवन प्रभावों के धूम से आच्छादित होकर सुजन-मन्त्रि भी न रह गया हो अथवा
 उमकी छात्र अन्तःप्रेरण से विट भी गई हो पर ऐसा प्रतीत नहीं होता। सम्भव अन्तःपरि
 शिष्टि तथा एकाग्र एकान्त मिलन पर वह पुनः अधिक प्रभावोत्पारक रूप से जाग्रत एवं
 एकाग्रता से सजता है। यह जो भी हो छायाकार की और विवेकत महात्मी की
 एकाग्रमयी अभिव्यक्ति को मध्ययुगीन निवृत्तिमुगी वैयक्तिक साधना की एकाग्रमयी भूमि
 पर एकतर दैवता गमीदाकी की अपने मूल के प्रति अग्रबुद्धता तथा मध्ययुगीन मायनाया
 से आच्छादित मस्तिष्क एवं बुद्धि का ही चोकर है। मध्ययुगीन में विद्वान् सुषो से अन्तः
 भारतीय अन्तःप्रेरणा का जीवन शोभ मूल्य तथा और उमके स्थान पर कथन बिबि विधाना
 क गतों के बीच वेदना-यात्रा के गतिरुद्ध गुणकिया ही सेन रह गए थे। अनुप्य अन्तः
 अह-व्यक्ति रह-मूल्य का प्रतीक व्यक्तित्व-आन रह गया था और व्यक्तित्व पाठ-व्यक्त की
 भावना से वीरिन एवं मरुत्ता सामाजिक विधान की भूमि से विविद्यन्त होकर आत्ममूर्ति
 वाचक तथा स्वर्गवासी बनकर विन्य जीवन से अग्रबुद्ध परीक्षा सत्य की और उम्युग
 हा गया था। निरपय ही अपनी समग्र कल्पना वेदना गवेदना आत्म शिखर अथवा मर
 मिन्दे को भावना को लेकर भी महादेवी की वाच्य-व्यक्ति इसी कलात् विनयकता से
 व्यक्तित्व शोच-अवसायमुगी तथा समावायुगी है। उमसे एक प्रचलन आत्मा का समग्र
 तथा अने जीवन प्रमाण की अरुणता का भी योग्य है। वह विगत सामाजिक राग-व्यथा
 क वाचनों अन्तःप्रेरणों की भूतनाभाव मुक्ति भी चार्ती है या उमके वाच्य से अन्तः
 विगत वह शरी-अवसाय क प्रति अधिक सजाक है—उमके सत्य में सत्य गार्गी वाणी
 पानी है। उमके अन्तःप्रेरणा से विन सत्य-अह रागात्मक इष्ट की समंभरी वेदना का
 अभिव्यक्ति ही है उमके विना अह मूल्य का एक अन्तःप्रेरणा है अन्तःप्रेरणा। उमके वाच्य
 से सत्य का-भी आवाजा निशाया की-नीदाविन का विनयक अ विनयक है पर उमके का
 एक अन्तःप्रेरणा नीसा (कार्दिक वेन) की अनुपुति है वह राग अथवा प्रम भावना
 के प्रति अन्तःप्रेरणा अन्तःप्रेरणा तथा विन्य अन्तःप्रेरणा सार्गीय सत्य को अन्तःप्रेरणा
 मार्तिक वाच्य देने में सत्य है। महादेवी आत्म में देना हृद और उमके अन्तःप्रेरणा
 अन्तःप्रेरणा ही वह अन्तःप्रेरणा से होती ता समग्रता इन अन्तःप्रेरणा से विवेक वाच्य अन्तःप्रेरणा

प्रतीत तिलहरी जिससे राग-रस के गम्भीरतम अन्तर्मूल्य पर—मैं आध्यात्मिक मूल्य पान-बूझकर नहीं कह रहा हूँ कि उससे फिर रहस्यवादी भ्रम न उठे—प्रकाश नहीं पड़ता। परिचय की बहिर्मुखी प्राप्ति की भूमि पर प्रतिष्ठित राग-मूल्य का अन्त-घस्कार होना है, नहीं तो यह फार्मिडियन उपभेदन अथवा अन्त-अभकार क गर्तों में गिर सकता है। रामायण-काल के मये मूल्य तथा मई सामाजिक मान्यता के अभाव के कारण आज हमें बीटनिस हंपी जनरेसस तथा अन्यथा कवितावादी आदि का अन्त-मुक्ती-विद्रोह देखने को मिल रहा है। उनमें युग-तन्म का मूल ही एक अद्य वर्तमान हो पर इसमें सन्देह नहीं कि उनकी आस्था विभ्रान्त है। रागमूल्य को देख की संकीर्णता से ऊपर उठाकर व्यापक सामाजिक भूमि पर प्रतिष्ठित करना है जिससे उसका बहिः-अस्कार हो सके। सभी छायावादी कवियों ने अपने-अपने ढंग से राग-मूल्य के उन्नीत सौन्दर्य को अपनी काव्य-वस्तु में अभिव्यक्ति की है। उन्होंने नारी को उसका प्रतीक बनाकर उसे मध्ययुगीन देह-आव तथा राग-उपेय की संकीर्ण कामाग्ध नैतिक बारा से मुक्त कर, नवीन राग-अनता की सौन्दर्य-विद्यता के रूप में अपने मुक्त उन्नत मातृ-स्वप्नों से उसकी महीन मूर्ति निर्मित कर व्यक्ति-मोह के बरातन से उठाकर, बिस्वृत सामाजिक बरातन पर लोक जीवन अंगत कर्म में सलज्ज मानवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। छायावाद की यह अमूल्य दन लोकमानस के लिए है—यह कबल रोमैण्टिक स्वप्नवादी प्रेम-मुक्ति का ही सन्देह चाहक नहीं रहा। उसने उस मुक्ति को एक उच्च सामाजिक बरातन भी प्रदान किया है। जीसा सम्भवतः मैं पहले भी कह चुका हूँ महादेवी के काव्य में छायावादी अभिव्यक्ति तथा भाववस्तु ने अपनी पूर्णता प्राप्त की उसमें छायावादी स्वप्न-वृष्टि का सौन्दर्य तथा छायावादी गूढ भावोच्छ्वसित हृदय की बहुरंग अतिक सूक्ष्म होकर अतिक स्पष्ट सुन्दर पड़ती है। यद्यपि उसमें ज्ञान के बिह्व भी उतन ही स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। उनके काव्य के बीर भी अनेक पदा हैं पर उनकी मुख्य बन की आर में ऊपर संशेष न संशेष कर चुका हूँ। अग्य छायावादियों की तरह उनका प्रतीक बिम्ब-विधान आत्मिक संशेष तथा प्रकृति चित्रण के अनेक आयाम रहे हैं जिससे कभी तादात्म्य प्राप्त करके कभी उस उपकरण बनाकर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को सौन्दर्य-शील तथा ममस्पर्शी बनाया है। उनके काव्य में बिम्ब-नारी के अनूप प्रेम अतिक्रमिण राग-भावना की विद्युत् हृदयानुमति है। उनकी वृष्टि अन्तर्मुखी तथा वैयक्तिक ही है जो उनकी भाववस्तु के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। सामूहिक जीवन का गहनतम एवं उच्चतम सचेदनों का वैभव विकसित उन्नीत व्यक्ति-वृष्टि ही प्रदान कर सकती है। महादेवी की काव्य-वृष्टि का भी विकास हुआ है। 'दीपपिपा' में उनकी 'यामा' की वेदना चिन्तन-गम्भीर तथा आगारोप्य हो गई है।

साथ पर जीवन का सुन्दर ताना-बाना बुनने के लिए अपना-मूर्च्छित से स्वल्प-सुखम मानी विरयी का जगता उगाड़रख बनाया। यह पापाय की कठोर स्फुलता से रग रंगाभा की विविध मोमा उमग धरति की धपिक स्थिति और तब शरर का मूढक व्यापकता तक लुंबी अथवा विनी और तम मे यह जान मना बहुत महत्त्व मही। परम्पु नरर के विचार मे कया-सूत्रर का पापाय की मूर्च्छिता रम रगाकी गयीकता स्वयं का मायुय मर दुष्ट कान क रीमे की मुदिता प्राप्त हा मर। काव्य मे कया का उरण एर लेगे सिमु तरु परर मया कर्त म कए जान को भी मरायता है मरा क्योकि मय काव्य का माण और मोय उमका मान है। एर अनी एका म ममीम ररता है दूगय अनी मनेरता मे शान्त मी मे मायन के विविध मिनय मरु एर म माण की सिम्भरी अणर स्थिति एर पररन का कम मानर की महत्त्व-महत्त्व उगता हुआ बनता है।

इस शान्त मय के साथ हमारी सीमा का सम्बन्ध कुछ अलग-थलग है। हमारी स्थिति के समस्त विविध तब जो बनता विचार पं का है यह मित मही मरता पर एम लाले प्राय क मामर एर एर। एका विमरा भी मरा करत उमे इग्राण के ममान ए। एमर एर कुण कर मरने है। एर तब एर एम उगे अनी जीव मे कुछ उमर एर मर विमर स्थिति मे एम विचार के साथ एमर म हो मर तब हमारे लिए कए विविध स्थिति विचार म। क कयाक है। क कए विमरा ही हमारी स्थिति की सीमा का मर एर म एमर विमर क। मरता। परम्पु उम मय विमर पर ही मरी मता मूय मय कए अरि मभी मरकए एर टरणी एर हमारी स्थिति उम विचार का जान कयागवता है। एम मरी का सीमा के उम ममीम विचार का बीज जाला मरिने है। त्रीर विचार की एमर का ही एर एमर मे उम मरी की अन्वययता की अनुमिति मरकए मरी। एमर मय क काव्य एमरी विमर भी कुण लेगी ही मरता है। उमरा विमरा अम एम मरी मय एर मर। एम मरी विमर मे मरकए लेना अन्वयय एर मरता है मरी। एमरी सीमा के सम्बन्ध ए। मय का एमरता म मरी विमर विमर मरकए मरे। एमर मरी एम मय मरी लेगी मरता। विमर मरकए मरी मरामरिण मरे। एमर मरी मरकए मरकए मरकए मरकए मरकए मरकए मरी। एमर मरी मरकए मरी

इस स्थिति का प्रेषणीय बना बना बुझकर नहीं ता कठिन अवयव है। आकार की रेखाओं की मर्यादा सम्बाई-श्रीशक्ति, हस्ता भारीपन आदि गणित क संको म बांध जा सकता है। परन्तु रेखा म परिभाषा मक व्याप्त सजीवता का परिचय संख्या माया मा तोम मे नहीं दिया जा सकता। आकार का ठीक नाप जोख क माय दूसरे तक पहुँचा दसा जितना महक है जीवन को मग्नूप अतुमनोयता क माय दूसरे को द सकता उतना ही कठिन।

मत्य की व्यापकता में से हम पाहू जिस अंग को ग्रहण करें, वह हमारी सीमा म बंधकर व्यक्तियत्न हो ही जाता है और इस स्थिति में हमारी सीमा के माय सापन्न पर अपनी व्यापकता में विरपेक्ष बना रहता है। दूसरे क निकट हमारी सीमा म बिना सत्य हमारा गहकर ही बनना परिचय देना चाहता है और दूसरा हमें ठामकर ही उन मन्त्र का मूल्य अंकन की इच्छा रखता है। इतना ही नहीं उतकी तुला पर रवि-वैशिष्य मस्कार स्वार्थ आदि क न जाने कितने पामंयी की उपस्थिति भी सम्भव है अतः मत्य के सापन्न ही नहीं निगदेन मूल्य के सम्बन्ध में भी अन्तक मतभेद उत्पन्न हो पात है।

इसक अनिश्चित मनुष्य की चिर अतृप्त जिज्ञासा भी कुछ कम नहीं टोकती टोकती। 'इमान अमुक वस्तु को अमुक स्थिति में पाया' इतना कथन ही पर्याप्त नहीं क्योंकि मुमन काया कहीं-कहीं कहकर उस अपने प्रत्यक्ष ज्ञान की परिधि म बांध लन का व्यापुन हा उठगा। मक यदि वह हमारी ही स्थिति म हमारे ही दुष्टिकाय स उठे म नेत्र मर तो वह वस्तु कुछ मित्त भी गग सुकनी है और ठक विद्या की कभी म टूटने वाली मूल्यमा में मित्य नई कड़ियाँ पुड़ने मयेंगी। बाह्य जीवन में ता यह समस्या किसी अग तक सरल की भी जा सकता है परन्तु मन्त्रांगण में इमे मुमन्त्र केता मया ही कठिन रहा है।

इस मन्त्र-मन्त्रांगी उलझन को मुमन्त्राण के लिए जीवन न टहर सकता है और न इन धोड़कर माय बढ़ सकता है अतः वह सुसम्पत्ता हुआ चलता है। बाह्य जीवन में राजनीति समाज मामन धम आदि इतिवृत्त क समान मत्य का परिचय भर देत बनते हैं। मनुष्य की हृदीर्षी जिज्ञासा कियो घन्टि को पकड़कर एक न बाय इस मय म उम्होंने प्रचर घन्टि पर अनुग्रह और बन्ध की इतनी चिकताकृ मगा बी है किमसे हाय किमय मर बाय। कहीं महामाण्य के समान बहुत विस्तार म उनमें हुए और कहीं मूढा क समान सशिल्प रूप में मूलक हा विज्ञान कनी मत्य के मणहामय-वैम माय पकृत है और कभी अज्ञान-वैम कनी मत्य की विषयांग यदियों का सम्मन करत बत है और कहीं अछूरे गैराविद्या बा पर व्यापन सगिण मत्य का अभाष महीं दूर कर पाते। मनुष्य क बाह्य जीवन की निमनता वेकन के लिए के सहाय्य बनन मर बाध्य है और उदक मन्त्रांगण के वैमय क लिए पुनःपुनः होने पर विद्यत।

हमारी सुति-वृत्ति बाह्य के स्पन्दनम बिन्दु से लेकर भीतर क मृमन्त्रम बिन्दु तक जीवन को एक अदृक्म म भेग मरनी है परन्तु दूसरा अदृक्म बनाने के लिए हमारी शान्तिमन्त्रा दुति ही अपेक्षा रखेदी। हमारे बाह्यभ्रम और गान्धेय की स्थिति पृथ्वी क दा गगनाओं के समान है जा मिनकर भूयोख को पूजता दत है और अन्तय भाषा ममार ही पर माते है। एक मार का मूल्य दूसरे का पूरक बना रहने क लिए ही उसे अन्तर

काव्य कला

महादेवी

सत्य पर जीवन का सुन्दर साया-बाया बुनने के लिए कला-सृष्टि में स्तूल-सूक्ष्म सभी विषयों को अपना उपकरण बनाया। यह पापाय की कठोर स्पृशता से रंग-रेशाओं की निश्चित सीमा उमंगी ध्वनि की क्षणिक स्थिति और तब शब्द की सूक्ष्म व्यापकता तक पहुँची जबकि किमी और क्रम में यह बात सेना बहुत सहज नहीं। परन्तु शब्द के विस्तार में कला-सूत्रन को पापाय की मूर्तिनता रंग-रेशा की सजीवता स्वर का माधुर्य मध-कुक्ष एकत्र कर लेने की बुद्धिमा प्राप्त हो गई। काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे जित्नु तक पहुँच गया जहाँ से बड़े ज्ञान को भी सहायता है सका क्योंकि सत्य काव्य का साध्य और गौन्द्य उसका साधन है। एक अपनी एकता में अमीम रहता है दूसरा अपनी अनेकता में अनन्य इसी से सामन के परिचय-स्तिग्न अण्डरप से साध्य की बिस्मयमयी अन्वय स्थिति तक पहुँचने का क्रम आत्मिक की लहर-पर-लहर उठता हुआ चलता है।

इस व्यापक सत्य के साथ हमारी सीमा का सम्बन्ध कुछ जटिल-मा है। हमारी दृष्टि के सामने खिचित्र तक को अनन्य विस्तार फैला है बहु मिट नहीं सकता पर हम अपनी आँसू ने सामने एक छोटा-सा तिनका भी लड़ा करने उसे इत्राज के समान ही अपने लिए मुक्त कर सकते हैं। फिर जब तक हम उसे अपनी आँसू से कुछ अन्तर पर एक बिरोध स्थिति में सब विस्तार के साथ रगकर न देखें तब तक हमारे लिए वह खिचित्र व्यापी विस्तार नहीं के बराबर है। केवल तिनका ही हमारी दृष्टि की सीमा को सब ओर से घेरकर बिराह बन जायगा। परन्तु उस तुल-विरोध पर ही नहीं सदा बृल खेत बन प्रादि सभी अण्डरपों पर ठहरती हुई हमारी दृष्टि उस विस्तार का ज्ञान करासकती है। जिना रूपों की सीमा के उस असीम विस्तार का बोध होना कठिन है और विस्तार की व्यापक पीठिका के अभाव में उन रूपों की अनेकार्थकता की अनुमृति सम्भव नहीं। अण्डर सत्य के साथ हमारी स्थिति भी कुछ ऐसी ही रहती है। उसका बितना अंध हम अपनी सीमा से बहर सकते हैं उसे ऐसी स्थिति में रगकर देसमा आबन्धक हो जाता है जहाँ यह हमारी सीमा में रहकर भी सत्य की व्यापकता में अपनी निश्चित स्थिति बनाये रहे।

व्यक्ति की सीमा में तो सत्य की ऐसी दोहरी स्थिति घुड़क ही नहीं स्वामाधिक भी है अन्यथा उसे तत्काल ग्रहण करना सम्भव न हो सकेगा। परन्तु उण्ड में अण्डर की

इस स्थिति का प्रेषणीय बना मना हुण्डर नहीं था कठिन अबस्य है। मानस की रखात्रों की सक्या सम्बाई-बाईई हल्का मापीपन आदि यचित के अंकों म बांधे जा सकते हैं। परन्तु देना म परिमाण तक व्याप्त मजीबता का परिचय सक्या, माया या लीम म नहीं दिया जा सकता। आकार को ठीक जाप कोक के माय दूसरे तक पहुँचा देना जितना महज है, जीवन को सम्पूर्ण अतुमनीयता के माय दूसरे का व सक्या उतना ही कठिन।

मन्य की व्यापकता में स ह्य बाहे जिस अंग को ग्रहण करें वह हमारी सीमा में अंधतर व्यष्टियत हा ही जाता है और इस स्थिति में हमारी सीमा के माय सापेक्ष पर अपनी व्यापकता म निरपेक्ष बना रहता है। दूसरे के निकट हमारी सीमा म बिना सत्य हमारा रहकर ही अथवा परिचय देना चाहता है और दूसरा हमें तोमकर ही उस मन्य का मूस्य भाँकन की इच्छा रखता है। इतना ही नहीं उसकी तुला पर रवि-बिष्य संस्कार स्वार्थ आदि के म जामे कितने पार्मकों की उपस्थिति भी सम्भव है अतः मन्य क सापेक्ष ही नहीं निरपेक्ष मूस्य क सम्भव म भी अनेक मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं।

असद अनिरिक्त मनुष्य को बिना अतृप्त जिज्ञासा नी कुछ कम नहीं गच्छती टोकती। इमन अमुक वस्तु का अमुक स्थिति में पाया इतना कपन ही पर्याप्त नहीं यकीक मुमन बाबा कहीं-कहीं कहकर उस अपन प्रत्यक्ष ज्ञान की परिधि म बांधे सेन का व्याकुल हा उठेगा। अब यदि वह हमारी ही स्थिति में हमारे ही बुद्धिकोण स उसे म देय मर तो वह बस्य कुछ भिन्न भी सय सकती है और सब विबाद की कमी न टूटने वाली तृप्तता में निरय नई कड़ियाँ जुड़ने लगेंगी। बाह्य जीवन म तो यह समस्या किमी अथ तक सरस की भी जा सकती है परन्तु अन्तर्जगत् में इसे मुमन्ना सना अण ही कठिन रहा है।

इस मरय-मन्वषी उल्लेख का मुतन्धान क सिंग जीबम न ठहर सकता है और म न्य दाढ़कर जाय बह सकता है अतः वह मुमन्नाता हुआ अथता है। बाह्य जीवन में राजनीति समाज-शासन कम आदि इतिवृत्त क समान मरय का परिचय-अर दत अथत है। मनुष्य की हठीमी जिज्ञासा निमो प्रसिध को पकड़कर एक न जाय नम मन ने उम्होंने प्रत्यक्ष प्रसिध पर अतुप्रह और दण की अती चिकनाहट सगा की है जिसस हाथ विमस मर जाय। कहीं महाभाज क समान बहुत विस्तार म उल्लेख हुए और कहीं मूषों क समान सतिव्य रूप में मुमन्न हुए सिद्धांत कमी मरय के संश्लामय त्रैमे जात पड़ते हैं और कमी अरभागाय त्रैमे कही मरय की चिकनागी मूर्तियों का स्मरण करा देत है और कहीं अछूने देताचित्रों का पर व्यापक इतिवृत्त मरय का अनाथ नहीं दूर कर पाते। मनुष्य के बाह्य जापन को निममता रखने के लिए वे सश्यास दान पर बाध्य हैं और उनके अन्तर्जगत् क वैमय क सिंग पूनगट्ट होन पर विवश।

हमारी बुद्धि-बलि बाहर के समुत्तम किन्तु से लेकर भीतर क मुदमतम किन्तु तक जीवन को एक अतृप्त म पर मरती है परन्तु दूसरा अर्द्धवृत्त बनान क लिए हमारी राग-विमना बुद्धि ही अपेक्षित रहेगी। हमारे पावन-अ और ज्ञानभेद की स्थिति पृथ्वी के वा मापापों के समान है जो निमकर भूगाय का पूषता दत है और अजम बाधा सवार की पर मरते हैं। एक भार का भूगण्ड दूसरे का पूरक बना रहने के लिए ही उस अन्तर

पर रखकर अपनी दृष्टि का विषय नहीं बना पाता परन्तु इससे दोनों में मे रिमी की भी स्थिति संदिग्ध नहीं हो जाती ।

हमारी बुद्धि और रागात्मिका वृत्ति के दो अर्द्धवृत्तों से बिरे मय के सम्बन्ध में भी यही मय रहेगा । हमारे व्यावहारिक जीवन का प्रत्येक काम संकल्प-विश्लेष कल्पना स्वप्न सुप्त-दुःख आदि की भिन्न-भिन्न वृद्धियों वाली श्रृंखला के एक निरन्तर म समन्वय रहता है । इस श्रृंखला की प्रत्येक वृद्धि की स्थिति अन्तर्जगत् में ही सम्भव है । व्यवहार जगत् केवल काम से सम्बन्ध रखता है बुद्धि काय के स्वप्न ज्ञान से सफर उठे जगत् देने वाले सुख-विचार तक जानती है और हृदय तन्मयित सुप्त-दुःख से सफर स्वप्न-जगत् तक की अनुभूतियाँ संचित करती है । इस प्रकार बाह्य जीवन की सीमा में कामनवीया लगने वाला काम भी हमारे अन्तर्जगत् की असीमता में बहने-बहने बिगड़ हा मरता है ।

बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् तक फँस और ज्ञान तथा भावधर्म में समान रूप से व्याप्त उत्पत्ति की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम-योजन-योजन ही मनुष्य के काय और जन्मात्मा का आधिकार कर लिया जाता है । कला मय के ज्ञान के निकटता-विस्तार में नहीं लावटी अनुभूति की धरिता के तन् में एक विशेष बिन्दु पर प्रहल करती है । तन् पर एक ही स्थान पर बैठे रहकर भी हम अर्धस्य न तरंगों को सामने आने और पुरानी सहरा का आगे आते बेककर नहीं से परिचित हो जाते हैं । यह किम पर्यतीय उद्गम से निरमकर बड़ा-कहाँ बहती हुई किस समुद्र की मयाव तरलता में विलीन हो जाती है यह प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारी अनुभूति में नहीं पर्व है और रहेगी । जब हम कहते हैं कि हमने एक और चोरनी की कूल-बीछी भिन्नभिन्नाती बामू और दूसरी ओर दूर हरीणिमा में तन्रेता बनायी हुई, अबाह नील जल से मरी मरी देली तक मुनन बासा कोई प्रचलित माय जोय नहीं माँगता । हमने इतने पत्र प्रबाह माया है इतने ही सहरे गिनी है इतने कीट सहराई पायी है इतने निर पायी ठामा है आदि आदि माय-तोस न बटाकर भी हम नहीं का ठीक परिचय दूसरे के हृदय तक पहुँचा देते हैं । मुनने बासा उस नहीं कोही नहीं उनके घाणपत सीन्दर्य को भी प्रत्यक्ष पाकर एक ऐस जगत् की स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ गणित के अंकों में बीची माय जोय के लिए स्थान नहीं ।

मस्तिष्क और हृदय परस्पर पूरक रहकर भी एक ही पत्र से नहीं बनते । बुद्धि में समानान्तर पर चलन वाली भिन्न-भिन्न धेरियाँ हैं और अनुभूति में एकताएता लिए गहराई । ज्ञान के क्षेत्र में एक छोटी रेखा के नीचे उससे बड़ी रेखा लीजकर पहुँची का छोटा और भिन्न अस्तित्व दिखाया जा सकता है । इसके असपन उदाहरण विज्ञान-जीवन की स्वप्न सीमा में और बचन जीवन की सुख असीमता में दे चुका है । पर अनुभूति के क्षेत्र में एक की स्थिति से नीचे और अधिक गहराई में उतरकर भी हम उसके साथ एक ही रेखा पर रहते हैं । एक वस्तु को एक व्यक्ति अपनी स्थिति-विशेष में अपने विशेष दृष्टि बिन्दु से देखता है दूसरा अपने बराबर पर अपने से और तीसरा अपनी सीमाएता पर अपने से । तीनों ने वस्तु-विशेष को जिन विशेष दृष्टिकोणों से जिन विभिन्न परिस्थितियों में देखा है वे उनके उद्विपयक ज्ञान को भिन्न रेखाओं में भर लेंगी । इन विभिन्न रेखाओं के नीचे ज्ञान के एक सामान्य अणुत्तम की स्थिति है अवश्य परन्तु वह अपनी एकता के

परिष्कृत के लिए ही इस अनेकता को संभाल रखनी है।

अनुभूति के सम्बन्ध में यह कठिनाई सरल हो जाती है। एक व्यक्ति अपने दुःख को बहुत तीव्रता से अनुभव कर रहा है उसके निकट आत्मीय को अनुभूति में तीव्रता की मात्रा कुछ कम चायगी और माधारण मित्र में उसका और भी म्यून हो जाता सम्भव है परन्तु वही एक के सामान्य संवेदन का प्रश्न है, वे तीनों एक ही रेखा पर, निकट दूर अधिक दूर को स्थिति में रहेंगे। ही जब उनमें से कोई एक दुःख को अनुभूति के क्षेत्र से निकालकर बौद्धिक चराचम पर रख लेता तब कहा ही बूझती हो जायगी। अनुभूति अपनी सीमा में विनयी सबसे है उसकी बुद्धि नहीं। हमार स्वयं जलने की हस्की अनुभूति भी दूसरे के रास हो जाने के ज्ञान से अधिक स्वायी रखती है।

बुद्धिबुद्धि अपने विषय को ज्ञान के अन्तर्गत विस्तार के साथ रखकर देखती है अतः स्पष्टिपण सीमा में उसका संविश्व हो उठता स्वाभाविक ही रहेगा। 'अमुक में तुम देखकर जलिन पाई' की विनयी भावतियाँ होंगी हमार। भूम और अग्नि की सापसता विपक ज्ञान उनको ही निरिषत स्थिति पा सकगा। पर अपने विषय पर केन्द्रित होकर उत जीवन को अन्तर्गत गहराई तक स जाना अनुभूति का सध्य रहता है इसी से हमारो व्यक्तिगत अनुभूति विनयी निष्क और तीव्र होगी दूसरे का अनुभूत सत्य हमारो मर्मीय उतना ही अमरिग्य हाकर आ सकगा। तुमन जिय पानो समझ बह बासु की समक है, तुमन जिये कामा रेखा बह सीमा है तुमन जिये कोमल पाया बह कठार है आदि-आदि कहकर हम दूसरे में स्वयं जमी के इष्टियज्य ज्ञान के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर सकत हैं परन्तु 'तुम्हें आ कोण चुभन की पीड़ा हुई बह प्राणित है यह हमसे अर्धक बार मुनकर भी कोई अपनी पीड़ा के अस्तित्व में सगह नहीं करगा।

जीवन के निरिषत विन्दुओं का बाह्य का कार्य हमारो मस्तिष्क कर सता है पर इस कम से बनी परिधि में समीकता के रंग भरने की समता हृदय में ही सम्भव है। काध्य या क्या मानों इन दोनों का समिपण है जिसके अनुसार बुद्धिबुद्धि भीने बाधुसगह के समान विना भार जामे हुए ही जीवन पर फँसी रहता है और टापारिमका बलि उसके चराचम पर, साथ ही अन्तर्गत रंग-रूपों में फिर समीन स्थिति रेनी रखती है। अतः काम्य कला का साथ जीवन की परिधि में सौन्दर्य के साम्यम डाग व्यक्त अन्तर्गत सत्य है।

सौन्दर्य-सम्बन्धी समस्या भी कुछ कम उलझी हुई नहीं है। बाह्य जगत् अन्तर्गत काम्यक है और उन रूपों का सुन्दर तथा कृष्ण में एक व्यावहारिक बर्गीकरण भी हो चुका है। क्या क्या इन बर्गीकरण की परिधि में जाने जान सौन्दर्य को ही सत्य का साम्यम बनाकर सप को छाड़ दे? कबल बाह्य रेखाओं और रसों का साम्यज्य ही सौन्दर्य कहा जाय ता प्रत्यक्ष मूषण्ड का मानक-ममात्र ही नहीं प्रत्यक्ष स्थिति भी अपनी स्थिति में दूसरे से मिलन मिलेगा। इसके अन्तर्गत क अनुभूति का सम्यज्य की परिमाण बनाई जाय यह प्रश्न सत्य में भी अन्तर्गत उठता है।

सत्य की प्राणिक के लिए काम्य और कलाएँ जिय सौन्दर्य का सहारा लेते हैं बह जीवन की पूणतम अमिस्थिति पर आश्रित है कबल बाह्य रूपरेखा पर नहीं। प्रकृति का अन्तर्गत सत्य प्राणिकजगत् की अनेकालस गतिशीलता अन्तर्गत ही स्थितियों विविधता

सब-कृष्ण इनके सौन्दर्य कोप के अन्तगत है और इसमें ग शङ्कतम वस्तु के लिए भी ऐसे मारी मुह्त भा उपस्थित होते हैं जिनमें बहु पर्वत के समकक्ष पड़ी हाइर ही सफल हो सकती है और दुष्कृतम वस्तु के लिए भी एगे सयु धन भा पहुँचते हैं जिनमें बहु छोटे तृण क मात्र बैठकर ही इतना बम सकती है ।

जीवन का जो सर्वा विक्रम के लिए अपेक्षित है उसे पाने के उपरान्त छोटा बडा सयु, गुण सुन्दर, विरूप भावपन भयातक कृष्ण भी कलावदन से बहिष्कृत नहीं किया जाता । उनसे कमसों की बाहर जैसी जैसी मे सुसकराती हुई विभाबरी अभिराम है पर अँधेरे के स्तर-पर-स्तर भौड़कर बिराट बनी हुई कामी रजनी भी कम सुन्दर नहीं । पूर्णों के बोझ से झुक झुक पड़ने वाली लता कोमल है पर दृग्ग्य भीतिमा की ओर विस्मित कामरु-सा ठाकने वाला दूठ भी कम सुकुमार नहीं । अक्षरित कमलान से पृथ्वी को रँपा देने वाला बाबल उँचा है पर एक बूँद आँसू के भार से नन और क्षमित तृण भी कम उन्नत नहीं । गुलाब के रंग और लक्ष्मी की कोमलता म नकाम छिपाये हुए लयमी कमनीय है पर अरियो म जीवन का निजान लिये हुए बूँद भी कम आकर्षक नहीं । बाघ जीवन की कठोरता संघर्ष जय-पराजय सब मूक्यवान है पर अन्तर्जगत् की कल्पना स्वप्न भावना आदि भी कम अलमोल नहीं ।

उपमाय की कला और सौन्दर्य की कला को लेकर बहुत-से विचार सम्भव हमी रहे परन्तु यह श्रेय मुसल एक-दूसरे से बहुत पूरी पर नहीं टहरते ।

कला छन्द से किसी निमित्त पूर्ण पण्ड का ही मोभ होता है और कोई भी निर्माण अपनी अन्तिम स्थिति म त्रिठना सीमित है आरम्भ में चलना ही कैला हुआ मिलेना । उसके पीछे स्तूल जगत् का अस्तित्व जीवन की स्थिति किसी अभाव की अनुभूति पूर्ति का आर्ष उपकरणों की जोन एकनीकरण की कुशलता आदि-आदि का जो इन्द्रजाल रहता है उसके अभाव म निर्माण की स्थिति दृग्ग्य के अतिरिक्त कील-सी संज्ञा पा सकेगी । चिह्निया का कलरन कसा न होकर कसा का विषय हो सकेगा पर मनुष्य ने गीत को कसा कहना होगा । एक में बहु सहज प्रभृति मान है पर दूसरे ने सहज प्रभृति के आभार पर अनेक स्वरों को विद्येय सामञ्जस्यपूर्ण स्थिति में रखकर एक विद्येय पगिनी की सृष्टि की है जो अपनी सीमा में जीवनव्यापी सुय-मुक्तो की अनुभूति को अक्षय रखती है । इस प्रकार प्रत्येक कला-कृति के लिए निर्माण-सम्बन्धी विज्ञान की भी आवश्यकता होगी और उस विज्ञान की सीमित रेखाओं में अक्षत होने वाले जीवन के व्यापक सत्य की अनुभूति की भी । जब हमारा ध्यान किसी एक पर ही केन्द्रित हो जाता है तब दोनों को छोड़ने वाली कड़ियाँ अस्पष्ट होने लगती हैं ।

एक इति का अन्तिम कहकर चाहे हम जीवन क बुद्धि से जोम्न छिन्न पर प्रतिष्ठित कर माएँ और दूसरी को उपयोकी का नाम देकर चाहे जीवन के धूस मरे प्रत्यक्ष चरणों पर रख दें परन्तु उन दोनों ही की स्थिति जीवन से बाहर सम्भव नहीं । उनकी दूरी हमारे विकास क्रम से बनी है कुछ उनकी तात्त्विक मिश्रता से नहीं । नीचे की पहली सीढ़ी से चढ़कर जब हम ऊपर की अन्तिम सीढ़ी पर पड़े हो जाते हैं, तब उन दोनों की दूरी हमारे आरोह-क्रम की चापेक्ष है—स्वयं एक-एक ठो म के नीची है, न उँची ।

व्यावहारिक जगत में हमने पहले ताज आश्चर्यजन छाया जादि की समझाओं को बिन मूल रूपों में सुसंभ्रया था उन्हें यदि आज के व्यंजन वस्तुभूषण और मजन के ऐन्द्रात्मिक विस्तार में रसकर देखें ता व कला के स्फुल और मूकम उपयोग स भी अधिक रहस्यमय हो उठे। जो बाह्य जगत् में सहज वा बहु अन्तर्जगत् में भी स्वाभाविक हा गया अठ उपयोग-सम्बन्धी स्फुलता मूकम होते-होते एक रहस्यमय विस्तार म हमारी दृष्टि स ओम्भन हा गई—और तब हम उसका निकटवर्ती और पकड़कर दूसरे को अस्ति-वहीन कहकर खोजने की चिन्ता से मुक्त होने लग ।

सत्य ता यह है कि जब तक हमारे मूकम अन्तर्जगत् का बाह्य जीवन में पग-पग पर उपयोग होता रहेगा तब तक कला का मूकम उपयोग-सम्बन्धी विवाद भी विनाय महत्त्व नहीं रख सकता । हमारे जीवन में मूकम और स्फुल की बीनी समन्वयात्मक स्थिति है वही कला को कवल स्फुल मा केवल मूकम में निर्बन्धित न हाल देनी । जब हम एक व्यक्ति क कार्य को स्वीकार करेंगे तब उसकी पटभूमिका बने हुए वापसी स्वप्न मूकम आदर्श रहस्यमयी भावना जादि का भी मूल्य मांकना आवश्यक हो जायगा और कला यदि उस वातावरण का एसा परिचय बनी है जो काम से न बिया या मरुता या जीवन को उसके लिए भीतर-बाहुर क ममी द्वार खोलने पड़ेये ।

उपयोग की ऐसी निम्नोन्नत भूमिका हो सकती है जो अपने बाह्य रूपों में एक दूसरी से सर्वथा भिन्न जाग पड़े परन्तु जीवन क व्यापक बरातन पर उनक मूल्य म विषय अन्तर नहीं रहता ।

हमारे शिष्टाओं में संघरित जीवन-रम और दूर मिट्टी में उत्पन्न अन्न क उपयोग में प्रत्यक्ष किता अन्तर और अप्रत्यक्षत भीनी एकता है यह कहने की आवश्यकता नहीं । रागी की व्याधि विषय के लिए दान्त्रविषय उपयोगी हो सकता है परन्तु उसके सिद्धांते किसी सहृदय द्वारा रखा हुआ मन्त्रिभा गुमाव का पूज भी कम उपयोगी नहीं । अपनी बेचना में दृग्पटाता हुआ यह उद्य क्म को धीरे-धीरे छिन्नने और हीन-हीन मड़न वाली पंगुड़ियों को देख-देपकर कितनी बार विषाम की सोच जाता है किम प्रकार अपने अकेलेपन को मर वेता है कितने भावों की सम-विषम भूमियों क पाग या जाता है और कैम चिन्तन के क्षणों में अपने आपको खोता है पाठा है यह कोई हमारे लिए प्रत्यक्ष म हो परन्तु रोमी के जीवन में ता सत्य रहगा ही । अनुर चिकित्सक रोग का निशान उपपुञ्ज औषधि और पथ्य जादि का उपयोग स्पष्ट है परन्तु रोमी की स्वस्थ दृष्ट्या र्हास्त पाठावरण का अनिबन्धीन सामञ्जस्य सेवा करने वाले का हृदयगत स्नेह उद्भाव जादि उपयोग में अप्रत्यक्ष होने के कारण कम महत्त्वपूर्ण है यह कहता अपनी भ्रान्ति का परिचय देमा होमा ।

जब कवल पार्श्विक स्थिति म सम्बन्ध रखने वाला उपयोग भी दृष्टता शक्ति है तब महत्त्वपूर्ण जीवन को अपनी परिधि म घेरन वाले उपयोग का प्रान्न विनमा रहस्यमय हो सकता है, यह स्पष्ट है ।

विश्व प्रचार एक बस्तु क स्फुल म लकर मूकम तक अर्थसु उपयोग है उसी प्रचार एक जीवन को मूलजन्म म लेकर स्थूलजन्म तक अन्तर् परिम्पनियों के बीच क

जाये बढ़ता होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के अभाव और उनकी पूर्ति में इतनी संख्यातीत बिबिधता है उसके कार्य कारण के सम्बन्ध में इतनी मापहीन व्यापकता है कि उपवास-विरोध की एक रेखा से समस्त जीवन को घेर लेने का प्रयास असफल ही रहेगा। मनुष्य का जीवन इतना एकांगी नहीं कि उसे हम केवल अर्ध कबल काम या ऐसी ही किसी एक कसौटी पर रखकर सम्पूर्ण रूप से सारा या छोटा कह सकें। कपटी-ने-कपटी मूढ़ता भी अपने सामियों के साथ जितना सम्बन्ध है उसे देखकर महान् सरपकारी भी सज्जित हो सकता है। बन्दोर-से बन्दोर अत्याचारी भी अपनी मन्तान के प्रति इतना कोमल है कि कोई भाबुक भी उगकी तुमना में न टहरेगा। उजड़-से उजड़ बरंर भी अपने माता पिता के सामने इतना विनत मिसता है कि उसे मात्र शिष्य की संज्ञा देने की इच्छा होती है। सारांश यह कि जीवन के एक छोर से दूसरे छोर तक जो एक स्थिति में रह सके ऐसा जीवित मनुष्य सम्भव ही नहीं अतः एकाग्र उपयोग की कल्पना ही सहज है।

जिस चड़े हुए मनुष्य की प्रत्यक्षा कभी नहीं उतरती वह महःपदेश के काम का नहीं रहता। जो मेष एक भाग में स्थिर है जो हॉठ एक मुझ में बड़ है, जो घग एक स्थिति में अचल है वे बिज या मूर्ति में ही अंजित रह सकते हैं। जीवन की गतिशीलता में बिश्वास कर लने पर, मनुष्य की अमंश्य परिस्थितियों और बिबिध माहस्यच्छताओं में बिश्वास करना अनिशय्य हूा उठना है और अभाव की बिबिधता से जगोब की बहुकपता एक अविच्छिन्न सम्बन्ध में बँधी है। यह सर्य है कि जीवन में किसी माहस्यच्छता का अनुभव निरय होता रहता है और किसी का मर-करा परन्तु निरन्तर अनुभूत अभावों की पूर्ति ही पूर्ति है और जिनका अनुभव ऐसा नियमित नहीं वे अभाव ही नहीं ऐसी धारणा भ्रान्तिपूर्ण है।

कभी-कभी एकरस अनेक बयों की तुलना में सहानुभूति स्नेह, मुञ्ज-नु ब के कुछ लज कितने मूढ्यबाध टहरेते हैं इसे कौन नहीं जानता। अनेक बार व्यक्ति के जीवन में एक छन्द एक बिज या एक बटना ने अभूतपूर्व परिवर्तन सम्भव कर दिया है। कारण स्पष्ट है। जब कबि बिजकार या संयोग के मार्मिक सर्य ने उस व्यक्ति को एक अथिक कोमल मानसिक स्थिति में लू पाया तब वे शन अनन्त कोमलता और कस्य्या के सौन्दर्य द्वार योजने में समर्थ हो सक। ऐसे कुछ लज बगों से अथिक मस्यबाग् अतः उपयोगी मान लिए जायें तो आश्चर्य की बात नहीं।

बास्तव में जीवन की महाराई की अनुभूति के कुछ लज होते हैं, बर्य नहीं। परन्तु वे लज निरन्तरता से रहित होने के कारण कम उपयोधी नहीं कहे जा सकते। जो बूर मनुष्य सी-सी शास्त्रों के मित्य मनन से कोमल नहीं बन पाता वह परि एक छोटे-से निर्बोध बालक के सरस और आकस्मिक प्रश्न-मात्र से इबिठ हो उठता है, ठी वह कथिक प्रश्न शास्त्र-मनन की निरन्तरता से अथिक उपयोधी बयो न माना जाय। एक बाग-बिद्य जौब से प्रभावित ऋषि 'मा निपाद प्रतिष्ठा ल्'—कहकर यदि प्रथम श्लोक और आदिकाण्य की रचना में समर्थ हो सका तो उस भूज पक्षी की ब्यवा को मनीषी की ज्ञान-परिमा से अथिक मूख्य बयों न दिया जाय। यहि एक बैज्ञानिक फल के गिरने से पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का पता लगा सका तो उस तुच्छ फल का टूटना पर्वतों के टटने से अथिक-महत्त्वपूर्ण बयों न समझा जाय।

परि निश्च और नियमित म्यून ही उपयोग की कसीटी रहे तो शरीर की कुछ आवश्यकताओं के अनिश्चित और कुछ भी महत्व की परिधि में नहीं आता । परन्तु हमारे इस निष्कर्ष को जीवन तो स्वीकार करे ! बुद्धि ने अपनी सीमा में स्वभूतम से सूक्ष्मतरंग तक सब कुछ शेष माना है और हृदय ने अपनी परिधि में उसे सबेनीय । जीवन ने इन दोनों को समान रूप से स्वीकृति देकर इस दोहरे उपयोग को असह्य विभिन्न और ऊँचे-नीचे स्तरों में विभाजित कर डाला है । अब इनमें से एक का सच्य बनाकर हम जीवन का विकास चाहते हैं तब हमारा प्रयास अपनी दिशा में गतिशील हाकर भी मनुष्य जीवन को सामञ्जस्यपूर्ण पति नहीं देता ।

जीवन की अनिश्चित-से अनिश्चित स्थिति भी उपयोग के प्रदन को एकांगी नहीं बना पाती । मृत के लिए प्रस्तुत सैद्ध की स्थिति से अधिक अनिश्चित स्थिति और जिवी की समस्त नहीं परन्तु सद्य स्थिति में भी जीवन भोजन व्याख्यात्मक और अन्तःपन्न के उपयोग में ही सीमित नहीं हो जाता । मस्तिष्क और हृदय को क्षण-भर विभाम देने काम मुख के साधन प्रियवर्तों के स्नेह-भर सन्देश रखणीय वस्तुओं के सम्बन्ध में ऊँचे ऊँचे कार्य जब के मुमहस-रपहसे स्वल्प अस्मि साहस और विरवास की भाषना अन्तःपन्नता का अनुपासन भावि नियकर ही तो शीर को वीरता स मरने और सम्मान स जीने की सक्ति द सफल हैं । पौष्टिक भोजन अस्मिभिन्नाते कवच और अकार्षीय उत्पन्न करते काम अन्तःपन्न-मात्र शीर-हृदय का निर्माण नहीं करते उनके निर्माणक उपकरण ता अन्तःपन्न में सिद्धे रहते हैं । यदि हम अन्तःपन्न क बीज को अनुपयोगी सिद्ध करमा चाहें ता कवच में पक्वचित्ता काठ क पुनसे भी लड़े किय जा सकत है क्योंकि जीवित मनुष्य की तुलना में उनकी आवश्यकताएँ नहीं के बराबर और उपनाम सहाय्युण अधिक रहेव ।

उपयोग की ऐसी ही भ्रान्ति पर तो हमारा यत्न-युग लड़ा है । परन्तु ससार में होने वाले मरण-मरण मनुष्य को बोकक आशीतराग प्रदक शीर अमर दयता पापा है जसमे जीवन का आत्महृतया का बरदान देने के अतिरिक्त और क्या क्रिया ? मनात्र शीर राष्ट्र में मनुष्य की स्थिति न कवच तात्कालिक है और न अनिश्चित अत्र उसक जीवन में सम्बन्ध रखन काम उपयोग का अधिक व्यापक पराउत पर स्यामिन्व की एताओं म देयता हाया ।

उपयोगिता क प्रदन क साथ एक कठिनाई और है । जैसे जैम उपयोग की भूमि ऊँची होती जाती है वैसे-जैम बहु प्रयत्नता में न्यून और व्यापकता में अधिक जाती बनती है । सबसे भी की भूमि बिम अत्र तक मातृश है सबसे ऊँची उयी अंग तक निरपण । उप योगिता की दृष्टि में ग्राह मिम-निम्ल व्यक्तियों के स्वास्थ-रधि आदि की मपशा ग्यत्रा है परन्तु उक्तमे बना रम गयी स्वस्थ आदि सनी प्रचार क व्यक्तियों क लिए समान रूप से उपयोगी रहेगा । इसीमे उपयोग की प्रत्यक्ष और निम्न भूमि पर जैमी विभिन्नता मिनती है पैमी उम्लन पर अग्रयण भूमि पर सहज नहीं ।

पुनर के दुःख में महानुभूति रना यह मिडान्त अब व्यावहारिक जीवन म कवच बिदि निरपक रूप में आया है तब निम्न-निम्न व्यक्तियों में उनके प्रोग क रूप विभिन्न

रहते हैं और प्रयोग में छत्रकारा दन याम तर्क विधिष । परन्तु जब यही इतिवृत्त हमारे भावभूमि पर हृदयकी प्रेरणा बनकर उपस्थित होता है, तब न प्रयोगों में इतनी विभिन्नता दिखाई देती है और न तर्क की आवश्यकता रहती है । किसी का कुछ जब हमारे हृदय को स्पर्श कर चुका तब हम उसने और अपने सम्बन्ध को साधारण नीतिक आशान-प्रदान की तुलना पर ठोसने में असमर्थ ही रहेंगे ।

यदि हम किसी के कुछ की बँटा सेंगे तो दूसरा भी हमारे कुछ में सहभागी हूया यह सामाजिक नियम न हमें स्मरण रहता है और न हम स्मरण करना चाहेंगे । इसी से महानतम त्यागों के पीछे विपिनियेवारमक रीतिचरता के संस्कार जाड़े रहें परन्तु स्वयं विधि नियम की सतर्क चेतना सम्भव नहीं रहती । सत्य बोधना उचित है, इस सिद्धान्तको यचित न नियम के समान रट-रटकर जो सत्य बोलने की शक्ति पाता है वह सच्चा मरत बारी नहीं । सत्यवादी जो उठे कहेंगे जिसमें सत्य बोधना विधि-नियम की सीमा पारकर स्वभाव ही बन चुका है । उपयोग की इस मुद्दम पर व्यापक भूमि पर सत्य में यैसी एकता है, स्वयं और संकीर्ण बरातम पर बैसी ही अनेकता । इसी कारण संसार-मर के साधनिक धर्म-संस्थापक नवि आदि के सत्य में दैद्य काल और व्यक्ति की दृष्टि से विभिन्नता होने पर भी मूसगत एकता मिलती है ।

सत्य तो यह है कि उपयोग का प्रयत्न जीवनके समान ही निम्न-उन्नत सम-विषम प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भूमियों में समान रूप से व्याप्त है और रहेगा ।

जहाँ तक काव्य तथा अन्य कथित कसाओं का सम्बन्ध है वे उपयोग की उस उन्नत भूमि पर स्वाधी हो पाती हैं जहाँ उपयोग सामान्य रह सके । करन रायिती उपयोग की उच्च भूमि पर है जहाँ यह प्रत्येक योता के हृदय में एक कथम भाव जागृत करके ही सफल होसक्यी हर्ष या उक्सास का नहीं । व्यक्ति के संस्कार परिस्थिति मानसिक स्थिति आदि के अनुसार उसकी मात्राओं में स्थानाधिनय होसकता है परन्तु उससे उपयोग में इतनी विभिन्नता सम्भव नहीं कि एक में हर्ष का सञ्चार हो और दूसरे में विषाद का उद्रेक ।

जीवन की गति देने के दो ही प्रकार हैं—एक तो बाह्य अनुपासनों का सहारा देकर उसे चमत्ता और दूसरे, अन्तर्जगत् में ऐसी स्फूर्ति उत्पन्न कर देना जिससे सामञ्जस्यपूर्ण पठिछीमता अनिवार्य हो उठे । अन्तर्जगत् में प्रेरणा बनने वाले साधनों की स्थिति उस बीज के समान है जिसे मिट्टी को रम-रूप रस आदि में व्यक्त होने की सुविधा देने के लिए, स्वयं उसके अन्वकार में समाकर दृष्टि से बोधम हो जाना पड़ता है ।

विधि-नियम की दृष्टि से महान्-से-महान् कसाकार के पास उतना भी अधिकार नहीं बिठना औराहे पर सड़े सिपाही की प्राप्ति है । वह न किसी को आवेस दे सकता है और न उपवेश और यदि देने की तासमन्धि करता भी है तो दूसरे उच न मानकर समन्ध बारी का परिचय देते हैं । बास्तर में कसाकार जो जीवन का ऐसा सयी है, जो अपनी आत्म-कहामी में हृदय की कथा कहता है और स्वयं बसकर पग-पग के लिए पत्र प्रचरत करता है । वह शौचिक परिचयम नहीं किन्तु अपनी मनुसृति दूसरे तक पहुँचाता है और वह भी एक विवेकता के साथ । काँटा चुभकर काँटे का ज्ञान जो संसार के ही देगा परन्तु कसाकार बिना काँटा चुभने की पीड़ा बिने हुए ही उसकी कसर की तीव्र मन्दुर अनुसृति

दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ है। अपने अनुभवों की गहराई में वह जिस जीवन-सत्य से साक्षात् करता है उसे दूसरे के लिए सबेदनीय बनाकर कहता बसता है, 'यह सौन्दर्य तुम्हारा ही तो है पर मैं भाव देस पाया। जीवन को स्पर्श करने का उसका ढंग ऐसा है कि हम उसके मूस-बुस हर्ष-विषाद हार-बीत छब-भुख प्रसन्नतापूर्वक ही स्वीकार करते हैं— दूसरे शब्दों में हम बिना खोजने का कष्ट उठाये हुए ही कसाकार के सत्य में जाने आपको पाते हैं। दूसरे के बौद्धिक निष्कर्ष तो हमें अपने भीतर उनका प्रतिबिम्ब खोजने पर बाध्य कराते हैं परन्तु अनुभूति हमारे हृदय से तादात्म्य करने प्राप्ति का सुख देती है।

उपरोक्तों के विपरीत अर्थ समाये जा सकते हैं, नीति के अनुचार भ्रान्त हो सकते हैं, परन्तु सच्चे कलाकार की सौन्दर्य-सृष्टि का अपरिचित रह जाना सम्भव है बरस जाना सम्भव नहीं। अनु की जीवन-स्मृतियों में अन्तर्भ की सम्भावना है पर बास्मीकि का जीवन-दान बसेपहीम ही रहेगा। इसी से कसाकारों के मठ नहीं निर्मित हुए, महन्त नहीं प्रतिष्ठित हुए, साम्राज्य नहीं स्थापित हुए और सभाट नहीं अभिषिक्त हुए। कबि या कसाकार अपनी सामान्यता में ही सबका ऐसा अपना बन गया कि समय समय पर धर्म नीति आदि को जीवन के निकट पहुँचाने के लिए, उससे परिचय-पत्र माँगता पड़ा।

कबि में शार्शनिक को खोजना बहुत साधारण हो गया है। जहाँ तक सत्य के मूस रूप का सम्बन्ध है वे दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट हैं अक्षय पर साधन और प्रयोगों की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं। शार्शनिक बुद्धि के निम्न स्तर से अपनी खोज आरम्भ करके उसे सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाकर समुष्ण हो जाता है—उसकी चफ्तता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुँचने के लिए बड़ी बौद्धिक विद्या सम्भव रह। अन्तःपत् का धारा र्भमप परसकर सत्य का मूस्य आँकने का उसे मषकास नहीं भाव की गहराई में डूबकर जीवन की पाहू लेने का उसे अधिकार नहीं। बहुतो चिन्तन-वपत् का अधिकारी है। कठि अन्तर का शोक कराकर एकता का निवेश करती है और हृदय एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर सकेल करता है। परिणामतः चिन्तन की विभिन्न रेखाओं का समानान्तर रहना अनिवार्य हो जाता है। सांख्य जिस रेखा पर बङ्ककर सत्य की प्राप्ति करता है, वह वेदान्त की अंगीकृत न होबी और वेदान्त जिस ढम से चलकर सत्य तक पहुँचता है उसे योग स्वीकार न कर सकेगा।

काम्य में बुद्धि हृदय से अनुधासित रहकर ही सक्रियता पाती है इसी से उसका दान न बौद्धिक तर्क प्रयासी है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाने वाली विषय विचार-व्यक्ति। वह तो जीवन को धेतता और अनुभूति के समस्त र्भमप के साध स्वीकार करता है। अतः कबि का दायम जीवन के प्रति उसकी आस्था का इतना नाम है। दर्शन में चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी सम्भव है परन्तु काव्य में अनुभूति के प्रति अधिकारी कवि की स्थिति असम्भव ही रहेगी। जीवन के अस्तित्व की धृत्य प्रमाणित करने की शार्शनिक बुद्धि के सूक्ष्म बिन्दु पर विधाम कर सकता है परन्तु यह अस्वीकृति कबि के अस्तित्व को शम से दूटे पक्ष की स्थिति दे देती है।

दोनों का मूस अन्तर न जानकर ही हम किसी भी कलाकार में बुद्धि की एक रूप एक विद्या वाली रेखा ढूँढने का प्रयास करते हैं और अगच्छ होने पर खीम उठते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि दर्शन और कवि की स्थिति में विरोध है। कोई भी कलाकार दर्शन ही क्या भर्म नीति आदि का विशेषज्ञ होने के कारण ही कला-सृजन के उपयुक्त या अनुपयुक्त नहीं ठहरता। यह समस्या तो तब उत्पन्न होती है जब वह अपनी कला को ज्ञान विषय का एकांगी घुंरु और बौद्धिक अनुवाद मान बनाने लगता है।

कवि का बेदान्त ज्ञान जब अनुभूतियों से बच बाल्या से रंग और भावजगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा बुद्धि की तर्क शृंखला नहीं। ऐसी स्थिति में सगला पूर्ण परिचय न अडिग दे सकेया और न विधिष्ठाडिठ। यदि कवि ने इतनी सजीब साकारता के बिना ही अपने ज्ञान की कला के तिहासन पर अभिविषत कर दिया तो वह विचभाग मूर्ति के समान न मिरा देवता रहता है और न कोरा पापाज। कला जीवन की विविधता समटवी हुई मागे बडती है अत सम्पूर्ण जीवन को गला-विषमाकर तर्कशूत्र मे परिणत कर सेला उसका सध्य नहीं हो सकता।

व्यष्टि और समष्टि मे समान रूप से व्याप्त जीवन के रूप-शोक आसा-निरासा गुण दुःख आदि की संस्पासीन विविधता को स्वीकृति देन ही मे लिए कला-सृजन होता है। अत कलाकार के जीवन-दर्शन मे हम उसका जीवनव्यापी दृष्टिकोण-भाव पा सकते हैं। जो सम-विषय परिस्थितियों की भीड़ में सही भिस बाठा सरस-कठिन सचपों के मेले म नही लो जाता और मधुर-कटु सुल-दुःखों की छाया में नही छिप जाता वही व्यापक दृष्टिकोण कवि का दर्शन कहा जायगा। परन्तु ज्ञान-शत्रु और काव्यजगत् के दर्शन में उठना ही अन्तर रहेया जितना बिटा की शून्य सीमा रेखा और अनन्त रग रूपो से बसे हुए आकाश में भिसता है।

काव्य की परिधि में बाह्य और अन्तर्जगत् दोनों का जाने के कारण अभिव्यक्ति के स्वरूप मत्तमेदों को काम देते रहे हैं। निरस बाह्यजगत् की उपार्थता काव्य का सध्य रहे खचबा उस मयार्थ के साध सम्भाष्य मयार्थ बर्बात् आवर्ध भी व्यक्त हो यह मदन भी उपेक्षणीय नहीं। मयार्थ और आवर्ध दोनों कोयदि चरम सीमा पर रक्तकर देला जाय तो एक प्रत्यक्ष हतिवृत्त मे बिसर जायगा और दूसरा अतन्मम कल्पनाओं मे बंध जायगा। ऐसे मयार्थ और आवर्ध की स्थिति जीवन म ही कठिन हो जाती है फिर उरकी काव्य-स्थिति के सम्बन्ध में क्या कहा जाय।

काव्य में गोचर जगत् तो सहज स्वीकृति पा लेता है पर स्भूम अजत् म व्याप्त अतन और प्रत्यक्ष सीमर्य में अन्तर्हित घामरुजस्य की स्थिति बहुत सहज नहीं।

हमारे प्राचीन काव्यने बौद्धिक तर्कबाह से दूर, उस आत्मानुभूत ज्ञान को स्वीकृति दी है जो इन्द्रियजग्य ज्ञान-सा अनावास पर उससे अधिक विरिषत और पूर्ण माना गया है। इस ज्ञान के आधार सत्य की तुलना उस आकाश से की जा सकती है जो प्रहृष्य सक्ति की अनुपस्थिति मे अपना सन्धुण्य नहीं व्यक्त करता। इसी कारण ऐसे ज्ञान की उपलब्धि आत्मा के उच सस्कार पर निर्भर है जो सामान्य सत्य को बिधिष्ट सीमा में बहूण करने की सक्ति मी देता है और उस सीमित ज्ञानानुभूति को जीवन की व्यापक पीठिका देगे वासा सौन्दर्यबोध भी सहज कर देता है।

धीरे रूप रस गन्ध आदि की स्थिति होने पर भी कारण (इन्द्रिय) के अभाव

या अपूर्णता में कभी उनका ग्रहण सम्भव नहीं हुआ और कभी वे अधिक ग्रहण किये जाते हैं वैसे ही आत्मानुभूत ज्ञान आत्मा के संस्कार की मात्रा और उससे उत्पन्न ग्रहणशक्ति की सीमा पर निर्भर रहेगा। कवि को इन्ना या मनीषी कहने वाले मुग के सामने यही निश्चित तर्कक्रम से स्वतन्त्र ज्ञान रहा।

यह ज्ञान व्यक्तिगतमान्य नहीं, यह कहकर हम उसकी अपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि हमारा प्रत्यक्ष जगत्-सम्बन्धी ज्ञान भी इतना सामान्य नहीं। विज्ञान का भौतिक ज्ञान ही नहीं निरवका व्यवहार-ज्ञान भी व्यक्ति की सापेक्षता नहीं छोड़ता। व्यक्तिगत रसिक संस्कार पूर्णतः ज्ञान-करणों की पूर्णता अपूर्णता अभाव आदि मिलकर स्वतन्त्र जगत् के ज्ञान को इतनी विविधता देते रहते हैं कि हम व्यक्ति के महत्त्व से ज्ञान का महत्त्व निश्चित करने पर बाध्य हो जाते हैं। जो ऊँचा सुनता है या जो स्टेपेस्कोप की सहायता से फूलों का अस्फुट धर मात्र सुनता है, वे दोनों हमारे स्वर-सामग्र्यस्य के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष नहीं दे सकते। पर जो आहट की ध्वनि से लेकर मेघ के मर्जन तक सब स्वर सुनने की शक्त भी रखता है और विभिन्न स्वरों में सामग्र्यस्य साने की साधना भी कर चुका है, वही इस दृष्टि में हमारा प्रमाण है।

समाज नीति आदि से सम्बन्ध रखने वाले इन्द्रियानुभूत ज्ञान ही नहीं मूल्य बौद्धिक ज्ञान के सम्बन्ध में भी अपने से अधिक पूर्ण व्यक्तिता को प्रमाण मानकर अनुप्य विकास करता आता है। अतः अत्यात्म के सम्बन्ध में ही ऐसा तर्कवाद क्यों महत्त्व रखेगा! फिर यह आत्मानुभूत ज्ञान इतना विविधता भी नहीं बिना समझा जाता है। सामान्यतः तो प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी अक्षर तक इसका उपयोग करता रहता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ इस ज्ञान का बीसा ही अज्ञान सम्बन्ध और अभ्यक्त स्वर है बीसा प्रकृति की प्रत्यक्ष और प्रधान निस्तम्बता के साथ बाँधी के अत्यन्त पूर्णता का हा मकता है, जो स्थितिहीनता में भी स्थिति रखता है। इसके अभ्यक्त स्पर्श का अनुभव करके अनेक बार अनुप्य प्रत्यक्ष प्रमाण बौद्धिक निष्कर्ष और अनुप्य परिस्थितियों की भीमार्ण पार कर लेने के लिए विवश हो जाता है।

कठोर विज्ञानवादी क पाग भी ऐसा बहुत-कुछ बच जाता है जो कार्य-कारण से नहीं बीबा या सकता स्मृतता के एकान्त अपासक के पास भी बहुत-कुछ दीप रह जाता है, जो उपयोग की कठौटी पर नहीं परता या सकता। और यदि केवल संख्या ही महत्त्व रखती हो तो संसार के सब क्रमों में ऐसे व्यक्तियों की स्थिति सम्भव हो सकती है जो आत्मानुभूत ज्ञान का अस्तित्व निन्द करने रहे।

अधिकतर जगत् से सम्बन्ध रखने वाली आत्मानुभूति की स्थिति भी ऐसी ही है। वही एक अनुभूति का प्ररत है वह जो स्मृत और अधिक जगत् में भी सामान्य नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि फूल की फूल ग्रहण कर से यह स्वाभाविक है, परन्तु सबके अन्तर्गत में अनुभूति एक-सी स्थिति नहीं पा सकती। अपने संस्कार, रसिक के अनुसार कोई फूल से तादरस्य प्राप्त करके भाव-रामय हो सकेगा कोई उदासीन बचक-मात्र रह जायगा। स्वतन्त्र जगत् से सम्पर्क का सब भी अनुभूति की मात्रा निश्चित कर सकता है। जिसने अंगारे उठा उठाकर हाथ को कटोरा बना लिया है उसकी धूमिलता-अंगारे पर पड़

पर भी चलने की तीव्र अनुभूति नहीं उत्पन्न करेगी पर जितना हाथ अचानक अंतरे पर पड़ गया है उसे छाने का तीव्र मर्मानुभव करना पड़ेगा। जितने कर्मों पर मर्मे का अन्वय कर लिया है उसके घरीर में अनेक कांटों का स्पर्श तीव्र ब्यथा नहीं उत्पन्न करता पर जो चलते चलते अचानक कटि पर पीर रख देता है, उसके लिए एन बांग ही तीव्र दुःखानुभूति का कारण बन जाता है।

परन्तु इन सब लक्षण अनुभूतियों के पीछे हमारे अन्तर्जन्त में एक ऐसा व्यापक अक्षय और सर्वैश्वर्यात्मक बरातम भी है जिस पर घारी विविधताएँ ठहर सकती हैं। काम्य हमी को स्पष्ट करके सर्वैश्वर्यात्मकता प्राप्त करता है। इसी कारण जिन मुख्य-दुःखों की प्रत्यक्ष स्थिति भी हमें तीव्र अनुभूति नहीं देती उन्हीं की काम्य स्थिति से सम्प्राप्त करके हम अस्थिर हो उठते हैं।

व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामञ्जस्य की अनुभूति भी रूहस्यानुभूति है। यदि एक सौन्दर्य-अंश या सामञ्जस्य-लक्षण हमारे सामने किसी व्यापक सौन्दर्य या अक्षय सामञ्जस्य का द्वार नहीं खोल देता तो हमारे अन्तर्जन्त का सम्प्राप्त से आन्वित हो उठना सम्भव नहीं। इतना ही नहीं किसी कर्म के सौन्दर्य और सामञ्जस्य की अनुभूति भी रूहस्यात्मक है। इसी से मनुष्य ऐसे कर्मों को आलोक-स्तम्भ बना-बनाकर जीवन-पथ में स्थापित करता रहा है।

सौन्दर्य अपने समर्पण के लिए बिना सामञ्जस्य की ओर इष्टित करता है। विकल्पता भी अपने विरोध के लिए उसीकी ओर संकेत करती है पर दोनों के संकेत में अन्तर है। प्रत्येक सौन्दर्य-अक्षय अक्षय सौन्दर्य से जुड़ा है और इस तरह हमारे हृदयगत सौन्दर्य-बोध से भी जुड़ा है पर विकल्प व्यापक सामञ्जस्य का विरोधी होने के कारण हमारे भीतर कोई स्वभावगत स्थिति नहीं रहता। सौन्दर्य से हमारा बहु परिचय है जो जा लगत जलराशि में एक नहर का दूसरी नहर से होता है पर विकल्पता से हमारा वैसे ही मिलन है वैसे पानी में फेंके हुए पत्थर और उससे उठी नहर में सहाज है। सौन्दर्य विरपरिचय में भी मबीन है पर विकल्पता अति परिचय में निष्ठागत साधारण बन जाती है। इसी से सौन्दर्य की रूहस्यानुभूति ही अन्तहीन काम्यकथा में तब परिच्छेद जोड़ती रही है।

माधुनिक युग में कलाकार की सीमाएँ जानने के लिए जीवन-व्यापी बाधाकरण की विषमताओं से परिचित होना अपेक्षित रहेगा।

हमारी सामाजिक परिस्थिति में अभी तक प्रतिक्रियात्मक अंत-युग ही चल रहा है। उसके सम्बन्ध में ऐसा कोई स्वस्व और पूर्ण विश्व अंकित नहीं किया जा सका जिस दृष्टि का नेत्र बनाकर निर्माण का काम आरम्भ किया जा सकता। इस विधा में हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और सुविधा के अन्तर्गत ही छोड़ने-छोड़ने का कार्य करते हैं। अतः कहीं नष्टान पर सुधार की हथौड़ी का हुंका स्पर्श होता है और कहीं राज्य के डेर पर जोहार की नहरी बोट। क्या संस्कृति क्या आवरण सबसे हवारी सक्रियों का विशिष्ट-वैसा प्रयोग है इसी से बा टूट जाता है वह हमारी ही आँखों की किरकिरी बनने के लिए सामुदायिक में अंतर्गत मतता है और जो हमारे प्रहार से नहीं बिचरता वह विषम

उषा विषय बनकर हमारे ही पीरों को आहुत और गति को कुण्ठित करता रहता है। निर्माण की विद्या में किसी सामूहिक सङ्घ के अभागे में व्यक्तिगत प्रयास अराजकता के आन्तरिक उदाहरणों से अधिक महत्त्व नहीं पाते।

किसी भी उत्थानशील समाज और उसके प्रबुद्ध कलाकारों में जो सक्रिय सहयोग और परस्पर पूरक आदान-प्रदान स्वभाविक है, वह हमारे समाज के लिए कल्पनाशील बन गया। समाज की एक विन्दु पर अक्षयता और कलाकार की सक्रिय गति-विह्वलता ने उन एक प्रकार से असामाजिक प्राणी की स्थिति में डाम दिया है।

प्रत्येक सच्चे कलाकार की अनुभूति प्रत्यक्ष सत्य ही नहीं अप्रत्यक्ष सत्य का भी स्पर्श करती है उसका स्वप्न वर्तमान ही नहीं अनागत को भी रूपरेखा में बाँधता है और उसकी भावना यथार्थ ही नहीं सम्भाव्य यथार्थ को भी मूर्तिमत्ता देती है। परन्तु हम उसकी व्यक्तिगत और अनेक रूप अभिव्यक्तियों वृक्षों तक पहुँचकर ही तो जीवन की समष्टिगत एकता का परिचय देने में समर्थ हैं।

कलाकार के निर्माण में जीवन के निर्माण का लक्ष्य दिया रहता है जिसकी स्वीकृति के लिए जीवन की विविधता आबन्धक होती। जब समाज उसके किसी भी स्वप्न का मूल्य नहीं आँकता किसी भी बाध को जीवन की कठौटी पर परबना स्वीकार नहीं करता तब सामाजिक कलाकार तो सब-कुछ भूल में फँकर बैठे आत्मक के समाज लोभ प्रकट कर देता है और महान् समाज की उपस्थिति ही मुसाने लगता है। हमारे कला-क्षेत्र में जो एक उच्छ्वस्त गति है, उसके मूल में निर्माण की सन्तुलित सक्रियता से धार्मिक विषया लोभ की अस्थिरता ही मिलेगी।

एक और समाज पलायन से पीड़ित है और बूझती और धर्म-विह्वल। एक बात हो नहीं सकती इसका वृक्ष वृत्त के भीतर वृत्त बनाता हुआ एक पीर से बाँड़ लगा रहा है। गर्द और ठंडे रस से भरे पापों की निकटता जैसे जनता तापमान एक-सा कर देती है उसी प्रकार हमारे धर्म और समाज की सापेक्ष स्थिति उन्हें एक-ही निर्जीवता देती रहती है। आज तो बाह्य और आन्तरिक विह्वल ने धर्म को ऐसी परिस्थिति में पहुँचा दिया है जहाँ बहिष्कृत रहने का नाम लिपटा और रीतिकामीन प्रवृत्तियों की अंधता कीड़ा हुई गतिजीमता है। इतना ही नहीं हम स्वयं के पँडहर का डारपास अर्थ बन गया है कलाकार यदि धर्म के क्षेत्र में प्रवेश चाहे तो उस हाथी पर गंदायमुनी काम की सम्भार में जाना हावा जो उसकी निर्मलता में सम्मग नहीं।

हमारी संस्कृति ने धर्म और कला का ऐसा प्रस्थितस्थल किया था जो कीकन से अधिक मृग्यु म बुद्ध होता गया। क्या काव्य, क्या मूर्ति क्या चित्र सबकी यथाव रीत्या और स्वतः कर्णों में अख्यात्म ने मुख्य आदर्श की प्रतिष्ठा की। परन्तु जब धर्म के अक्षय स्थलों के नीचे बहार वह अख्यात्म-स्थान बन गया तब धर्म के निर्जीव कलात्त में हम मृत्यु का ठंण स्पर्श मिलने लगा।

दारी को बनाने वाली पतना का अक्षरीय धर्म तो प्रत्यक्ष नहीं हुआ परन्तु उसके अभाव में अक्षय दारी का धर्म-यलकर मृत्त होता प्रत्यक्ष भी रहेगा और बाता धर्म को दृष्टि भी करेगा। समन्वयात्मक अख्यात्म कर यो गया यह तो हम म जा

उके परन्तु व्यावहारिक धर्म की विविध विवृतियाँ हमारे जीवन के साथ रहीं। ऐसी स्थिति में काश्य तथा कर्माओं की स्वल्प जतिशीलता अगम्य हो उठी। निर्माण-युग में तो कर्मा-सृष्टि अमृत की संजीवनी देकर ही संभव हो सकती थी वही पतन-युग में विराट की उत्तेजना-मात्र बमकर विक्रमशील मानी गई। विराट का उपयोग तो स्वयं तो भुसाने के लिए है स्मरण करने के लिए नहीं और जीवन का सुजनारमक विकास अपनेपन की शैतना में ही सम्भव है। परिणामतः कर्माएँ और काश्य जैसे-जैसे हममें बेसिद्ध की बेष्टाएँ मरने लगे जैसे-जैसे हम विकास-युग पर लक्ष्यप्राप्त होते गए।

आमरण के प्रथम चरण में हमारी राष्ट्रीयता ने अपनी व्यापकता के लिए जिस अध्यात्म का आह्वान किया काश्य ने सौन्दर्य-काया में उठी की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। कवि के धर्म के बराबर पर किसी विवृत कवि को स्वीकार नहीं किया परन्तु सक्रिय विरोध के आशयों का अभाव-सा रहा।

कुछ ने सम्प्रदायों की संकीर्णता के बाहर रहकर, आदर्श चरित्रों को लीन करके ही न जाना और इस पुरानी सांस्कृतिक परम्परा और नई लोक-भावना का समन्वय उपस्थित किया। कुछ ने धर्म के मूलभूत अध्यात्म को व्यक्तिगत मापना के उभ बराबर पर स्थापित कर दिया जहाँ वह हमारे अनेकरूप जीवन की मरुत एकता का आधार भी बन सगा और सौन्दर्य की विविधता की व्यापक पीठिका भी।

कुछ ने उसे स्वीकार ही नहीं किया परन्तु उनके स्वाम में किसी अन्य व्यापक आदर्श की प्रतिष्ठा न होने के कारण यह अस्वीकृति एक अर्थात्सम विरोध-प्रदर्शन मात्र रह गई। नास्तिकता उठी विद्या में सुजनारमक विकास है सकती है जब ईश्वरता से अधिक संजीव और सामन्वयस्वपूर्ण आदर्श जीवन के साथ चलता रहे। जहाँ केवल अविश्वास ही उनका सम्बन्ध है जहाँ वह जीवन के प्रति भी अनास्था उत्पन्न किये बिना नहीं रहती। और जीवन के प्रति अविश्वासी व्यक्ति का सुजन के प्रति भी अनास्थावान हो जाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति का अन्तिम और अवस्थामात्री परिणाम जीवन के प्रति अर्थात्ता की भावना और मिरापा ही होती है। इसी से सच्चा कवि या कलाकार कितनी-न-कितनी आदर्श के प्रति आस्थावान रहेगा ही।

धर्म ने यदि अपने आपको रूप के समान पत्थरों से बाँध लिया है तो राजनीति ने बरती के हास पर पड़े पानी के समान अनेक बाराओं में विभक्त होकर व्यक्ति को बिलय बना है।

पिछले पच्चीस वर्षों में विश्व के राजनीतिक जीवन में जो-जो आदर्श उपस्थित किये गए उनमें से एक को भी अभी तक पूरा विकास का अवसर नहीं मिल सका। पुराना पर स्वार्थी साम्राज्यवाद लीन पर मूर नास्तीर्य और फासिश्यम आध्यात्म-प्रधानता भी बाद अन्ततत्त्विक साम्बवाद, समाजवाद आदि सब रैत के तीसरे वर्ग के छोटे दिग्ग ने ठसठाठ मरे उन माधियों-जैसे हो रहे हैं, जो एक-दूसरे के सिर पर सवार होकर ही बढ़ रहने का अवकाश और लड़ने-झड़ने में ही मनोरंजन के साधन पा सकते हैं। इनमें से मानव-कल्याण पर केन्द्रित विचारबाराओं को भी अठ्ठाधियाँ तो दूर रहीं अभी विकास के लिए पचास वर्ष भी नहीं मिल सके। एक की सीमाएँ स्पष्ट हुए बिना ही दूरी अपने

लिए स्थान बनाने लगती है और इस प्रकार विश्व का राजनीतिक बीजमपरस्पर-विरोधितो घटितियों का मेल-माल रह गया है ।

हमारा राजनीतिक वातावरण भी कुछ कम विषम और छिन्न-भिन्न नहीं ; वास्तव में हमारी राष्ट्रीयता जनता की पुत्री होने के साथ-साथ बर्म और पुत्री की पोष्य पुत्री भी ता है । अतः दोनों ओर के युग-अवबुध उसे उत्तराधिकार में मिलते रहे हैं । उसकी छाया में सामिक विरोध भी पनप सके और आर्थिक वैषम्य से उत्पन्न बौद्धिक मतभेद भी बिकास पाते रहे ।

इसके अतिरिक्त हमारी राष्ट्रीयता की गतिशीलता के लिए आध्यात्मिक बरातल पर भी एक सैनिक संघठन अपेक्षित था और सैनिक संघठन की कुछ अपनी सीमाएँ रहेंगी ही । सेना में मज और और बय के बिदनासी ही रहे । ऐसी सम्भावना सत्य नहीं हो सकती । पर जो व्यक्ति स्वार्थ या परार्थ के लिए, बिबधता या अन्तर की प्रेरणा से परार्थ की अनुविधा या आदर्श की चेतना के कारण सेना की परिधि में आ गए, उनमें सभी को बाह्य वेधभूया और गति की दृष्टि से एक-सा रहना पड़ेगा । इन प्रकार सैनिक संघठन में बाह्य एकता का जो बहुरूप है वह आन्तरिक विधेयता का नहीं और यह ब्रुटि हमारी राष्ट्रीयता में भी अलजाने ही अपना स्थान बनाने लगी ।

यह कुछ सयोग की ही बात नहीं कि इस युग में कोई महान् कलाकार राजनीति की कठिन रेखा के भीतर स्वच्छन्दता की साँस न ले सका । जहाँ तक हमारी कविता और कलाओं का प्रश्न है वे अमायात्मक के बीनों के समान सब द्वारों पर अपना अनामपन पागे को स्वतन्त्र रहीं । परन्तु हर द्वार पर उनके गीत के लिए स्वर-ताल निदिष्ट और विषय निश्चित थे । जो नीति में सुनता जाहा वह समाज को नहीं भामा और जो समाज को अक्षिकर हुआ वह राष्ट्रीयता की स्वीकृति न पा सका ।

ऐसी स्थिति में कलाकार यदि नवीन प्रेरणाओं को जीवन की व्यापक पीठिका पर प्रतिष्ठित कर सकता तो उसका सक्ष्य स्पष्ट और पथ परिष्कृत हो जाता परन्तु हमारे समाज की छिन्न-भिन्नता ने यह कार्य सक्ष्य नहीं रहने दिया । इस विषय मानव समष्टि में भी मैं बीरानवे मनुष्य तो जड़ और निर्धन धमजीबी हैं । जिनकी स्थिति का एकनाम उपभोग रोष स. के लिए सुबिधाएँ जुगाना है और रोष स. में अकर्मण्य धमजीबी कक्ष बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवी आर्थिक आवि इस प्रकार एकन है कि एक की बिद्धति से दूसरा नलता-सी-बता रहता है ।

केवल धमजीबीवियों में किसी जाति की स्वन्व विधेयताओं और व्यापक गुणों को खोजना व्यर्थ का प्रयास है । उनकी स्थिति तो उस रोष क समान है जो बितना अधिक स्थान बेरता है, उनका ही अधिक स्वास्थ्य का अभाव प्रकट करता है और जैसे-जैसे तीव्र होता है जैसे-जैसे जीवन के संकट का निमापन बनता जाता है । निताप्त निर्धन बुद्धिजीवी बर्म जैसे एक ओर उच्छ बनने की आर्कासा रणकर दूसरी ओर अभाव की विमाओं न बबकर टूट जाता है । उनी प्रकार गर्वका समूह भी उच्छतावनित एवं और सुबिधाओं के दुइ गति में पचघटा रहता है ।

जिन बुद्धिजीवी बर्म को इन बिघट पर निरभेष्ट जाति का अस्तित्व बनने का

अधिकार है उसने मनबीबी की मुकामिना और अपने समान की संकीर्णता के साथ ही मय शायरान को स्वीकृति दी है। अतः एक शरीर में दो प्रेतात्मियों के समान उनके जीवन में दो मित्त प्रवृत्तियाँ घुस-कूब मपाती रहती हैं। विपमताओं से उत्पन्न और संकीर्णता से पोषित स्वभाव की इस युग की विचोपतामा ने एना रूप दे दिया है जिसमें पुराना स्वार्थ बनीसूत है और नवीन ज्ञान पुत्रीभूत।

विज्ञान के वरम विकास ने हमारी आभुमिच्छा को एकांगी बुद्धिवाह म इस तरह सीमित किया है कि आज जीवन के किसी भी आदर्श को उसके गिरपेक्षा सत्य के लिए स्वीकार करना कठिन है। परिणामतः एक निस्सार बौद्धिक उमम्भन भी हमारे हृदय की सम्पूर्ण सरस भावनाओं से अधिक सारबटी ज्ञान पहुँचे लो आश्चर्य ही गया है। इस ज्ञान ब्यवसायी युग में बिना म्पाधी पूँजी के ही सिद्धान्तो का ब्यापार सहज हो गया है अतः न अब हमें किसी विश्वास का सरोपण बीचने के लिए अपने जीवन को कसीटी बनाना पड़ता है और न किसी आर्श का मूस्य बीकने के लिए जीवन की विविधता समझने की आवश्यकता होती है। हमारा विश्वास बीचन इतना ब्यक्ति-प्रधान है कि माय-बैयक्तिक भ्रामितियों मी समष्टिगत सत्य का स्थान ले लती है और स्वार्थ-माधन के प्रयास ही ब्यापक मतिधीनता के पर्याय बन जाते हैं।

जहाँ तक जीवन का प्ररम है उस संजीवता के बीचन में देसन का न बुद्धिवादी को प्रवकास है न इच्छा। बहु ता उसे शर्पण की छाया के समान स्पर्श से दूर रसकर देखने का अम्पास करते-करते स्वय इतना निलिप्त हो गया है कि उसे ज्ञान का रजिस्टर मान कहना चाहिए। जीवन ने ब्यापक स्पम्भन से बहु जितना दूर इटता जाता है उतना ही विकास के मूल तत्त्वों से अपरिचित बनता जाता है। और अन्त म उसका भारी पर अज्ञानात्मक ज्ञान उसी के जीवन की उप्पता को ऐसे दबा देता है जैसे छोटी-सी जिनपारी को राक का डेर। आज की आवश्यकताओं के अनुसार बहु उछार-भर क सम्बन्ध में बहुत कुछ काठम्भ जागता है। परन्तु अपनी बरटी की अनुमृति के बिना मह ज्ञान बीचन चुनते रहने के लिए ही उनके मस्तिक की सारी सीमा बेर रहते हैं।

हमारे बुद्धिबीबी बर्ष में अधिकारों लो मानसिक हीनता की भावना में ही पसले और बहते हैं। उनका बाह्य जीवन ही समुद्र पार के कतरे-कतरे आच्छादना से अपनी नम्भता को लही सिपान है अन्तर्बंगत् को भी बही से लोहार की बीकनी-बैसा स्पन्दन मित्त रहा है। उनका पगु-से-पंगु स्वप्न भी बिबेधी पक्ष तथा भेने पर स्वर्ग का सम्बेधवाहक मान लिया जाता है। उनका बिरुप से बिरुप आर्श भी पश्चिमीय सभि में बसकर सुन्दरतम के अतिरिक्त और कोई सजा नहीं पाता। उनका मूस्यहीन-से मूस्यहीन सिद्धान्त भी इसरी ससृति की छाया का स्पर्श करते ही पारसो का धिरोमणि कहलाने लगता है। उनका बरिज-से-बरिज विचार भी बेसी परिबान में बिबेधी देबन्ध सपाकर अमस्त विचार-जगत का एककज सम्राट् स्वीकार कर लिया जाता है।

ऐसे मम्भवस्थित बुद्धिबीबीयों में संसृति की रेखाएँ टूटी हुई और जीवन का चित्र अधूरा ही मिलेगा।

केवल यम ही बिसे स्पन्दन देता है, उस विद्याम मानव-समूह की कथा कुछ हमारी

हो है। बुद्धिजीवियों में उसका सम्पर्क झूटे हुए कितना समय बीता होगा इसका अनुमान बिन्दु-बिन्दु समसूत्र बन हुए उसके अज्ञान और तिल तिल करके पहाड़ बने हुए उसके अज्ञानों से सगामा जा सकता है। मात्र उसकी बड़ता की खाई इतनी गहरी और चौड़ी हो गई है कि बुद्धिजीवी उस और झुकने के विचार-मात्र से समीत हो जाता है पार करना तो दूर की बात है।

साधारणतः घाटीरिक्त भ्रम और बुद्धि-व्यवसाय एक-दूसरे की गति के अन्तरोपक हैं इसी से प्रायः विचारों की उत्तमता से छुटकारा पाने का इच्छुक एक-न-एक धर्म का काय धारणन कर देता है। इनके अतिरिक्त और भी एक स्पष्ट अन्तर है। बुद्धि जीवन का मूषमता में स्थान करता है, परन्तु उसकी सम्पूर्णता पर एक व्यापक अधिकार बनाये रखता नहीं मूमती। इसका निपटीठ, धर्म पूरा भार झामकर ही जीवन का अपना परिचय देता है परन्तु उसकी सम्पूर्णता को सब ओर से नहीं घेरता। प्रायः बुद्धि-व्यवसाय मिठनी घोमता में जीवनी वाकित का शय कर सकता है, उतनी घोमता की समता भ्रम में नहीं। इसी में जीवन के व्यावहारिक कण्ठस पर, बुद्धि-व्यवसायी का कुछ विचित्र और अस्त-व्यस्त मिलना मिलना मन्त्र है धर्मिक का बूढ़ और व्यवस्थित रखता उतना ही निश्चित। नैतिकता की दृष्टि में भी भ्रम मनुष्य को सीधे गिरने की इतनी सुविधा नहीं देता जितनी कि द सकता है क्योंकि धर्मिक के भ्रम के साथ उसकी आत्मा का बिक जाना मन्त्राभ्य भी है परन्तु बुद्धि-विशेषता की तुला पर उसकी आत्मा का बड़बाना अनिर्वास्य रखता है।

भ्रम की स्फूर्तिशायक पवित्रता के कारण ही सब देशों में सब युगों के सम्प्रेषबाहुक और मापक उम महत्त्व दे सके हैं। अनेक तो जीवन के आविष अस्त तक उठी की आधीविदा का मापन बनाये रहे। इस प्रकार जहाँ जहाँ जीवन की स्वच्छ और स्वाभाविक गति है वहाँ भ्रम की विधी-न-दिखीकप में निपटि बाधदयक रहती है।

कबल भ्रम ही-भ्रम के मार और विषाम बने वाले साधनों के निरालय अभाव में हमारे धर्मजीवी जीवन का समस्त मीषम मण्ट कर दिया है। यह स्वाभाविक भी था। त्रिम मिट्टी में घर बनाकर हम खापी पानी छूप बचकू आदि में अपनी रक्षा करते हैं यही अब अपनी निश्चिन्त स्थिति छोड़कर हमारे ऊपर डह पड़ती है तब बचपात में कम सहायक नहीं होती। उन मानव-समष्टि में ज्ञान के अभाव में लड़कों को जलम गहराई दे दी है यह मिथ्या नहीं और अर्थ-नैयम्य में हमारी हयनीयता को अनीम बना डाला है यह काय है परन्तु मब-मृष बह-मुन बुझने पर गता तो स्वीकार करना ही होगा कि भ्रम का यह उपायक केवल बुद्धि-अभाषारी से अधिक स्वाभाविक मनुष्य भी है और आर्तीय सुनों का तमस अधिक वि-बगनीम रसक भी। इतना ही नहीं युगों से मूम परिष्कार और मीमित विस्तार पाने वाली न्युय चीज बिभ आदि कमाओं के मूमकप में यह मंत्राय है और जगामी निस्वों की बिबिध व्यावहारिकता भी बह संभाव है। जीवन के गणव में अह्रम की बह जिननी समता रखता है उतनी किसे बुद्धिवादी में मन्त्रम नहीं। मान्ठव में उमक पागम प्रसाव के लिए बुद्धिजीवी ही विभीषण बन गया अन्वया उमक जीपन में विट्टियों की इतनी बिगरी सेना का प्रवेग महक न हो पाता।

हमारे बलि कसाकार जालि बुद्धिजीवियों के विभिन्न म्गनों में उगमन हुए और

वहीं पसे हैं। अतः अपने बर्न के संस्कारों का अंशमापी और मृग प्रवृत्तियों का उत्पत्तिकारी होना उनके लिए स्वाभाविक ही रहेगा। उनके मस्तिष्क ने अपने बातावरण की विषमता का ज्ञान बहुत विस्तार से संचित किया और उनके हृदय ने व्यक्तिगत सीमा में मृग वृत्तियों को बहुत सीधे से अनुभव किया। विभिन्न संस्कारों की जग घाया विविधता से भरी भावभूमि और चिन्तन की अनेक विभाजनों में मिसकर उनके जीवन को एक सीमित स्थिति दे दी थी। परन्तु उस एक स्थिति को सम्पूर्ण बातावरण में सार्वभूता देने के लिए समष्टि का वही स्पर्श अपेक्षित था जो फूल को समीर से मिलता है—मौख निरिबध पर व्यापक। जिस समाज में उनकी स्वाभाविक स्थिति थी वह विषमताओं में विचार बुझा था उससे ऊँचे बर्न के अहंकार और कृत्रिमता ने उससे परिचय अग्रम्भव कर दिया था और निम्न में उतरने पर उन्हें आभिजात्य के लो जाने का भय था। फलतः उन्होंने अपने एकाकीपन के दूर्य को अपनी ही प्यास की भाग और निराशा के पाने से इस तरह भर लिया कि उनका हृदय स्वप्न मुकुमिठ होते ही झुसस गया और प्रत्येक आश्रय अंकुरित होते ही ठिठुर बना।

बीज केवल अकेले रहने के लिए, अन्य बीजों की समष्टि नहीं छोड़ता। वह तो मूलतः समष्टि सम्भव करने के लिए ही ऐसी पृथक स्थिति स्वीकार करता है। यदि वही बीज पुरानी बरती और समस्त आकाश की अकला करके अपनी असाधारणता बनाये रखने के लिए वायु पर चढ़ता ही रहे तो संसार के निकट अपना साधारण परिचय भी तो बैठेगा।

कवि कलाकार, साहित्यकार, सब समष्टिगत विषेयताओं को नव-नव रूपों में साकार करने के लिए ही उससे कुछ पृथक अड़े जान पड़ते हैं परन्तु यदि वे अपनी असाधारण स्थिति को जीवन की व्यापकता में साधारण न बना सकें तो आश्चर्य की बस्त-मात्र रह जायेंगे। महान्-से-महान् कलाकार भी हमारे भीतर कौतुक का भाव न जमाकर एक परिचय भरा अपनापन ही जमायेगा क्योंकि वह भूमकेतु-सा आकस्मिक और विभिन्न नहीं किन्तु भ्रम-सा निरिबध और परिबध रहकर ही हमें मार्ग दिखाने में समर्थ है।

आज कलाकार समष्टि का महत्त्व समझता है परन्तु हम बाय क साध भी उसके सम्पूर्ण जीवन की स्वीकृति नहीं है। शैथिल्य बराबर पर चिर अपेक्षित मानवों की प्रतिष्ठा करते समय उसे अपनी विद्यालया की जितनी धेतता है उतनी अपन देवताओं की नहीं। ऐसी स्थिति बहुत स्पृहयोग नहीं क्योंकि वह विद्यालयों को व्यापार का सहज साधन बन जाने की सुविधा दे देती है। जीवन के स्वयं से दूर्य होकर सिद्धान्त जब बर्न समाज नीति आदि की संकीर्ण पीठिका पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब वे व्यवसाय-भूति को वही स्वीकृति देते हैं वही जीवन के विकास को नहीं दे पाते। साहित्य काव्य आदि के बराबर पर भी इस नियम का अपवाद नहीं मिलेगा।

मौख साहित्यकार और कवि के बुद्धि-बैभव और अनुभूति की शक्तिता न ऐसी किम्यासीलता को जन्म दे दिया है जो सिद्धान्तों को मात्र-बोकर रात-दिन बमकाली रहती है पर जीवन में जंग लय जाने देती है। वे अपने जीवन से बिना कुछ दिये ही एक पत्र से सब-कुछ से आना चाहते हैं और दूसरे को बहुत मूय पर देने की इच्छा रखते हैं। इस

बनकारा-भूति में उमड़ोतों पत्तों को साम होने की सम्भावना कम रहती है। काव्य में तो जीवन का निरन्तर स्पर्श और उसकी मार्मिक अनुभूति सबसे अधिक प्रेषित है। यद्यपि यह प्रकृति में उल्टे गहराई देती है तथापि यद्यपि यद्यपि यह युग यथार्थवादी है तथा जीवन के स्पन्दन के बिना उमड़ना समर्थ इतना हीतल हो उठता है कि अस्मीत उतरेनाओं से उड़नें कृत्रिम उष्मता गरी जाती है।

काव्य की उत्कृष्टता किसी विवेक विषय पर निर्भर नहीं उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस्व होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श-आश से सोना कर दे। एक पात्र-से चित्रकार का जब फटा कागज टूटी तुमिष्ठा और लम्बे डाल देने वाला रस मिल जाता है तब लय मर में वह निर्जीव कागज सजीव हो उठता है, रंगों में कल्पना साकार हो उठती है रेखाओं में जीवन प्रतिबिम्बित हो उठता है उस पारिविक वस्तु के अपारिबिक रूप के साथ हम हँसते हैं, राते हैं और उसे मानवीय सम्बन्धों में बाँध रखना चाहते हैं। एक निरर्थक भ्रमण से पूर्ण टूटे एकठारे के जखरं ठारों में पायक की कुशल रंमियाँ उसभ्रम जाने पर, उड़ी ठारों में हमारे सारे दुःख-मुख रो-हँस उठते हैं। सारी सीमा के लकीम बन्धन क्षिप्त-मिन्न होकर वह बाते हैं और हम किसी बन्धन सोन्यं सोरु में पहुँचकर बकिन्त-से मुग्ध-से उसे घटा पुनते रहने की इच्छा करने मगत है। निरन्तर पैतों से टुकराय जाने वाले कुक्ष्य पायाज से धिल्ली के कुक्षम हाथ का स्पर्श होत ही नहीं पायाज सोम के समान अपना आकार बरस डालता है, उसमें हमारे सोन्यं के धानि के बाधर्ष आय उठते हैं और तब उड़ी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित करके चन्दन-पूज से पूजकर अपने को बन्ध मानते हैं। जल का एक रस मिन्न-मिन्न रंग वाले पात्रों में पीस अपना रस बधन मेता है उड़ी प्रकार थिरन्तन मुख-नु स हमारे हृदयों की सीमा और रंग के अनुसार बनकर प्रकट होते हैं। हमें अपने हृदयों की सारी बन्धि बन्धियों को एक ही रूप देने की माकुम न होना चाहिए, क्योंकि यह प्रयत्न हमें किसी भी दिशा में लफम न होने देगा।

मनुष्य रूप एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का सन्दर्भित भाग है जिससे उसका ब्यक्तित्व और सकार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक सकार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस सकार से अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार सकार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रपाङ्क भागिनन में आवृत्त रहते हैं। उसका बाह्यकार पारिविक और सीमित सकार का भाग है और अन्ततम अपारिबिक असीम का—एक उमड़ो बिरब से बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।

जड़ चेतन के बिना बिकाम-सूय है और चेतन जड़ के बिना आकार-सूय। इन दोनों की किना मोर प्रतिबिम्ब ही जीवन है। बाहे कविता किसी भाषा में हो बाहे किसी 'पात्र' के अन्तगत बाहे उसमें पारिविक बिनन की अभिव्यक्ति हो बाहे अपारिबिक की और बाहे दोनों के अधिष्ठात सम्बन्ध की उसका अमृत्य होना का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रकट होत है। बिजनी ही मिन्न परिस्थितियों में होने पर भी हम हृदय से एक ही है यही कारण है कि या मनुष्या के देव काम समाज आदि में समुद्र के लगीं-

ऐसा अन्तर होने पर भी वे एक-दूसरे के हृदयगत भावों को समझन में समर्थ हो सकते हैं। जीवन की एकता का यह सिद्धा हुआ मूल ही कविता का प्राण है। जिस प्रकार बीजा के तारों के निम्न स्वरों में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ बिलकर चलने की ओर अपने साम्य से मंचीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है। उसी प्रकार मानव-हृदयों में एकता सिद्धी हुई है। यदि ऐसा न होता तो विश्व का मंचीत ही बसुरा हो जाता।

फिर भी न जाने क्यों हम लोग अलग-अलग छाने-छोटे दायरे बनाकर उन्नी में बैठ-बैठे सोचा करते हैं कि बसुरा हमारी पहुँच से बाहर है। एक कवि विश्व का या मानव का बाह्य-सौन्दर्य देखकर सब-कुछ भूल जाता है। सोचता है उसका हृदय में निरुत्साहता हुआ स्वर अलग एक संगीत की सृष्टि करेगा। बसुरा विश्व की आन्तरिक बदलावहुल-गुणमा पर मलबासा हो छूटा है। समझता है उसके हृदय से निकला हुआ स्वर सबसे अलग एक निरुत्साह संगीत की सृष्टि कर लेगा। परन्तु वे नहीं सोचते कि उन दोनों के स्वर मिलकर ही विश्व-संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।

मनुष्य चाहे प्रकृति के जड़ उपारानों का सञ्चार विशेष माना जाय और चाहे किसी व्यापक चेतना का अंशमूत परन्तु किसी भी अवस्था में उसका जीवन इतना सरल नहीं है कि हम उसकी पूर्ण सृष्टि के लिए गणित के अंकों के समान एक निश्चित नियन्त्रण व सञ्चालन। जड़ इन्धन से अग्न्य पशु तथा बनस्पति-जगत् के समान ही उसका शरीर नियमित और विकसित होता है। अथ प्रत्यक्ष रूप से उसकी स्थिति बाह्य जगत् में ही रहेगी और प्राक्निश्चय के सामान्य नियमों से सञ्चालित होगी। यह सत्य है कि प्रकृति में जीवन के अतिरिक्त रूप देखे जाते हैं। मनुष्य जगत् में इतना विशिष्ट जान पड़ता है कि मनुष्य की स्थूल समष्टि में भी उसका निश्चित स्थान खोज लेना कठिन हो जाता है। परन्तु इन कठिनाई के मूल में उत्पन्न कोई अन्तर न होकर विकास क्रम में मनुष्य का अत्यन्त और अन्तिम होना ही है।

यदि सबके लिए सामान्य यह बाह्य संसार ही उसके जीवन को पूर्ण कर देता तो शीघ्र प्राक्निश्चय के समान वह बहुत-सी अतिरिक्त समस्याओं से बच जाता। परन्तु ऐसा नहीं हो सका। उसके शरीर में जीता भीतिक जगत् का अन्त विकास है उसकी चेतना भी उसी प्रकार प्राक्निश्चय की चेतना का उत्कृष्टम रूप है।

मनुष्य का निरन्तर परिप्लवित होता चलने वाला यह मानसिक जगत् बस्तु-जगत् के संदर्भ से प्रभावित होता है। उसके सञ्चालन में अपनी अभिव्यक्ति चाहता है। परन्तु उसके अन्तर्गत को पूर्णता में स्वीकार नहीं करना चाहता। अथ जो कुछ प्रत्यक्ष है। केवल उतना ही मनुष्य नहीं कहा जा सकता—उसके साध-साध उसका अन्तना विस्तृत और गतिशील अप्रत्यक्ष जीवन है। उसे भी समझना होगा। प्रत्यक्ष जगत् में उसका भी अभिव्यक्ति करना होगा। अन्तना मनुष्य के अन्तर्गत में हमारा सारा ज्ञान अपूर्ण और सारे समाधान अपूर्ण रहेंगे।

मनुष्य के इस दोहरे जीवन के समान ही उसके निकट बाह्य जगत् की सब बस्तुओं का उपबोध भी दोहृदय है। जोश की बूँदों से जड़े गुलाब के दल जब हमारे हृदय में सुप्त

एक अत्यन्त सीम्पर्य और सुख की भावना का जागृत कर देते हैं। उनकी क्षणिक सुपमा हमारे मस्तिष्क को चिन्तन की सामग्री देती है। सब हमारे निकट उनका जो उपयोग है वह उन समय के उपयोग से सर्वथा भिन्न होगा जब हम उन्हें मिथी में गनाकर और पुसकम्ब नाम देकर औपचिक रूप में ग्रहण करते हैं। समय आवश्यकता और वस्तु के अनुसार इस बोहरे उपयोग की मात्रा तथा तज्जनित रूप कभी-कभी इतने भिन्न हो जाते हैं कि हमारा अन्तर्बयत् बहिर्जगत् का पूरक होकर भी उसका विरोधी जान पड़ता है और हमारा बाह्य जीवन मानसिक जीवन से संबन्धित हाकर भी उसके सर्वथा विपरीत।

मनुष्य के अन्तर्बयत् का विकास उसके मस्तिष्क और हृदय का परिष्कृत होते जतना है परन्तु इस परिष्कार का क्रम इतना जटिल होता है कि बहु निश्चित रूप से केवल बुद्धि या भावना का सूत्र पकड़ने में असमर्थ ही रहता है। अभिम्पक्ति के बाह्य रूप में बुद्धि या भावना की प्रयानता ही हमारी धारणा का आधार बन सकती है कि हमारे मस्तिष्क का विषय परिष्कार चिन्तन में हो सका है और हृदय का जीवन में। एक में हम बाह्य जगत् क संस्कारों को अपने भीतर लाकर उनका निरीक्षण-परीक्षण करते हैं और दूसरे में अपने अन्तर्बयत् की अनुभूतियों को बाहर लाकर उनका मूल्य जाँचते हैं।

चिन्तन में हम अपनी बहिर्पुञ्जी वृत्तियों को समेटकर किसी वस्तु के सम्बन्ध में अपना औचित्य समझान करते हैं अतः कभी-कभी वह इतना ऐकान्तिक होता है कि अपने से बाहर प्रत्यक्ष जगत् के प्रति हमारी जेतना पूर्ण रूप से जागरूक ही नहीं रहती और यदि रहती है तो हमारे चिन्तन में धासक होकर। दार्शनिक में हम बुद्धि-वृत्ति का ऐसा ही ऐकान्तिक विकास पाते हैं जो उसे जैसे-जैसे संसार के अत्यन्त सत्य की गहराई तक बढ़ाता जतना है जैसे-जैसे उसके व्यक्त रूप के प्रति भीतराय करता जाता है। वैज्ञानिक क निरन्तर अन्वेषण के मूम में भी यही वृत्ति निजगी अन्तर केवल इतना ही है कि उसके चिन्तनमय मनन का विषय सृष्टि के व्यक्त विविध रूपों की उसभ्य है, उन रूपों में छिपा अत्यन्त सूक्ष्म नहीं। अपनी अपनी खोज में दोनों ही बीतरण हैं क्योंकि न दार्शनिक अत्यन्त सत्य से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा पाता है और न वैज्ञानिक व्यक्त जड़ इत्य के विविध रूपों में रागात्मक स्पष्ट का अनुभव करता है। एक व्यक्त के रहस्य की गहराई तक पहुँचना चाहता है, दूसरा उसी के प्रत्यक्ष विस्तार की सीमा तक परन्तु दोनों ही विद्याओं में बुद्धि से अनुसाधित हृदय को मौन रखा पड़ता है, इसी से दार्शनिक और वैज्ञानिक जीवन का बहु सम्पूर्ण चित्र जो मनुष्य और स्रेय सृष्टि के रागात्मक सम्बन्ध से अनुसाधित है, नहीं दे सकते।

मनुष्य के ज्ञान की कुछ साकार्य, बसन्त विज्ञान आदि के समान अपनी विद्या में व्यापक न रहकर जीवन के किसी अंश-विशेष से सम्बन्ध रखती हैं अतः वहाँ वे जाये बड़ने हैं वहाँ ये जीवन की परिचालित परिस्थितियों के साथ परिचलित होकर अपनी तात्कालिक तबीयता में ही विकसित कहमाती हैं।

मनुष्य एक ओर अपने मानसिक जगत् की बुकहता को स्पष्ट करता जतना है दूसरी ओर अपने बाह्य समाज की समस्याओं को मुक्तमाने का प्रयत्न करता है। उसके समाजशास्त्र राजनीति आदि उच्चकी बाह्य स्थिति की व्याख्या हैं, उसका विज्ञान प्रकृति

क मूल तारों से उसके संघर्ष का इतिहास है उसका वर्णन उसके तथा कृष्टि के रहस्यमय जीवन का बौद्धिक निरूपण है और उसका साहित्य उसके उस समय जीवन का समीच चित्र है जो राजनीति से घातित समाजशास्त्र से नियमित विज्ञान से विकसित तथा दर्शन से व्यापक हो चुका है ।

साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे भूपर्वाही बस्त्र में दो रंगों के तार, जो अपनी-अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं । हमारी मानसिक कृतियों की ऐसी सामञ्जस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं । उसके लिए न हमारा अस्तवगत् स्वाग्य है और न बाह्य क्योंकि उनका विषय सम्पूर्ण जीवन है आदिक नहीं ।

मनुष्य के बाह्य जीवन में जो कुछ व्यथ और निर्माण हुआ है उसकी शक्ति और पुर्बलता की जो परीक्षाएँ हुई हैं जीवन-संघर्ष में उस अतिनी हार-बीत मिली है केवल उसी का ऐतिहासिक निरूपण दे देना साहित्य का लक्ष्य नहीं । उसे यह भी खोजना पड़ता है कि इस घर्ष के पीछे कितनी विरोधी मनोकृतियाँ काम कर रही थीं निर्माण मनुष्य की किस मृजनात्मक प्रेरणा का परिणाम या उसकी शक्ति के पीछे कीन-सा आत्मबल ज्ञान या पुर्बलता उसके किस अभाव से प्रभूत थी हार उसकी किस निराशा की संज्ञा थी और बीत में उसकी कौन-सी कल्पना साकार हो गयी ।

जीवन का वह असीम और अिस्तन सत्य जो परिवर्तन की लहरों में अपनी शक्ति अभिव्यक्ति करता रहता है अपने व्यक्त और अभ्यक्त दोनों ही रूपों की एकता लेकर साहित्य में व्यक्त होता है । साहित्यकार जिस प्रकार यह जानता है कि बाह्य जनत् में मनुष्य किस घटनाओं को जीवन का नाम देता है वे जीवन के व्यापक सत्य की महारह और उसके आकर्षण की परिचायक हैं जीवन नहीं उसी प्रकार यह भी उनसे छिपा नहीं कि जीवन के जिस अभ्यक्त रहस्य को वह भावना कर सकता है उसी की छाया इन घटनाओं का व्यक्त रूप देती है । इसी से वेद और काल भी सीमा में बँधा साहित्य रूप में एकदेशीय होकर भी अनेकदेशीय और युग-विशेष से सम्पन्न रहने पर भी युग-युगांतर के लिए सदैवनीय बन जाता है ।

साहित्य की विस्तृत रचनाला में हम कविता को कौन-सा स्थान दें यह प्रश्न भी स्वाभाविक ही है । वास्तव में जीवन में कविता का बही महत्त्व है जो कठोर नितियों से बिके कल के सामुद्रम को अनायास ही बाहर के सन्मुक्त सामुद्रम से मिला देने वाले वातावरण को मिला है । जिस प्रकार वह आकाश-संघ को अपने भीतर बन्धी कर लेने के लिए अपनी परिधि में लही बाँधता—प्रत्युत हमें उस सीमा-रेखा पर लड़े होकर अतिथ तक कृष्टि-प्रसार की मुक्ति देने के लिए—उसी प्रकार कविता हमारे व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक सत्य को अपनी परिधि में बाँधती है । साहित्य के अन्य रूप भी ऐसा करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु न उनमें सामञ्जस्य की ऐसी परिपति होती है न आयात-हीनता । जीवन की विविधता में सामञ्जस्य को खोज लेने के कारण ही कविता उन सन्निव कसामों में उत्कृष्टतम स्थान पा सकती है, जो पति की विभिन्नता स्वयं की अनेकपता या रेषामों की विषमता के सामञ्जस्य पर स्थित है ।

कविता मनुष्य के हृदय के समान ही पुष्टतम है परन्तु अब तक उसकी कोई ऐसी परिभाषा न बन सकी, जिसमें तक-वितर्क की सम्भावना न रही हो। ईयसे अतीत भूत से लेकर वर्तमान तक मीर 'बाष्य रसार्थकं काम्यम्' से लेकर आज के सुष्म बुद्धिवाय तक जो कुछ काम्य कल्प और उपमागिता के सम्बन्ध में कहा जा चुका है वह परिणाम में कम नहीं परन्तु अब तक न मनुष्य के हृदय का पूरा परिचोप हो सका है और न उसकी बुद्धि का समाधान। यह स्वामाबिक भी है, क्योंकि प्रत्येक युग अपनी विशेष समस्याएँ लेकर आता है, जिनके समाधान के लिए नई विचार्यें लोजयी हुई मनोवृत्तियाँ उस युग के काम्य और कसामों को एक विशिष्ट रूपरेखा देती हैं। मूलतत्त्व न जीवन के कभी बदलते हैं और न काम्य के कारण के उस धारवत वेवता से सम्बन्ध है जिसके उल्लव एक रहने पर ही जीवन की यमैकरूपता निर्भर है।

वर्तीत युगों के पिछने सचित ज्ञानकोप के हम अधिकारी हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि कविता मानव ज्ञान की अन्य शाखाओं की सबसे अग्रजा रही है। यह मम अकारण और आकस्मिक न होकर सकारण और निश्चित है, क्योंकि जीवन में चिन्तन के सुरुभ में ही भावना उदय हा जाती है। मनुष्य बाह्य सवार के साथ कोई बौद्धिक समझौता करने के पहले ही उसके साथ एक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, यह उसके प्रियु-जीवन से ही स्पष्ट हो जायया। यदि हम मनुष्य के मस्तिष्क के विकास की तुलना पशु के विकास से करें, जा अपनी धरसता न सवा ही परिमित है तो उसके दृश्य के विकास को फूल का विकास कहना उचित हागा जो अपने सौरम में अपरिमित होकर ही बिना हुआ मागा जाता है। एक अपनी परिपक्वता में पूर्ण है और दूसरा अपने विस्तार में।

यह सत्य है कि मनुष्य के ज्ञान की समष्टि में कविता को और विशेषतः उसके बाह्य रूप को इतना महत्व मनुष्य की भावुकता से ही नहीं उसके व्यावहारिक बुद्धिकोण से भी मिला जा। जिस युग में मानव-जाति के समस्त ज्ञान को एक कण्ड में दूसरे कण्ड में संकरण करते हुए ही रज्जुता पड़ता जा उस युग में उसकी प्रत्येक शाखा को अपने अस्तित्व के लिए अन्वयता के कारण स्मृतिमुक्त पद्य का ही माध्यय लेना पड़ा। इसके अतिरिक्त युष्क ज्ञान न अधिक प्राज्ञ होने के लिए भी पद्य की रूपरेखा वा बहु कामन स्वीकार किया जिसमें विषय ध्वनि और प्रवाह में युक्त होकर ध्वर अधिक प्रभावशाली हो जाती है। कहना प्यव होगा कि काम्य के उस मूलभूत आदिम-काम न लेकर अब आवश्यकतावत ही मनुष्य प्रायः अपने बौद्धिक निष्पत्तों को भी काम्य-काया में प्रतिष्ठित करने के लिए काम्य ही जाता जा आज यद्य के विकास-काम तक एगी कविता का अभाव नहीं रहा।

साधारणतः हमारे विचार बिज्ञापन होते हैं और भाव संक्रामक इनी से एक की सुरुपता पहले मननीय होने में है और दूसरे की पहले संबन्धनीय हाने में। कविता अपनी संबन्धनीयता में ही चिररतन है बाह्य युग विषय के स्पष्ट में उसकी बाह्य रूपरेखा में कितना ही अन्तर क्यों न आ जाय। और यह संबन्धनीयता भाव-पद्य ही में अद्यय है।

महादेवी एक सर्वेक्षण

इंद्रनाथ मदान

छायावादी कवियों में महादेवी का विचित्र स्थान है। वह इसलिए नहीं कि वह तारी है बरन इसलिए कि उन्होंने छायावादी काव्य के भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष को विवक्षित किया है। महादेवी की अन्य छायावादी कविता की अपेक्षा इस काव्य का सबसे अधिक है वह है कि कविता उनके कण्ठ से विगुह अनुसूतिमयी होकर फूटी है। हृदय की मूलतम एक पहलुतम भावनाओं को जितनी सफ़लता के साथ महादेवी ने व्यक्त किया है उतनी सफ़लता के साथ अन्य छायावादी कवि सामर्थ ही कर सके हा। उनका काव्य में मात्र कला का विकास न होकर हृदय की झंकार भी है। प्रसाद निराशा और पंथ वस्तु परक कविता लिखने की ओर भी उन्मुख रहे हैं—प्रसाद 'कामायनी' लिखकर निराशा 'तुमसीदास' और पंथ प्रयतिशील कविताया का सुजन करके। परन्तु महादेवी ने आत्म से भरकर अन्त तक आत्मपरक कविताएँ ही लिखी हैं। उनकी भाषा प्रवीत-काव्य के माध्यम से मुलरित हुई है जिसमें गहन वेदना और मुकुमार कल्पना का मधुर मिसल है। प्रवीत-काव्य के लिए यह आवश्यक है कि एक ही भाविक उद्गार कसर-भरे शब्दों में स्वाभाविक रूप से फूट पड़े और उसकी वेदना हृदय में भर करती बसी जाय। महादेवी ने काव्य का यह गुण है कि उनके गीत सीधे हृदय को झंकार करते हैं। छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि सादकता को मिसाया निराशा ने उसे मुक्त रूप दिया पंथ ने शब्दों को पंथा पर बहा कर उसे मुशील और सरल बनाया ता महादेवी ने उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रसाद निराशा और पंथ ने भाव-पक्ष की उपेक्षा की है। उनकी कविता में भी भाव-पक्ष का समृद्ध रूप लिखकर सम्भूत आया है। महादेवी का कला पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष के प्रति अधिक आग्रह है। इस बीच में यदि स्वाभाविक भावना स्वत ही तबीत छव में निस्सृत हो गई है तो वह महादेवी का आत्म-बुझकर छंद-परिवर्तन करना या तबीत प्रयोग करना नहीं कहा जा सकता जैसे कि प्रसाद पंथ तथा निराशा के काव्य में हुआ है। प्रसाद ने अनेक प्रयोग किये हैं जैसाकि उनका 'प्रेम-पवित्र' मिसा जा सकता है जिसे उन्होंने ब्रजभाषा से लड़ी बोली में और वदसे हुए छंदों में लिखा। पंथ ने तो स्वयं ही 'पम्नाब' की भूमिका में शब्दों की योजना में प्रयोग और ब्रजभाषा तथा लड़ी बोली के अन्तर के भाव तबीत छवों की ओर भी इंगित किया है। निराशा

एक के नाते बिक्रमात् है। उनकी कविता 'भजनमय संश्लेषों की छाटी राह' छोड़कर बही है। परन्तु महादेवी ने ऐसा नहीं किया है। उन्होंने केवल आत्म-अकाशम पर दृष्टि रखा है और इस बीच में यदि कहीं कहीं प्रतीकों और संश्लेषों का प्रयोग हुआ यथा है तो वह सयोग बघ ही हुआ है। और वह इतना अधिक हुआ है कि उसका बिनाप कारण है। उनकी कविता में वेदना या टीस अधिक है जो उनके काव्य की मूल भावना है। महादेवी की कविता में वेदना और कष्ट का साम्राज्य है। वेदना के ताप से गलकर उनके हृदय की इन्दीमूत अनुसृति पारे की भीति तरंग होकर बह निकली है।

महादेवी की कृतियों से अवगत होना अपेक्षित है। अब तक इनके पाँच काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' 'सांगम्यगीत' और 'दीपशिखा'। 'नीहार' 'रश्मि' 'नीरजा' तथा 'सांगम्यगीत' की १०२ कविताएँ एक ही संग्रह 'सामा' में संकलित की गई हैं। इस प्रकार आज 'सामा' और 'दीपशिखा' उनके काव्य के दो संग्रह उपलब्ध होते हैं। इन काव्य-ग्रन्थों में संग्रहीत गीतों से जहाँ महादेवी के आध्यात्मिक चिन्तन और रहस्यमयी भावना का पता चलता है वहाँ उनकी 'अतीत के अस्मिन्' 'स्मृति की रेखाएँ' आदि गद्य-कृतियों में उनके सामाजिक चिन्तन के स्वरूप के वर्णन होत हैं। इन रेखाचित्रों और मस्मरणाँ में महादेवी की आत्मा छायावाद की सुन्दर भूमि से सामाजिक यथार्थ की कठोर भूमि पर उतर आई है। मन्त्रित उनकी संवेदना इसी मरल और पावन है कि जिन व्यक्तियों को लेकर वे रेखाचित्र सिल पाए हैं उनमें महादेवी का रागात्मक सम्बन्ध ही गया है। उनकी हृदयीय बया का चित्र अंकित करने हुए महादेवी न स्वयं का भी आत्मम सिया है जो आज के गद्य की एक प्रमुख विधापत्रा है। परन्तु गद्य में भी उनकी महान दृष्टि का आलोक है। उनके विचाररूप की मीठी पाने के लिए 'गृहसा' की कविता और 'महादेवी का विवेचन' नामक गद्य पत्रतीय हैं। इनमें उनके व्यक्तिगत का सामाजिक पक्ष उल्लेखित है जिसकी प्रायः उपलब्धि की आनी है। पहली इति म नारो को लेकर सामाजिक के सम्बन्ध में बस्तु-विचित्र के विषय के माय वैज्ञानिक विवेचन किया गया है और दूसरी में साहित्य की समस्याओं—छायावाद मीनिकाव्य आदि—पर कवयित्री ने अपने मन्त्रीर चिन्तन का परिचय दिया है। आधुनिक साहित्यिक समस्याओं पर सिल के विवेचन महादेवी के विभिन्न दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं।

उनके काव्य की मूल विशेषताओं का अनुमीलन करने के लिए उनके व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का मध्यम आवश्यक है। इसमें मन्त्रेह नहीं है कि महादेवी का व्यक्तित्व अपना निरन्तर रखता है। मन्त्र-वाक्य में जो स्वातन्त्र्य और प्रायः वा कही छायावाद में महादेवी को उपलब्ध है और इसी को लेकर सोम उन्हें आधुनिक युग की मीरा भी कहत हैं। इन विषय में कुछ मतभेद भी पाया जाता है। महादेवी स्वयं इस प्रकार मीरा से उपमा दमा अनुचित एवं असंगत समझती हैं। इन विषय पर सम्मति देने का मीरा संवरण करना भी कठिन है। जहाँ तक दुःख-दर और पीड़ा-कष्ट का सम्बन्ध है वहाँ तो मीरा और महादेवी में विषय भिन्न नहीं है। मीरा राजकुमारी की और जहाँसे 'मेरी दर्द म करने कीय की पुकार' शर्णाँ थी। महादेवी कथि राजपराने में उपलब्ध नहीं हुए परन्तु ऐसे सम्बन्ध परिवार में उनका जन्म हुआ है जहाँ सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ

प्राप्त थी। उन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है कि मधुमय कोमल कहीं नू जा गई परवसिनी
 ये। इस प्रकार बेचना और पीड़ा का संसार शर्मों के पाम है। यन्त्र है परिस्वनिर्वा
 जोर गिशा-सीसा का। मीरा रहस्यवाणी मनों की परम्परा के सम्कार लेकर आई थी
 और रसाय की हृदा में उन्होंने सहज ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया था। महादेवी बीमबी
 सही से वैज्ञानिक युग में पैदा हुई है। जहाँ वह भिन्नुची भी नहीं बन पाई। उनकी सिंगा
 भी अपने-अपने ऋषि मन्त्रों में हुई है। मीरा ने अपने को गिरधर गोपाल के प्रति समर्पित
 कर दिया था और अनुबल जस सीध-सीध प्रेम-वसि बार्दी थी। उनका प्रियतम सयुक्त
 साकार था। महादेवी में भी असीम के प्रति अपने को समर्पित किया है और जो उसने
 भी कम नहीं बताया है। उनका प्रियतम निर्गुण निरकार है। मीरा की कविता में किन्तु
 अनह-नाइ मुरत निरल ज्ञान-दीपक सुयुग्मा की श्रेष्ठ सुप्त महम हग और बगम देग
 की चर्चा शान पर भी रहस्य-साधना मौन है। उनके भावों का प्रक बज का छमिबा गिर
 बर सागर था। महादेवी में ऐसे प्रतीक नहीं मिलते क्योंकि आज का युग इन प्रतीकों का
 नहीं है। इसलिए महादेवी में नवीनता भी है और उनकी बेचना कुछ अस्पष्टता से मुक्त
 होने पर भी तीव्रता में मीरा से कम है। मीरा की सीधी अभिव्यक्ति महादेवी में नहीं
 है। महादेवी के विचार और रूपनार्थ भी मीरा से नहीं मिलेंगे। इन प्रकार के अन्तर के
 हाते हुए भी दोनों में कुछ समानताएँ भी हैं। श्री नन्दकुमारे बाजोयी के सपना में महादेवी
 और मीरा साधनिक दृष्टि से एक ही परम्परा की अनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

महादेवी मीरा हैं या नहीं इस विचार में अधिक पढ़ना गपन नहीं जान पड़ता।
 उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व इतना प्रखर है कि उनका महत्त्व किसी प्रकार उपेक्षणीय नहीं है।
 उनके प्रखर व्यक्तित्व की सबसे बड़ी साधना है—उनकी कविता में दुःखसाध का प्रभाव।
 यह दुःखसाध यह पीड़ा का संसार, उनके जीवन में अनजान ही बस गया है। और जब
 यह बस गया है तो महादेवी उस संकोप चर्मी का रही हैं क्योंकि वह उनके उस प्रियतम
 की बेन है, जो विश्व की प्रति छस में अपना स्वर मिलाए हुए है। उनका हृदय प्रतिध्वज
 किसी अभाव का अनुभव करता है उसी की धोज में मीन रहता है। वह अपना सून्यता
 का अनुभव करती रहती है। उस मून्यता में वह प्राणों का ही दीपक जलाकर बीवासी
 मनाती रहती है।^१ इस मून्यता में बीवासी मनान का आयाजन उन्होंने इसलिए किया है
 कि कभी उस प्रियतम से उनका मूक-मिलन हुआ जा। परन्तु धाम वह सब अपना हो गया
 है। आज तो उस मूक-मिलन द्वारा निमित्त पीड़ा के साम्राज्य में ही उन्हें रहना है जो
 क्षितिज के पार है जहाँ मिटना ही निर्वाण है तथा नीरव रोदन ही जहाँ पहरेदार है।^२

१ अपने इस मून्यता की मैं हूँ राती मतवाली
 प्राणों का दीप जला कर करती रहती बीवाली ।

२ पीड़ा का साम्राज्य बस गया
 उस दिन दूर क्षितिज के पार
 मिटना या निर्वाण जहाँ,
 नीरव रोदन पहरेदार ?

पीड़ा का ग्रहण करने के कारण उनके जीवन का सौन्दर्य मुख्य-स्वप्न मरना हो गया है। सौन्दर्य मुख्य-स्वप्न के मरने से उत्साम और उखाह के अन्तर्गत मरना मरिपाद और निराशा ने घर कर लिया है। उनकी यह पीड़ा जिनसे मरिपाद और निराशा से हृदय को भर गया है स्वयं उनके अपने जीवन से आई है और उसका माध्यम यह प्रियतम रहा है। जब उनकी प्यार से ससजाई पलकों पर पीड़ा का पहरा या तब उस अतिव्यथ न उम्ह पीड़ा का साम्राज्य दे डाला और परिणाम यह हुआ कि उस सोने के सपने को सब युग वापस गए तथा उनकी आँखों के जोग रीज हा गए, परन्तु फिर सोने के सपने का देखने का अवसर म मिला।^१

मरिपाद यह पीड़ा उम्ह अत्यन्त प्रिय है और वह इस छोड़ना नहीं चाहती। जान यह है कि बिच्छी के लिए पीड़ा का ही एकमात्र महाराज होता है। यदि वह भी न रहता फिर उसका जीना दुष्कर हो जाता है। आज सारी म एक बार किसी न पूछा या कि तुम इस पीड़ा को क्यों अपने मान बिपकाए निरस्त हो। छाह क्या नहीं दत्त ? सब मानी न उनकी उत्तर दिया या कि 'पीटा ही मरा जीवन है यदि इस छाह दुःख का मैं घर जाऊँगा'। महादेवी के काव्य में कुछ इस प्रकार की ही स्थिति है। वह भी पीड़ा को अत्यन्त प्यार से मैमागकर गाना चाहती है। दुःख को फिलामकी उनकी कुछ के जीवन म मिसी है और वही म करना का गान भी उनका जीवन म फूटा है। परन्तु यह उनका काव्य में अपना निशोपन बनाए हुए है। वह बख का सुख म अधिक महत्त्व देती है और उनका विश्वास है कि बख ही मानव-मान का परम्पर मिच्छ माने का साधन है। उनका कथन है— 'दय मर निच्छ जीवन का ऐसा काव्य है जो मारे मसार को एक मूख म बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे अन्तर्गत सुख हम चाहे मनुष्यता की पहली गीली तब भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बंध बाँधू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख का अर्थ मीमता चाहता है परन्तु दय मकरा बाँधकर—विषय जीवन म अपने जीवन को विषय-वदना में अपनी वैदना का इस

कैसे कहनी हो सपना है,
अनि! उस मूक अिजन की बात ?
भरे हुए सब तक फूलों में
मेरे माँसु उनके हास ।

१ इन पलकों पर
पहरा या जब पीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस अतिव्यथ ने पीड़ा कर ।
उस सोने के सपने को
देते जितने युग बीते ।
आँखों के काँप हुए ह
मोती भरता कर-रीते ।

प्रकार मिसा देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिस जाता है कवि का मोहा है। निस्सन्देह उनका यह कथन सत्य है। दुःख से जीवन में जो बस आता है उससे भारमा उज्ज्वल बनती है। उपास्यदेव की आराधना में जितना ही अधिक कष्ट अनुभव होता भारमा उसके उतनी ही तिक्त पहुँचती। 'नीहार और 'रविम' में उनका मही बुझाव तीव्र रूप में प्रकट हुआ है।

सम्भवतः महादेवी को पीड़ा इसलिए प्रेम है और कर्त्ता इनीमिष्ट श्रेय है कि इससे जीवन की साधना पूरी होती है। मही जानन्व की शरमावस्था तक से जाने का साधन है। तभी वह अमरा के लोक को दुहरा देती है और अपने मिटने के अधिकार को यथाए रचना चाहती है। जिन लोक में अकाल नहीं वेदना नहीं जलन नहीं ऐस लोक को लेकर क्या होगा? उनके लिए ऐसा लोक श्रेय है।^१ दूसरी बात यह कि यदि वह न जलैदी तो उस पीड़ा के माझाग्य में अन्धकार छा जायगा इसलिए वह मही चाहती कि अपने अस्तित्व को मिटा दें।^२ महादेवी के काव्य की यह एक बड़ी विशिष्टता है कि प्रत्येक साधक अन्त में मिसल चाहता है और मिलन में उस दुःख का पयबसाव चाहता है जिस युद्ध में कि उसे मिलन की स्थिति तक पहुँचाया है परन्तु वह बल का पर्यबसान नहीं चाहती। वह उस मानिनी नामिका की तरह है जो प्रियतम की एक भूम पर बैठ जाती है और सौ-सौ बार मनाने पर भी नहीं मानती तथा जिसने जीवन में वह एक भूम सदा के लिए तीर बगकर चुमती रहती है। इसलिए आज महादेवी ने यह युद्ध संकल्प कर लिया है कि उनके प्राणों की पीड़ा कभी श्रेय न होनी और वह पीड़ा में प्रियतम की और प्रियतम में पीड़ा को देखेंगी—

पर श्रेय नहीं होनी यह
मेरे प्राणों की पीड़ा।
तुमको पीड़ा में बुझा
तुममें बुझूँगी पीड़ा।

पीड़ा और प्रियतम एक-दूसरे में ऐसे चुम-मिस गए हैं कि दोनों में कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। इसलिए वह पीड़ा को ही सर्वस्व मानकर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहती बिरह में ही उन्ह आनन्द आता है—'मिलन का मत जान ले मैं बिरह में बिरह हूँ।' ऐसा वह क्या चाहती है? इसका उत्तर यह है कि बिरह में अतृप्ति है और

१ आत्मता जाना नहीं नहीं—

जिसने जाना मिटने का स्वाद
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी कर्त्ता का उपहार
रहने को है श्रेय ! मरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।

२ चिन्ता क्या है, हे निर्मम युद्ध जाए हीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँबेरा।

बस एक अतृप्ति है, अभाव है, तब तक उन्हें उल्लास और आनन्द की प्रेरणा मिलती है। मिसल होने पर जीवन में कोई हस्तक्षेप न रहेगी। तब जीवन विसकुल मुक्त हो जायगा मानवताहीन-सा बड़ और यह महादेवी को स्वीकार नहीं है। उनका विश्वास है कि कामनाओं की चिर-तृप्ति जीवन को निष्फल कर देती है और हमारी प्यास बुझते ही चिरचित्त का स्वस्व कारण बन जाती है। बाइबिलों का संकलन होगा इसी में है कि सारा जल बरसाकर रीते हो जाएँ और सुख की पूर्णता इसी में है कि उसमें मन फिर जाय।^१

महादेवी का काव्य में दुःखवाद, पीड़ावाद निराशावाद मानि की अभिव्यक्ति का निरूपण प्रायः सभी आलोचकों तथा स्वयं महादेवी ने भी किया है। इस दुःख के स्वरूप तथा कारणों का सम्बन्ध में मतभेद तो पाया जाता है परन्तु इसका महत्त्व का सम्बन्ध म किन्ती आलोचक को मन्त्रेह नहीं है। कवयित्री को दुःख के दोनों रूप प्रिय हैं—एक वह जो मनुष्य के संबन्धनीय हृदय को समस्त संसार से बाँध देता है और दूसरा वह जो काम और सीमा के बंधन में अकड़ी हुई असीम शैतना का कथन है। यह आशिया रूप में सत्य है कि दुःख की अनुभूति मन का परिष्कार और हृदय का विस्तार करती है। महादेवी का यह कथन है कि दुःख की अभिव्यक्ति काम और सीमा में अकड़ी हुई असीम शैतना का कथन है। भारतीय समाज में परलज्जा नारी के कथन का भी यह प्रतीक है। इनका काव्य में दुःखवाद अथवा पीड़ावाद का स्वरूप अस्वात्मपरक है अथवा समाजपरक अतीतिक है अथवा लौकिक—इन सम्बन्ध में भारी अन्तर पाया जाता है। आचार्य बाबूजी की चारणा है कि इनके काव्य में शैतना पहले व्यक्तिगत भावुकता के रूप में अभ्यकती है और अन्त में विकसित होती है। डॉ० लगेन्द्र इनकी शैतना को अस्वात्मपरक नहीं स्वीकार करते परन्तु इनमें व्यक्तिगत भावना का परिष्कार अवश्य मानते हैं। कुछ आलोचक शैतना का अस्वात्मपरक स्वरूप को खोजने के लिए इनका काव्य में एहत्यानुभूति की उन तीनों स्थितियों का उद्घाटन भी करते हैं जिनका निरूपण सत्य-काव्य में उपसम्भ होगा है। इन्होंने परमात्मा की प्रियतम का रूप में और महादेवी को उनकी शैतना में मूल आत्मा के रूप में उपस्थित किया है। प्रियतम के वियोग में आत्मा की विकसिता का व्यापक चित्रण बिच्छू की अभिव्यक्ति में हुआ है। शैतना की अभिव्यक्ति के लिए महादेवी ने दो विधियों को अपनाया है। एक में उनकी आत्म-शैतना का स्पष्ट कथन है और दूसरी में प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से पीड़ा की अभिव्यक्ति है। इन दोनों विधियों में दूसरी विधि अधिक

- १ चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन
बुझने हो प्यास हमारी,
पल में चिरचित्त जाती बन।
पूर्णतया यही भरने की
दुल कर, देना मुने धन
दुःख की चिर तृप्ति यही है
उत जम् से चिर जावे मन।

सम्पन्न एवं कर्मात्मक है। इस प्रकार वेदना-भाव की अभिव्यक्ति का स्वरूप प्रायः प्रतीकारमय है।

इतना होने पर भी महादेवी का एक स्वप्न अवरण है जिसकी स्तिग्धता में वह परिचित है और उनका विस्फार है कि उनका आत्र का विपाय पत्नीगुण में बदल जायगा उनका यह स्वप्न है— जिस प्रकार जीवन के उपाकास में मेरे सुगम का उपहास-सा करती हुई बिन्दु के कण-रूप से एक करणा की धारा उमड़ पड़ो है उसी प्रकार संध्यासात में जब सभी माना से बका हुआ जीवन अपने ही भार से बककर काठक कन्दन कर पड़ेगा तब बिन्दु के कोने-कोने में एक अज्ञात पूष सुख मुम्कट सटगा। 'नीरजा' में महादेवी अपने इस कपन की धार्मिकता सिद्ध करती प्रतीत होती हैं। यहाँ वह दुःख के नाम गुण का अनुभव कभी-कभी कर लेती हैं। अब उनका विपाय मिट-सा पला है। यही भावना 'साग्य योर्ध' में अधिक परिष्कृत रूप में व्यक्त हुई है। अब उन्हें अपने हृदय में उस अज्ञात प्रियतम की भूलक स्पष्ट प्रतीत होती है। उन्हें एक बरक समास में बिरलति का संसारमयित विचार है। एक सपु क्षण निर्वाण के सो-सी बरबान देने जाता जान पड़ता है और उन्हें मानास होता है कि बेरना के बिनियम में उन्मोने किसी निधि को पा लिया है।^१ आज उनके प्राणों में दूर के सगीत की मीठि काई नूँबता है और उन्हें अपने की कोकर कुछ गोमी हुई बस्तु मिस गई है। बिन्दु की निष्ठा मिसन के मधु-दिल में म्नात होकर आई है। आज उनके हृदय में कोई आकर बस-सा गया है।^२ यही कारण है कि वह आज अपने हृदय को धरना धारना को दीपक की मीठि मधुर-मधुर जलन का आदेश देती हैं। 'नीरजा' में उनका कथन था— हे नाम की दीपावलियो ! तुम पल भर के लिए कुछ जाना क्योंकि करनामय को तम के परदे में जाना जाता है।^३ लेकिन 'नीरजा' में प्रियतम के पक्ष से आसोक के लिए उनको अपनी मारना को दीप की मीठि बचाए रखना है।^४ 'साग्य-भीर' में

- १ एक कल्प समास में बिर-लुप्ति का संसार संचित एक क्षण क्षण है रक्षा निर्वाण के बरबान इत-इत पा लिया मैंने किसे इस बेरना के समुद्र फय में कौन तुम मेरे हृदय में ?
- २ नूँबता जर में न जाने दूर के संगीत-सा क्या आज को निद्र को मुझे जोया मिला बिपरीत-सा क्या, क्या नहा आई बिरह-निधि मिरन मधु-दिल के उदय में कौन तुम मेरे हृदय में ?
- ३ हे नाम की दीपावलियो !

तुम पल भर को कुछ जाना
करनामय को जाता है
तम के परदे में जाता ।

- ४ समुद्र-मधुर मेरे शोषक जल
मुग-गुण प्रतिबिल प्रतिफल प्रतिफल
प्रियतम का पक्ष जल्लोकिय कर ।

म भी उन्हें यही भावना आने से जाती है और विरह की शक्ति उन्हें मधुर मधु का यामिनी-सी आन पड़ती है—'विरह की शक्ति हुई बसि मधुर मधु की यामिनी-सी । 'दीपशिखा' में तो साधना के प्रारम्भ से लेकर सिद्धि प्राप्त करने तक की सभी स्थितियों के इतना ही जाते हैं। उन्होंने अपनी साधना का विवरण करते हुए लिखा है कि मैं दीप के समान अद्विराम मिटती हुई स्वजन के समीप-सी छा रही हूँ।^१ सम्भवतः इसीलिए उनका चित्त तृप्तिका रक्तकर हो गया है। ठीक भी है मिसल का प्रभाव आए और कल्पना साकार हो जाए तथा भिन्न में प्राणों का संचार हो जाए तब साधना की पूर्ति क अन्तिम शरण का भावमय समस्त सेना चाहिए।^२ इस प्रकार पीड़ा उनके काव्य में साधना का माध्यम रही है जिसके द्वारा वह मिसल की स्थिति तक पहुँचती है।

महादेवी ने 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक वेदना की विविध स्थितियाँ तक विभिन्न अनुभूतियों का चित्रण किया है। इनके काव्य में समीप अथवा मिसल के चित्र सांकेतिक रूप में ही मिलते हैं। विरह की स्थिति में जहाँ मिसल का संकेत मिल जाता है वहाँ विरह का स्वरूप भी रोमांटिक तथा मधुर है। महादेवी के काव्य में वेदना को व्याख्यात्मक न मानने वाला आलोचक उनके एकदली जीवन को ही समझा कारण समझते हैं। किसी जनाब ने उनके जीवन को एकांकीनी बरमात बना दिया है। इस जनाब अथवा अनुभूति को वे स्पष्ट एवं पारदर्शिक नहीं मानते बरन सूक्ष्म एवं मानसिक रूप में स्वीकार करते हैं। हम तरह महादेवी के दुःखवाद को अत्यन्त कामवासना के परिणाम के रूप में निरूपित किया गया है अनुभूति को व्याख्यात्मक अनुभूति से जोड़ा गया है और इसके अतिरिक्त उनके व्यक्तिगत जीवन को भी आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित किया गया है। दुःखवाद का कारण सामाजिक सम्बन्धों में वैयक्तिकी अपेक्षा अन्य सम्बन्धों में जोखने का प्रवास किया है जिसके फलस्वरूप परस्पर-विरोधी मंतव्यों की अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी के दुःखवाद का आधार लौकिक अथवा भौतिक है यह विवादास्पद है परन्तु इसके मूल में कारण मनासिक तथा सामाजिक हैं। वास्तविक प्रेम का जीवन क्या विरह तथा वेदना का जीवन बन जाता है—इसका अनुशीलन अभी अपेक्षित है। इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि महादेवी के प्रियतम और उनको पीड़ा ऐस घुस-मिल गये हैं कि इनमें अन्तर का अभाव है। उठ हुए जीवन में मीरा और गिरधर नागर, कबीर और साहब और सामान्य जीवन में सीता और मन्सू के प्रेम में अन्तर नहीं रह जाता। इसी प्रकार का प्रेम महादेवी तथा उनके चित्त-मुन्त में उपमन्त्र होता है। उनके काव्य की हम मूल बिंदुपदा के पञ्चानुभूति सहना उनके मायुर्य-भाव की ओर जाती जाती है। मीरा की भाँति

१ दीप-सी मैं

आ रही अद्विराम मिट-मिट स्वजन और समीप-सी मैं ॥

२ सजत है कितना लबेरा ।

कल्पना निज रीक कर साकार होते
और जतने प्राण का संचार होते
सो गया रक्त तृप्तिका दीपक चितेरा ।

वह भी माधुर्य भाव की उपासिका है। माधुर्य भाव में प्रिया और प्रियतम का सम्बन्ध माना जाता है। भगवान् को साधकों ने कभी माता कभी पिता कभी स्वामी कभी सला कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम के रूप में आँका है। इन सभी रूपों में प्रियतम-प्रियतमा का रूप सबसे अधिक आत्मत्वप्रद है क्योंकि इसमें परस्पर के भाव प्रकाशन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं रहता। गोपियों की वृष्णोपासना भी इसी रूप की ही इसीलिए के वृष्ण के निकटतम थी। महादेवी भी माधुर्य भाव से ही अपने प्रियतम को स्मरण करती है। वह नारी है और नारी के लिए इससे अधिक स्वाभाविक पद चुसरा नहीं हो सकता। यह भी एक कारण है कि उन्होंने अपने स्रष्टा को प्रियतम का रूप दिया है। वह अपने प्रियतम को बहुत प्रिय कहकर पुकारती है। उसका सौख्य का वर्णन करते समय मुन्दर 'बिर मुन्दर' और उसकी वेषता को बताते हुए 'मिडुर' 'निर्मोही' 'निर्मम' आदि कहकर भी सम्बोधित करती है। इस प्रकार वह समयानुक्रम संबोधनों की कल्पना करती है। महादेवी की विशेषता यह है कि वह सर्वत्र गम्भीर रहती है। कभी उनको गोपियों की भाँति प्रियतम से खेद-झगड़ या हास-परिहास करने का विचार नहीं आता। वस्तुतः वह सुदम वृद्ध की उपासिका है वहाँ उनकी कोई प्रतिवृत्ति नहीं है और वहाँ असीम पथ पर उन्हें स्वयं जाये बचना है। इसलिए उनकी पूजा भी स्वयं मन के भीतर होती है। किसी मन्दिर में उनका प्रियतम नहीं है वहाँ वह मीरा की भाँति नाच सके। वह तो बाह्य पूजा के विधान की भी स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि में बाह्य पूजा या अर्चना व्यर्थ है। जब उनका लघुतम जीवन ही उस असीम का मुन्दर मन्दिर है उनकी इत्साएँ निरय प्रिय का अभिनन्दन करती रहती हैं पर रज भोग के लिए लोचनो के बस एक उनके पास है पुनः किन्तु रोम ही अक्षत हैं, पीड़ा ही अक्षत है स्नेह भरा मन भिन्नमिलाते बीप की भाँति जलता रहता है रूप-तारक ही कमल-गुप्प का काम देते हैं हृदय की बड़कन ही रूप बनकर उड़ती रहती है, अक्षर 'प्रिय-प्रिय' जपते हैं और पलकों का गर्तक टाल देता है, तब बाह्याम्बर की क्या आवश्यकता है ?^१ इसीलिए वह मूर्ध्म मन्दिर में स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बन जाना चाहती है और उनके पीछे लयन आरती करना चाहते हैं।^२ यह सब

१ क्या पूजा क्या अर्चना है ?

उस असीम का मुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन है।
मेरी इत्साएँ करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन है।
पद-रज को जाने जमड़े भाते लोचन में जल-जल है।
अक्षत पुनः किन्तु रोम मधुर मेरी पीड़ा का अक्षत है।
स्नेह-भरा जलता है भिन्नमिल मेरा यह बीपक-मन है।
मेरे रूप के तारक में सब उत्पल का जमीलन है।
रूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्मरण है।
प्रिय प्रिय जपते अक्षर टाल देता पलकों का गर्तक है।

२ मूर्ध्म मन्दिर में वर्तुणो जाय मैं प्रतिमा तुम्हारी।
मेरे पीछे लयन अर्चने आरती।

देखकर सगता है कि महादेवी पर भक्तों और सत्तों का गहरा प्रभाव पड़ा है। जहाँ इन प्रकार के निवेदन हैं वहाँ भक्तों और सत्तों से प्रभावित भक्ति भावना का ही प्रकाशन अधिक है रहस्य-भावना का कम। जहाँनि मधुरतम व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करके उसके प्रति आत्म-निवेदन किया है। इस आत्म-निवेदन में उनकी आत्मा स्वकीया की भाँति अपने प्रियतम के पथ में आँसू बिछाए रहती है और निरंतर उनकी पूजा प्रार्थना का विधान करती है।

महादेवी की कविता में तीसरा विशेष लक्ष्य है—उनके द्वारा गृहीत प्रकृति का स्वरूप। छायावाद में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। जहाँ वह सभेतर मानवी बनकर सामने आई है जहाँ स्वतन्त्र चित्रण के रूप में और कहीं मानव-मन में उठी हुई दुःखालम्बक अनुभूतियों की व्यञ्जना में सहायता देने के लिए। यह अन्तिम रूप ही प्रमुख है जिसमें मानव ने प्रकृति के साथ तात्कालिक स्थापित किया है। प्रकृति मानो एक अंग है जिसके द्वारा भावनाएँ क्रमशः व्यक्त हो जाती हैं। मात्र ही गृहीत रीतिकाल में भी जब कि प्रकृति एक बनकर रह गई थी उसका यह रूप किसी-न-किसी प्रकार सामने आता रहा। छायावाद में कहीं तो यह हुआ है कि भावनाएँ ही प्रकृति का माध्यम हुई हैं और कहीं प्रकृति-चित्रण से ही भावनाएँ व्यक्त हुई हैं और कहीं दोनों का समानुपात हुआ है। स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण इस काल में कम ही हुए हैं और जो हुए हैं वे भी कला-विन्यास के लिए। महादेवी ने प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण बहुत कम किये हैं। प्रकृति के स्वतन्त्र-चित्रण के लिए 'पामा' में उनकी एक ही कविता है—'हिमासय के अरर'। उसमें भी उनकी अन्तर्भूत नृति उभरकर आई है। प्रकृति के रूपों वृक्षों और भावों को महादेवी ने एक अतन्त्र व्यक्तित्व दिया है। इसे यों कहें कि प्रकृति उनके साथ ही उनके प्रियतम के प्रति आत्म निवेदन में सहायक होकर समर्पित हो गई है तो अधिक सघट होगा। यही रूप उनके काव्य में अधिक प्रमुखता रखता है। वह भी अन्य कवियों की भाँति बहुरूपी और जाती हुई प्रकृति के सीमार्थ में मार्कित होकर उसमें कुछ काल के लिए ली जाती है। लेकिन ऐसी कविताओं में भी उनकी अन्तिम पंक्ति से वह अपने जी की जपन भी व्यक्त कर ही देती है। मन की तीव्र व्यापक उन्हें इतनी प्रिय है कि उससे वह स्वयं को बचा नहीं सकती और अर्थात् उसकी छाया छा ही जाती है। 'रदिम' नामक कविता में ही प्रभात के स्वतन्त्र और सुन्दर चित्र मिलते हैं। लेकिन उसके अन्त में तीव्र अपने स्वयं-यत्न पैदाकर स्रष्टि के पार उड़ गई है और अचलते पूर्वों के अन्त-कोश पर बिस्मृति का लुम्बक छाया हुआ है। यही गृहीत प्रभात-नाम की स्वयं-वेला में यह हृदय-बिहारा मधु-हास लेकर मुपि-बिहाम रंग रहा है। महादेवी के काव्य में प्रकृति के अनेक रूप मिलते हैं। कृपित तैरा घन जप पामा में वाहम का 'घने घीरे उत्तर स्रष्टि से आ बयल्ट रजनी में बसल की राति का 'मयमीन अमर पर ठाक अमर में प्रकृति का अन्तर के रूप में चित्रण मात्र प्रकृति के ऐसे माय रूप हैं जिसमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है और उसका स्वरूप नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष हो गया है। इसे भी अधिक प्रकृति का स्वरूप नहीं मिला है जहाँ प्रकृति के साथ कवियों ने अपने जीवन को एकाकार कर दिया है। इस दृष्टि से प्रिय। साध्य गगन पर जीवन वाता गीत उल्लास है। साध्य गगन के सीमार्थ के साथ अपने जीवन का

बहु नी माधुम भाव की जगतिरका हैं। माधुम-भाव में प्रिया और प्रियतम का सम्बन्ध मात्रा जाता है। मगवान् को साधकों में कभी माता कभी पिता कभी स्वामी कभी नया कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम के रूप में जाना है। इन सभी रूपों में प्रियतम-प्रियतमा का रूप सबसे अधिक आत्मसम्बन्ध है, क्योंकि इसमें परस्पर के भाव-प्रवाहान में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं रहता। योषियों की कृष्णोपासना भी इसी रूप की ही इसीलिए के कृष्ण के निष्कलतम थी। महादेशी भी माधुर्य भाव से ही अपने प्रियतम को स्मरण करती हैं। बहु गारी हैं और गारी के लिए इससे अधिक स्वामाधिक पय दूमरा नहीं हो सकता। यह भी एक कारण है कि उन्होंने अपने पदों को प्रियतम का रूप दिया है। यह अपने प्रियतम को बहुत ही प्रिय कहकर पुकारती है। उनके सौन्दर्य का वर्णन करते समय सुन्दर शिर सुन्दर और उसकी उपेक्षा को बताते हुए 'निहुर निर्मोही निर्मम' आदि कहकर भी सम्बोधित करती हैं। इस प्रकार बहु ननयानुभूत संवाधनों की नक्यना करती हैं। महादबी की विशेषता यह है कि बहु सर्वत्र गम्भीर रहती हैं। कभी उनकी योषियों की भाँति प्रियतम से झूठ-झाड़ या हास-परिहास करने का विचार नहीं आता। वस्तुतः बहु सूक्ष्म प्रण की जगतिरका हैं जहाँ उनकी कोई प्रतिबन्धिनी नहीं है और जहाँ जसीम पय पर उग्र स्वयं जाये बनुना है। इसलिये उनकी पूजा भी स्वयं मन के भीतर जाती है। किसी मन्दिर में उनकी प्रियतम नहीं है जहाँ बहु मीरा की भाँति नाच सक। यह तो बाह्य पूजा के विधान को भी स्वीकार नहीं करती। उनकी दृष्टि में बाह्य पूजा या अर्चना व्यर्थ है। जब उनकी लज्जतम जीवन ही उस जसीम का सुन्दर मन्दिर है उनकी रबासे त्रिय प्रिय का अभिमन्त्रण करती रहती हैं पय रज योगे के लिए लोचनो के जब जब उनके पास है पुनक्ति रोम ही जलत हैं पीड़ा ही जन्मन है स्नेह भरा मन भिन्नमिलते बीप की जाँति जलता रहता है दुन-तारक ही कमल-पुष्प का काम देते हैं हृदय की बड़कन ही बूय बन कर उड़ती रहती है जबर 'प्रिय-प्रिय जपते हैं और पलकों का तर्ज' तात देता है, तब बाह्यादम्बर की क्या भावस्पकता है ? इसीलिए बहु धूम्य मन्दिर में स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बन जाना चाहती हैं और उनके गीते मयन आरती करना चाहते हैं। यह सब

१ क्या पूजा क्या अर्चना है ?

उस जसीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लज्जतम जीवन है।
मेरी रबासे करती रहती निहुर प्रिय का अभिमन्त्रण है।
पय रज को योगे उमड़ जाते लोचन में जल-कण है।
जलत पुनक्ति रोम मबुर जरी पीड़ा का जन्मन है।
स्नेह-भरा जलता है भिन्नमिल मेरा यह बीपक-मन है।
मेरे बूय के तारक में तब उत्पल का उन्मीलन है।
बूय बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्मरण है।
प्रिय-प्रिय जपते जपते तात देता पलकों का तर्ज है।

२ धूम्य मन्दिर में बर्तनी धाप में प्रतिमा तुम्हारी।
मेरे गीते मयन बनये आरती।

देसकर लगता है कि महादेवी पर भक्तों और सत्ता का गहरा प्रभाव पडा है। वहाँ इस प्रकार के निवेदन है, वहाँ भक्तों और सत्ता से प्रभावित भक्ति-भावना का ही प्रकाशन अधिक है रहस्य भावना का कम। उन्होंने मधुरतम व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करके उसके प्रति आत्म-निवेदन किया है। इस आत्म-निवेदन में उनकी आत्मा स्वकीया की भाँति अपने प्रियतम रूप में मौसों बिछाए रहती है और निरन्तर उनकी पूजा-अर्चना का विधान करती है।

महादेवी की कविता में तीसरा विशेष तत्व है—उनके द्वारा गृहीत प्रकृति का स्वरूप। छायावाद में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। वहाँ वह सचेतन मानवी मनकर सामन आई है वहाँ स्वतन्त्र चित्रण के रूप में और कहीं मानव-मन में उठी सुल दुःखारमक अनुभूतियों की व्यंजना में सहायता देने के लिए। यह अन्तिम रूप ही प्रमुख है जिनमें मानव ने प्रकृति के साथ छादारम्य स्थापित किया है। प्रकृति मानो एक भग है, जिसके द्वारा भावनाएँ सरसता से व्यक्त हो जाती हैं। आज ही नहीं ऐतिहास में भी जब कि प्रकृति जड़ बनकर रह गई थी उसका यह रूप किसी-न-किसी प्रकार सामने आता रहा। छायावाद में कहीं तो यह हुआ है कि भावनाएँ ही प्रकृति का माध्यम हुई हैं और कहीं प्रकृति-चित्रण से ही भावनाएँ व्यक्त हुई हैं और कहीं दोनों का समानुपात हुआ है। स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण इस काम में कम ही हुए हैं और जो हुए हैं वे भी कला-विन्यास के लिए। महादेवी ने प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण बहुत कम किये हैं। प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण के लिए 'आमा' में उनकी एक ही कविता है— 'हिमासम के ऊपर'। उसमें भी उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति उभरकर आई है। प्रकृति के रूपों वृत्तों और भावों को महादेवी ने एक अतन्त्र व्यक्तित्व दिया है। इसे यो कहें कि प्रकृति उनके साथ ही उनके प्रियतम के प्रति आत्म-निवेदन में सहायक होकर समर्पित हो गई है तो अधिक संगत हाया। यही रूप उनके काव्य में अधिक प्रमुखता रखता है। वह भी अन्य कवियों की भाँति बहू की ओर जाती हुई प्रकृति के सौन्दर्य से आकर्षित हाकर उसम कुछ काम के लिए लो जाती है। लेकिन ऐसी कविताओं में भी उनकी अन्तिम पंक्ति से वह अपन जी की जसम भी व्यक्त कर ही देती है। मन की तीव्र व्यथा उन्हें रतनी प्रिय है कि उससे वह स्वयं को बचा नहीं सकती और लक्ष्म उसकी छाया छा ही जाती है। 'रविम नामक कविता में ही प्रभाव के स्वतन्त्र और सुन्दर चित्र मिलता है। लेकिन उसके अन्त में ही अपन स्वप्न-यंघ पैताकर गिरिज के पार उड़ गई है और अघतसे वृत्तों के रुज-कोष पर बिस्मृति का गुमार छाया हुआ है। यही नहीं प्रभाव-कास की स्वयं-वेसा में यह हृदय-विठेर अधु-हाम लेकर मुधि विज्ञान रेंव रहा है। महादेवी के काव्य में प्रकृति के अनेक रूप मिलते हैं। 'रुपति तेरा घन बग पाग में पावस का 'बीने पीरे उतर गिरिज से भा बसल रजनी' में बसल की रात्रि का 'भय गान अमर पर ठान अमर में प्रकृति का अमर के रूप में चित्रण आदि प्रकृति के ऐसे सांम रूप हैं जिनम प्रकृति का मानवीकरण किया गया है और उसका स्वयं मनो के सम्मुख प्ररदास हा गया है। इनमें भी अधिक प्रकृति का स्वयं वहाँ गया है। वहाँ प्रकृति के साथ कवियत्री ने अपन जीवन को एकाकार कर दिया है। इस वृत्ति से 'मि ! मन्-सगल मेरा जीवन जाता मीन उल्टा है। वाग्द गयन के सौन्दर्य के साथ मन रावन क-

साम्राज्य स्वपितृ क्रिया पया है । महादेवी का कथन है कि मेरा जीवन माध्य गगन की भांति है गोधूमि पेसा के बारण्य बंधना भिन्न मेरे हृदय का विराग है साध्य मम री नामिमा या ही मेरा मुहाग है मध्या की मूर्य छाया क समान ही रागहीन मरी जाया है जीर रंभीन धन ही मेरे सुधि मेरे स्वप्न है । इस प्रकार मध्या थीर मेरे जीवन में बार् अन्तर मही है ।^१ इन पूर्व रूपका क प्रतिरिक्त ऐसे लक्ष्य-रूपका की नग्माय है जहाँ प्रकृति क बुद्धिचित्र तकर अपनी भावनाओं को व्यक्त क्रिया गया है । विरह का जन्मजात जीवन ! विरह का जन्मजात ! और 'मै मीर मरी बुल की बदली आदि गीतों में ऐसे ही लक्ष्य प्रयुक्त हुए हैं ।^२ इस प्रकार महादेवी के काव्य में प्रकृति क रंगीन विष अमक्य है पर ये या ता उनकी भावना से री हुए हैं या उनम उनकी भावना व्याप्त है । प्रकृति उनक काव्य में एकाकार होकर उनकी विरह-मिलन की अनुभूतियों के विरस म महाप्रक बनकर आती है । उनक काव्य में प्रकृति शृंगार की बन्तु है प्रियतम की बार सकेत करन बामी सहचरी है अपनी आत्मा की छाया है पक्ष की छाया है । इन प्रकार प्रकृति विनय उहीपन अमकरण मानवीकरण क रूपा के अतिरिक्त उन विराट् धनता का अभिव्यक्ति देने के लिये भी हुआ है जिसकी छाया वह प्रकृति में देखती है । जगदी बिगाट् तम पढ़ने की सावना के पक्ष पर प्रकृति सदैव उनके साथ रही है । महादेवी म छायाबाह तथा प्रकृति क नय सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा है— 'छायाबाह मे मनुष्य क हृदय भीर प्रकृति क उस सम्बन्ध म प्राण बास दिष्ट जो प्राचीन कास से बिम्ब प्रतिबिम्ब क रूप में बना आ रहा बा और इसके कारण मनुष्य को अपने दुःख म प्रकृति उदास और मुक्त म पुनर्कित जान पड़ती थी । इस प्रकार छायाबाही कवि के लिए प्रकृति का एक-एक वण एक मजीब व्यक्तित्व सेकर बाग उठा । बढ़ उसकी स्वतंत्र सत्ता की ओर आकृष्ट हुआ । प्रकृति महादेवी क काव्य के मातृगण का ही नहीं कमापन का भी शृंगार करती है जिसम नापी की अस्कार-प्रियता ससित होती है । उन्होंने प्रकृति को सभीम तथा मसीम में तावाम्ब

- १ प्रिय ! सत्यम्य गगन मेरा जीवन ।
 यह क्षितिज बना गुंथना विराय
 नभ अक्षय मेरा मुहाय
 छाया-सी जाया बोलराय
 सुधि-भीने स्वप्न रंगीने धन ।
- २ (क) विरह का जन्मजात जीवन विरह का जन्मजात ।
 बैरना में जगम कदना में मिला आवास
 जम्बु धुनता विरस इसका मधु गिलती रात ।
- (ख) मै मीर-मरी बुल की बदली ।
 बिस्तृत नम का कोई कोना
 मेरा न कभी अपना होना
 परिचय इतना इतिहास यही
 जमकी कल भी मिट जान जाती ।

स्वादिन करने के लिए माय्यम एवं साधन भी बनाया है। उनका काव्य में प्रकृति और पीड़ा दोनों का इष्ट की मिश्रि के लिए समान महत्त्व है। इन सम्बन्ध में यह अपनी गहन तथा व्यापक दृष्टि का परिचय भी हुई सिगती है— 'बड़ ज्ञान व बिना बिकाम नूय है और ज्ञान बड़ के बिना आकार नून है। इन दोनों की क्रिया प्रतिक्रिया ही जीवन है। महादेवी के काव्य में प्रकृति-विवरण तथा प्रकृति-दर्शन का मह मुत्ताभाग है।

इसके अतिरिक्त महादेवी के काव्य में रहस्यवाद की भी अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। रहस्यानुभूति का सम्बन्ध सावकों एवं छन्द कवियों से जमा आ रहा है। परन्तु महादेवी साधक नहीं आराधक है। जैसा उनके माधुय भाव के विवेचन में स्पष्ट हो चुका है। इन आराधना के कारण उनका कवि सर्वत्र विद्यु की भाङ्कता या अभिमूढ रहा है। इसीलिए उन की अनुभूति कभी शोभ नहीं पडी। 'दीपनित्या के गीतों में भी अहाँ चिन्तन अधिक महत्ता हो गया है यह अपने उसी सहज आशयक रूप में विद्यमान है। उद्घात स्वयं एक स्थान पर लिखा है— 'मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग अनित्य धारण बिभजत का भाव नहीं पुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक मधुरता भीमानीक नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होगा। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम स्मृतिरत्न का आगेपण कर उसका निकट आत्म-निवचन कर देना इस काव्य का (रहस्यवादी काव्य का) दूसरा साधन बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। उसके प्रथम रूप के बारे में वह कहती है— "छायाभाव की प्रकृति पर रूप ज्ञानि में भरे जल की एकवृत्ता के समान अनरूप रूपों में प्रकृत एक महाप्राय वत गर्द, यत अथ मनुष्य के मधु मेघ के जल-कण और पृथ्वी के माग-विन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है। प्रकृति में मानवीय भावों की छाया या उमर साध मानव-भाषना का तादात्म्य महादेवी की सम्मति में छायावाद है और जय प्रकृति में एक न्यूनतम स्मृतिरत्न का आरोप कर उसके प्रति आत्म-निर्वाण किया जाता है तब रहस्यवाद हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवाद छायावाद का दूसरा साधन है।

महादेवी के काव्य में चिन्तन का पुल गहरा हाता गया है और चिन्तन दर्शन की भाग ल जाता है जिसके आभात्मक प्रकाशन की रहस्यवाद कहते हैं। आत्मा और परमात्मा दोनों एक है। आत्मा परमात्मा से विमुक्त होकर माया व आकारक में अपने धुल स्वयं को न देय सटने के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकती। यदि साधना द्वारा माया का आकरण हुना दिया जाय तो परमात्मा का सादात्कार हो पाता है। यह आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने का साधन है। रहस्यवादी कवि भी इसका सहारा लेता है। बड़ मूढि में सर्वत्र उसी की छाया देकर पूछ उठता है कि मैं जान वह कौन है जो गारा में हैमता विद्युन में जमरुता और मोम-विन्दुओं में रोता है। उस 'कोन' व लिए उसकी आत्मा विद्युन में भाव म पीड़ित हो उठती है। प्रकृति के परिवर्तन में उन उसी का मान जान पड़ता है।^१ इसका साध-साध वह अपने विद्युन के पप की ओर निरन्तर

१ जब कपोल-मुक्ताव पर शिनु-शाल के मूलेने मलत्र-मल के विद्यु से

है एक ही बार मिलती है, उसे 'सप्तोपम' 'दराव या 'पापिग की बत्ती' पर नहीं फमनीं। यही कारण है कि उनके काव्य में इतिमता का आभास कम मिलता है। उसमें दृश्य संसृष्ट भावों और अनुभूतियों की एकरूपता परिलक्षित होती है। इस महामिमता का कारण ही उनकी भाषा परिष्कृत मयुर और कोमल है। स्वाभाविकता के प्रति उनका दृढ़ता भाव है कि मात्राशा की पूर्ति और तुक के लिए कुछ शब्दों का मय मग भी हो गया है। 'बातास का 'बताम 'बाभार का 'अभार 'ज्योति' का 'ज्योती' 'कफघार' का 'कर्णाघार' सिपाने में उन्होंने कभी सफोष नहीं किया। उनकी कविता में कहीं-कहीं अंत्यानुप्रास भी नहीं मिलते हैं परन्तु तुक और छन्दों के ऐसे प्रयोग काव्य की मति को मंद नहीं करते बरन उसमें स्वाभाविकता सा देते हैं।

उनको अभिस्मयित म दूसरी बिगपता यह है कि वह सूक्ष्मतरंग भावनाओं को बाणी देने का कारण मकेतात्मक है। उनमें शब्दों का सादाधिक प्रयोग अमूल वस्तुओं के लिए मूर्त मोबनाएँ भावों और प्राकृतिक रूपों का मानवीकरण आदि छायावादी शैली की सभी विधोपताएँ पाई जाती हैं। उनके काव्य में शब्द चित्र भी अधिक मिलते हैं। इसका कारण यह है कि वह चित्रकार भी है। उनकी अन्तिम कृति 'दीपसिखा' में प्रत्येक कविता की पृष्ठभूमि के लिए एक-एक चित्र दिया गया है। 'यामा' में भी ऐसे ही रेखाचित्र हैं। इन चित्रों में ऐसे रंगों का चित्रण है जो दृश्य या रूप को व्यो-का-र्या उतार दें। चित्रकार की तुलिका और कवि की बाणी दोनों के संयोगसे उनकी कविता विल उठती है। एक आलोचक ने यह श्रिक ही लिखा है कि महादेवी के काव्य में एक ओर चित्रकला की गोचर काव्य कला लक्षती है और दूसरी ओर काव्य कला की अनुभूति रेखा और रंग के महारे चित्रित (मूर्त) हो गई है। उनके चित्रों में दीपक सतस और कटिठवा बाहन आदि का प्रयोग बेश ही है जैसे उनके गीतों में।

महादेवी ने गीतिकाव्य ही अधिक लिखा है और अन्तर्मुखी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीतिकाव्य ही उपयुक्त माध्यम होता है। इन गीतों में उनके हृदय का हृदय विषाद सहज रूप में व्यक्त हो उठा है। महादेवी ने लिखा है— 'गीत का चिरन्तन विषय उपारिमका-वृत्ति सं सम्बन्ध रखने वाली सुख-दुःखात्मक अनुभूति से ही रहेगा 'सामारण गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी स्वयत्प्रकृता में रोय हो सके।' वास्तव में उनके गीत निरुभा की भाँति तास-स्वर के सीमित बचन में बन्व नहीं हैं वे अपनी स्वयत्प्रकृता में ही रोय हैं जिनमें संदीप काव्य का अनुयायी है और वह वृत्तियों के चित्रों को मति और सौन्दर्य देता है। गीतों की जो परम्परा वैदिक-काल से लेकर उपनिषद्-काल तक महाकाव्य-काल तक किसी-न-किसी रूप में चलती रही है उसका प्रथम स्वर हिन्दी में विद्यापति द्वारा गुंजा। उसके बाद कवीर की प्रेम भक्ति की बाणी भी पर्वों द्वारा चलता तक पहुँची। सूर और तुमसी ने भी उस परम्परा को समृद्ध बनाया। इसका चरम विकास मीरा के काव्य में उपलब्ध होता है। मीरा के गीत हृदय की कसक के सहारे स्वरों में ध्वनित हुए हैं। मीरा के बाद इसका स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है। छायावादी युग में प्रसाद गिरासा पत तथा अन्य कवियों के गीत भी मिलते हैं परन्तु गीतिकाव्य का इस प्रकार का विकास उनमें नहीं है।

महादेवी के कलापन की विशेषता उनके अक्षर-विधान तथा प्रतीक-पद्धति में भी स्पष्ट है। उनकी दृष्टि में अक्षर केवल भाषा की सजावट के लिए नहीं भाषा की अभिव्यक्ति के लिए विशेष द्वार बनकर आते हैं। उनके काव्य में अक्षरों का सुन्दर प्रयोग नहीं हुआ है। छायावादी काव्य में अक्षरों का प्रयोग रूप-साम्य की दृष्टि से न होकर प्रायः प्रभाव-साम्य की दृष्टि से हुआ है। तबीत सौन्दर्य-शोध को अभिव्यक्ति देने के लिए महादेवी ने पुराने अक्षरों की तबीत रूप में उद्भावना की है और तबीत अक्षरों की सृष्टि भी की है। उनके प्रिय अक्षरों में उपमा रूपक अयोक्ति समासोक्ति मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय है। अयोक्ति तथा समासोक्ति अक्षर उद्भवानुसूति को व्यक्त करने के लिए विशेष रूप से सहायक होते हैं। 'दूट गया वह दर्पण निर्मम' और का प्रिय वाक्य पित्रर घोल धो' में अयोक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में विशेषमूलक अपस्तुत की अनुपम रचना भी देखने को मिलती है—

एक कवच अभाव में फिर तृप्ति का संसार संचित ।

नाश भी हूँ अतस्त विकास का क्रम भी ।

रवाग का दिन भी चरम आतक्ति का तम भी ।

इन पंक्तियों में बिदायामास का अनुठा चमत्कार है जो महादेवी की कला की विशेषता है। उनकी प्रतीक-पद्धति उनके कला-पक्ष की विशेषता है। उनकी कृतियों के नाम भी— 'रश्मि' 'नीहार' 'नीरजा' 'शास्वगीत' 'दीपचिता' आदि प्रतीकात्मक हैं। उनके काव्य में कुछ प्रतीक परिचित होने के कारण बुद्धिमय है। कुछ अपरिचित होने के कारण किञ्चित् भाषा शकते हैं परन्तु कुछ प्रतीक अनेक अर्थों में प्रयुक्त होकर अर्थ में व्यापार उत्पन्न करते हैं। परिचित प्रतीकों में छाया संसार के लिए, ठरी जीवन के लिए, पञ्चवार साहस के लिए, तम अज्ञान और आनन्द ज्ञान के लिये हैं। अपरिचित प्रतीकों में शूल की कल्पना आरक्ष प्रेमी के रूप में करने के अतिरिक्त मोहमूलक आकर्षण के रूप में भी की गई है। इसका साथ दीपक की कल्पना आराम के रूप में की गई है। एक प्रतीक का प्रयोग अनेक भाषाओं को व्यक्त करने के लिए भी हुआ है। शूल के लिए मधु, रश्मि तथा मलय बहन तीनों का प्रयोग हुआ है। छरिता के दो पुत्रिन कमी बिरह-मितन के लिए तो कमी जीवन-मृत्यु के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इसलिए प्रतीकों के अर्थ-सौन्दर्य को प्रत्येक के आधार पर ही स्पष्ट किया जा सकता है।

काव्य के कला-पक्ष में छन्द चयन प्रतीक-विधान अक्षर-विधान आदि के अतिरिक्त उनके छन्द विधान का विशेषत्व भी अपेक्षित है। महादेवी ने हिन्दी भाषा की पद्धति के अनुकूल मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। इनके छन्दों में चरमों तथा पदों का विन्यास मात्र-मय के अनुकूल हुआ है। तुकान्त कमी पढ़ने और सुन्दरे चरण का है कमी दूम्ने और बीने चरण का है और कमी सभी चरण समतुकान्त हैं। अनेक उर्ध्व छन्दों का हिन्दीकरण भी किया गया है। यीत में पढ़नी पवित्र संगीत के बोल के रूप में अथवा लोक-गीत की टुक के रूप में भी उपस्थित की गई है—'सुरर विक हीने हीने बोल 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ 'अभि मैं कण-कण को जान चमी' आदि पंक्तियों को पुनर्पुनः प्रयोग किया जा सकता है। पवित्र-काव्य में सभी पंक्तियाँ प्रायः सममात्रिक तथा सम

तुलान्त होती थीं परन्तु महादेवी ने दार्शनिक आधार का परिष्कार करके छान-बिधान में अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का परिचय दिया है। इस प्रकार उनके काव्य का कला पक्ष मनीषा के तन्त्र तथा सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देने के लिए आधावादी काव्य शैली को प्राव-सभी विशेषताओं से युक्त है परन्तु उसकी विशिष्टता महादेवी के व्यक्तित्व का भी आभास देती है।

महादेवी के काव्य की भावगत तथा कलागत विशेषताओं का विरलेपय करने के उपरान्त उनके काव्य का मूल्यांकन अभी अपेक्षित है। उनके काव्य के भाव पक्ष में निराशा और बेचना करना और अस्वस्थ प्रकृति का भावगीकरण जिज्ञासार्थक रहस्य भावना अनुपम प्रेम और उसका परिष्कार तथा उन्नततम सुदम भावों की अभिव्यक्ति आदि उपलब्ध होते हैं और इस भाव पक्ष को व्यञ्जित करने के लिए उनके कला-पक्ष में मनीषा अर्थात् छान-बिधान प्रतीक-विधान सांसाध्यिक संस्थावली मनीषा छन्द विधान आदि का प्रयोग हुआ है। इन दोनों के मूल में व्यक्तित्व का स्वर है जिसके परिणामस्वरूप महादेवी अपने नवीन जीवन-शोध तथा मनीषा सौन्दर्य-शोध को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस मनीषा जीवन शोध में उनके गीतों में व्यक्त प्रेम की पीर को गहन एक अनुपम रूप दिया है। उनके गीतिकाव्य में वैयक्तिक अनुभूति के तन्त्र पर सामाजिक अन्वयों से षडङ्गी हुई नारतीय मारी की मनीषा बेचना प्रकृत हुई है। इस बेचना से मुक्ति पाने की आकांक्षा भी कहीं-कहीं व्यक्त हुई है जिसकी आभोगों ने प्रायः अपेक्षा की है। इसलिये महादेवी के काव्य का मूल्यांकन एकांगी रूप में ही हो सका है। एक मारी होने के कारण उन्होंने अनुपम प्रेम को अनुकर व्यक्त करने की अपेक्षा प्रतीक-पद्धति का आशय दिया है। इसलिये उनका बेचना तथा पीड़ा का स्वरूप मीकिक न होकर अमीकिक है मानवीय न होकर रहस्यमय है। इस बेचना से मुक्ति पाने की कामना को भी महादेवी ने प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त किया है। वह शीपक के माध्यम से अपनी बिरह की स्थिति को व्यञ्जित करती है। शीपक का काम हर रंग में चलना होता है और उसके चलने की भी एक अवधि है। 'शीपसिता' में साधना के आरम्भ से लेकर सिद्धि प्राप्ति तक की स्थितियों का चित्रण है। जब बेचना को बिदा करने की बेला या पहुँची है। निष्ठा का अन्त होने पर शीपक का कुम्भ जाना अवश्यम्भावी है शीपक-बिठेरे का तुलिका रत्नकर हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु एक रहस्यवादी के लिए प्रायः बिरह-काल की अवधि नहीं होती। महादेवी के लिए 'उत्त के उत्तर में बिचस की चाह' का जो सर है वह अपने मध्य को बीच चुका है। इस प्रकार बेचनावाद से अन्वयकार में जीवन-विचस की चाह अन्तः उनके काव्य को दीप्त कर देती है। उनके काव्य का मूल्यांकन करते हुए आलोचकों ने मुक्ति पाने की इस आकांक्षा को प्रायः उपेक्षित ही किया है। इसलिये उन्होंने उनके काव्य को केवल आँसुओं से सिक्त तथा बेचना से युक्त पाया है। यह दृष्टिकोण उनके काव्य के सामाजिक पक्ष की अवहेलना करता है। महादेवी के इस सामाजिक पक्ष की अभिव्यक्ति उनकी पद्य रचनाओं में स्पष्ट उपलब्ध होती है। अतः उनके काव्य का मूल्यांकन करने के लिए उनके रहस्यवाद तथा बेचनावाद के मूल में मुक्ति की आकांक्षा से अवगत होना अपेक्षित है।

महादेवी एक सर्वोदात्त । ३९

महादेवी के काव्य में सामाजिक बन्धन से मुक्ति की आकांक्षा का स्वरूप प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होने के कारण रहस्यमय है। यदि उनका प्रतीक विधान का सूक्ष्म बिन्दुबिन्दु और इन प्रतीकों का विश्लेषण तत्कालीन सामाजिक परिवेश में किया जाय तो महादेवी का रहस्यवादी का सीक्रेट स्वरूप तथा वेदनावाद का सामाजिक पक्ष स्पष्ट हो सकता है जो उनके काव्य के सही मूल्यांकन के लिए बाधित एवं अपभ्रष्ट है।

‘यामा’ महादेवी बर्मा का सम्पूर्ण काव्य-संग्रह है। इसके पात्र यामों में उनकी चारों स्तुति रचना-मुस्तकें संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त महादेवीजी की कोई अन्य रचना वाच्य प्रकाश में नहीं आई है। जबकि यहाँ मेरा मतलब केवल उनकी काव्य रचनाओं से ही है। ये सब-कुछ-सब मुस्तक पद्य और पीत रूप में हैं जिनकी छप्पा दो सी से कुछ कम है। साथ ही ‘यामा’ में महादेवीजी की लिखी सूक्तिकाएँ और उनके बनाये किठने ही चित्र हैं, जिनसे उनके काव्य पर आश्चर्यक प्रकाश पड़ता है।

अच्छा होता यदि हम बिना कोई सूक्तिका बाने ही ‘यामा का अध्ययन (बहुत अध्ययन से मेरा मतलब उसकी विशेषताओं के परीक्षण से है) आरम्भ कर सकते किन्तु ऐसा करने में एक कठिनाई बीघटी है। ‘यामा’ केवल एक संग्रह-मुस्तक ही नहीं है, जहाँ महादेवीजी का पूरा काव्य-व्यक्तित्व ही है। इस व्यक्तित्व को हम मनीष काव्यधारा से एकदम अलग करके नहीं देख सकते। काव्य और वैषम्य के ये सूत्र हम संश्लेष में देखते हैं जिनके द्वारा महादेवीजी सामयिक काव्य-जगत् से बँधी हुई हैं। उनके लिए एक छोटी सी उर्ध्वमुक्त ‘सिटिंग’ हमें तैयार करनी होगी।

हिन्दी में महादेवीजी का प्रवेश छायावाद के पूर्व ऐश्वर्य-काल में हुआ था किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थी। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाग मेरे विचार से छायावाद की एक सभ्यमान्य व्याख्या हो सकती है। इस व्याख्या में जाये ‘सूक्ष्म’ और ‘व्यक्त’ इन अर्थगर्भ शब्दों को हम अच्छी तरह समझें। यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है, साधारण होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आध्यात्मिकता का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अन्तर्गत नहीं ले सकेंगे। छायावाद के इस सीमान्त पर हम स्कॉट और वायलन-जैसे अंग्रेजी के कवियों को पाते हैं, जिन्होंने विधोहक और तस्तीगताकारी गारी-सौन्दर्य को लम्बी कथाओं के सूत्र में ठाना है, और प्रकृति की अनिर्बन्धनीय सुपमा को पृष्ठभूमि बनाकर चित्रित किया है। ये प्रकृत छायावादी नहीं रहे या सकते। और छायावाद के दूसरे सीमान्त पर बहूँ-सबर्ष को देखते हैं जिसकी प्रकृति के प्रति इतनी सावधानी प्रीति है कि वह व्यक्त सौन्दर्य के प्रति निस्पन्द बेपहचान निबूढ़-सी मामूम बेती

है सब-कुछ तो मुन्दर ही है ऐसी भावमयता में मग्न-सी हो गई है। वह भी प्रकृत छाया वाली नहीं है। प्रकृत छायावाली तो अँधेरी में प्राकृतिक मूल्य सौन्दर्य-भावना का एक मात्र अविच्छाया चेखी हो हुआ है जो एक ओर कुछ समीपकों द्वारा (जो मूल्य क विरोधी है) हवाई और भासमानी बताया गया है किन्तु दूसरी ओर जिसे नास्तिक (असत्य सत्ता का विरोधी) कह जाने का श्रेय भी प्राप्त है। भासा है छायाभाव का इस मध्यवर्तिनी मूमि पर पाठकों की दृष्टि गई होगी।

मुझे आशा नहीं है कि छायाभाव की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य में सबमान्य हो सकती किन्तु इसकी सार्थक और काव्यात्मक पैसी इतना सुस्पष्ट व्यंगित्व रखती है और यह मध्य निकटवर्ती वालों से इतना पृथक अस्तित्व बनाय हुए है कि कोई कारण नहीं कि यह आश्चर्यकार एक अलग वाद क रूप में स्वीकार न कर लिया जाय। सप्रति हिन्दी के अधिकांश समीक्षक छायाभाव और रक्ष्यभाव के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं कर रहे। मबीन काव्य-युग क निर्माता स्वर्गीय प्रसादजी का इस विषय का विवरण विशेष ध्यान देने योग्य है। वर्तमान रक्ष्यभाव क सम्बन्ध में वह लिखते हैं—“विरहमुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप मंस्ट्रन बाह्यम में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा पशुन का रक्ष्यभाव सौन्दर्य-सहरी क ‘शरीर त्व सम्भो’ का अनुकरण-भाव है। वर्तमान हिन्दी में इस अर्द्ध रक्ष्यभाव की सौन्दर्यमयी व्यवस्था होने लगी है वह माहिर्य में रक्ष्य वाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा बहूँ का ‘इदम्’ से समन्वय करने का मुन्दर प्रयत्न है।”

अब विरहमुन्दरी प्रकृति में चेतनता की भावना सार्थक भी हो सकती है और एक-एक मुन्दर नस्तुपत भी हो सकती है। सम्म अथवा आत्मा का शरीर सारा सृष्टि प्रसार ही है, इस दृष्टि से अक्षय नस्तु-भाव में सौन्दर्य की एक ही धारा प्रवाहित है। प्रकृति में कुछ भी अनुसर नहीं यहाँ व्यष्टि भेद नहीं है। पुन प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा बहूँ (आत्मा) का इदम् (प्रकृति) से समन्वय करने का प्रयत्न व्यष्टि-सौन्दर्य को स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रसादजी ने व्यष्टि सौन्दर्य-दृष्टि (छायावाद) और समष्टि सौन्दर्य दृष्टि (रक्ष्यवाद) में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया। किन्तु मैं इस अन्तर का विशेष रूप से जाग्रह करता हूँ क्योंकि इतन दो विभेद पृथक-पृथक काव्यपैसियों की मूर्ति की है। व्यष्टि सौन्दर्य-क्षेप एक सावजनित अनुभूति है। यह महज ही इदमस्वर्गी है यह सजिय और स्वाभाविकी काव्य-चेतना की जन्मदात्री है। इसे मैं प्राकृतिक अन्धकार कह सकता हूँ। समष्टि सौन्दर्य-क्षेप उच्चतर अनुभूति है। फिर भी यह प्रत्येक क्षण बड़ होने की सम्भावना रखती है। इसमें इतिहासानुभूति को सहज प्रपति या विकास के लिए स्वागत नहीं है। यह कदम-कदम पर ममें क कठपरे में बहूँ होने की अनिश्चित रखती है।

काव्य में यह रक्ष्यवाद बड़े-बड़े दुर्दिन दौर चुका है। अपने अतिप्राकृत स्वरूप क कारण पहले तो इसकी अनिश्चित ही अतिव्यय दुपम और दुःख है किन्तु कुछ सख रक्ष्यवादियों ने कुछ बलाग सारसे निराश भी तो उन पर जलन वाले बहूँ-से मूने रक्ष्य वाली नरमनवीम निरस जाये। उन्होंने काव्य की पूरी-पूरी अपोपति कर ली। सार्थ प्रकृति को नगहित करने वाली निर्पुण प्रेम की विमुक्त अंजना विषय-भावना का मंग

‘वामा’ महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण काव्य-संग्रह है। इसके पार वामों में उनकी चारों स्फुट रचना-पुस्तकें सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त महादेवीजी की कोई अन्य रचना नामक प्रकाश में नहीं आई है। जबकि यहाँ मेरा मतलब केवल उनकी काव्य रचनाओं से ही है। य सब-की-सब मुक्तक पद्य और गीत रूप में हैं जिनकी संख्या दो सौ से कुछ कम है। साम ही ‘वामा’ में महादेवीजी की किसी भूमिकाएँ और उनके बनाये कितने ही चित्र हैं जिनसे उनके काव्य पर आवश्यक प्रकाश पड़ता है।

अच्छा होता यदि हम बिना कोई भूमिका बाँचे ही ‘वामा का अध्ययन (यहाँ अध्ययन से मेरा मतलब उसकी विशेषताओं के पर्यवेक्षण से है) आरम्भ कर सकते किन्तु ऐसा करने में एक कठिनाई बीसती है। ‘वामा’ केवल एक संग्रह-पुस्तक ही नहीं है उसमें महादेवीजी का पूरा काव्य-व्यक्तित्व ही है। इस व्यक्तित्व को हम तभीत काव्यद्वारा से एकदम बख्क करके नहीं देख सकते। साम्य और वैषम्य के वे गूढ हर्में संश्लेष में देखने हनि जिनके द्वारा महादेवीजी सामयिक काव्य-जगत् से बँधी हुई हैं। उनके लिए एक छोटी सी उपयुक्त ‘सिटिंग’ हर्ने तैयार करनी हवी।

हिन्दी में महादेवीजी का प्रवेक छायावाद के पूर्व ऐस्वर्ग-काल में हुआ था किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं। मानक अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सीस्वर्ग में आध्यात्मिक छाया का भाग मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमाध्य व्याख्या हो सकती है। इस व्याख्या में जाये ‘सूक्ष्म’ और ‘व्यक्त’ इन अर्थगर्भ शब्दों का हम अच्छी तरह समझें। यदि वह सीन्दर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अन्तर्गत नहीं ले सकेंगे। छायावाद के इस सीमान्त पर हम स्कॉट और बायरल-बीसे अंग्रेजी के कविओं को पाते हैं जिन्होंने विमोहक और तस्तीगता कारी नारी-सीस्वर्ग को लम्बी कथाओं के सूत्र में ठाना है और प्रकृति की अतिर्वचनीय सुपमा को पुष्कलमि बनाकर चित्रित किया है। वे प्रकृत छायावादी नहीं कहे जा सकते। और छायावाद के पुसरे सीमान्त पर बर्दसबर्ब को देखते हैं जिहकी प्रकृति के प्रति इतनी सार्थक प्रीति है कि वह व्यक्त सीस्वर्ग के प्रति तिस्यत्र वेपहचान तिसुइ-सी मालूम बेटी

नाथ बनकर रह गई। उपनिषदों का ऊर्ध्वस्वित आत्मवाद सम्पूर्ण वर्तमानों से हाथ लमटने का बहाना सिद्ध हुआ। यौग और तन्त्र-शास्त्रों की प्रकृति को आत्मा में सम करने की सारी प्रक्रिया को पूर्व मनुष्यत्व का सामन थी अनहोनी सिद्धियों और सामयिक उपचारों का दूसरा नाम बन गई। सारीरिक मानसिक नैतिक और आत्मिक सबसत्ता का प्रचारक रहस्यवाद 'ना चर मेरा ना चर तरा चिद्धिमा रैन बसेरा' गाकर भीख मांगने वालों का ब्रह्मास्त्र बन गया। एक ओर तो यह नकली रहस्यवाद की प्रगति हुई और दूसरी ओर अविद्वान् होकर रहस्य-काव्य विनय के पदों भक्तिगीतों धार्मिक जादुयानों आदि में परिणत हो गया। अक्षय ही ईरान और फारस के कुछ सूफी कवियों और भारत के कुछ निर्बुधियों ने रहस्य-काव्य की वास्तविक मर्यादा स्थिर रखी किन्तु उनकी संख्या अनुसंधानों पर विनये जाने से घटती है। यह इतनी भी है यह कम गौरव की बात नहीं क्योंकि हम यह पुके है कि रहस्यानुभूति एक अति विरल वस्तु है और उसकी काव्य प्रक्रिया भी उतनी ही दुर्लभ और दुर्लभ है।

रहस्य-काव्य की मुख्य परम्परावा म हम नीचे विष्टे भिनों की परिचयना कर सकत हैं। यदि हम प्रकृति की ओर से आत्मसत्ता की ओर जाने बढ़ तो हम मनना का क्रम इस प्रकार होगा—विद्वान्-सुदारी प्रकृति में वेतना का आरोपवह पहली सीढ़ी है। इसी के अन्त में मुख और बुद्ध का सामंजस्य त्रिसे प्रसादनी ने समरपता कहा है आ जाता है। यही प्रसादनी की 'अपरोक्ष अनुभूति' भी है। महादेवीजी ने इसे छायावाद की सीमा में मानकर एक-दूसरे हम से कहा है—'छायावाद की प्रकृति घट रूप आदि में भरे पान की एकस्यता क नमान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राप बन गई अत अब मनुष्य क अन्तु, मेम क समकण और पृथ्वी के जोस किन्तुओं का एक ही कारण एत ही मूस्य है। वास्तव में यह रहस्यवाद का पहला और व्यापक उपक्रम है जिसमें भावना-बल से 'एकोऽहं बहुस्याम' का 'एकोऽहं' की ओर प्रतिवर्तित करते हैं। सांसारिक मुख-बुद्ध राय-विचार आदिचितने भी दृष्ट हैं सबको एक ही वेतनसे सम्बद्ध करने की यह प्रभासी रहस्यवादके प्रथम सोपान पर मिलती है। इस सोपान पर हम महादेवीजी को नहीं पात। यद्यपि अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के विकास के सिलसिले में उन्होंने लिखा है कि "पहले बाहर जिसने बासे फूस को देखकर मेरे रोम रोम में ऐसा पुनक बीड़ जाता या मानी वह मेरे हृदय में ही खिलता हो परन्तु उसके धपने में भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अक्षयल वेदना भी थी फिर वह कुछ बुद्ध-भिन्न अनुभूति ही किन्तु का विषय बनने सगी और अन्त में अब मेरे मन में न जान कैंत इस भीतर-बाहर में एक सामंजस्य दृष्ट निया है जिसने मुख-बुद्ध को इस प्रकार बुन दिया कि एक क प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का प्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है किन्तु महादेवीजी के काव्य में प्राकृतिक मुख-बुद्ध का जपना उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रकृति के किसी भी दृष्ट या मानव-मनोमात्र का आकसन उनकी रचनाओं में नहीं के बराबर है। वृष्य प्रकृति में हिमात्प पर ही उनकी एक रचना 'मामा में देखने को मिली किन्तु वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर पाई है। प्रकृति क रूपों वृक्षों और मार्गों को महादेवीजी ने वेतना का प्रेरक न रखकर उन सबको एक-एक वेतन व्यक्तित्व-सा दे दिया है। उनकी पहली ही रचना—

निम्ना की भी देता उनके
 चाँदनी में जब अलकों झोल
 कली से कहता वा मधुमात,
 बता वो मधुमदिरा का मोल

यद्यपि व्यक्त सौन्दर्य की भी क्लमक लिये हुए है किन्तु नहीं वह गीम है और महादेवीजी की रचनाओं में उत्तरोत्तर गीम होता गया है। भाये बसकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक नितिल देवता की अनेक-रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड़ मगाते हैं, जिसे हम इसी निबन्ध में देखेंगे। प्रकृति की परिपूर्ण ध्वनि की आत्मरूप प्रतिष्ठा हमें बड़े सबर्ष में ही मिलती है। कुछ लोग हिन्दी में पुरुमकर्ताधिह को बड़े सबर्ष वा स्वानापान मानते हैं। किन्तु प्रकृति की आध्यात्मिकता की अनुभूति मुकमकर्ताधिह में हमें विशेष नहीं मिलती। एक-एक वाली एक-एक सता, एक-एक पत्ती अथवा ज्वलितज को बेतन क्रियाशील उल्लेख कर देने से ही उनकी आध्यात्मिकता प्रकाश में नहीं आती। यह बेतन व्यक्तित्व देने की प्रकृति ही ह्लासोमुद्र होकर 'चिदिया का विवाह' नामक धार्मिक गीत में परिवर्त हो गई है जिसमें सब चिदियों को विवाह-सम्बन्धी एक-एक काम सुपुं क्रिया गया है। समरसता (सुख-दुःख का आध्यात्मिकरण) और मपरोल माध्यात्मिक अनुभूति का हिन्दी में सबसे सुन्दर उदाहरण प्रसादजी का जीमू काव्य है।

रहस्यबाह के इस सोपान से ऊपर उठने पर हम प्राकृत अनुभूति को छोड़कर परोल अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। महादेवीजी के काव्य की यही भूमि है। परोल अनुभूति के भी उठने ही मेरोपमेय हैं, जिन्हें धार्मिक दृष्टि से तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—सगुण साकार, सगुण निराकार और निर्गुण निराकार। एक दिव्य व्यक्तित्व पर, वह प्रेममय हो कहनामय हो अथवा शक्तिमय या आत्मत्वमय, आस्था रखने वाले सगुण साकार के अनुयायी होते हैं। महादेवीजी की अधिकारा रचना का यही धार्मिक आधार होता है। वह सिलती भी है—“भामनीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्मसिद्धि का भाव नहीं पुस जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का मभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता का कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आराधन करके उसके निकट आत्मनिवेशन कर देना इस काव्य का प्रथम सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यबाह का नाम दिया गया। मधुरतम व्यक्तित्व की यह नियोजना महादेवीजी के काव्य में मौजूद है किन्तु उसके निकट आत्मनिवेशन करने वाले बहुत-से जज्ञ कवि हो गए हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त आदर है किन्तु जिन्हें रहस्य-भाव का अल्टा नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट है कि महादेवीजी ने अपने इस वक्तव्य में आश्चर्यक उत्कर्षता से काम नहीं लिया। यही नहीं उर्ध्वनि लक्षित धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्यबाह का स्पष्ट अन्तर सर्वत्र धपने मानने नहीं रहा जिससे उनकी रचनाओं में स्थान स्वाम पर गारदगी अध्यात्म की अगह वृद्धि के चिह्न मिलते हैं।

सगुण साकार वाचनिकता का संबंध बना उत्तर यही है कि वह नि गीम सौन्दर्य सता का रहस्य गोरर सीमा-रेखाओं में आ जाता और वास्तविक परोल अनुभूति-गन्धम

काम्य का विषय न रहकर ब्रह्म और उपासना का मायाव बग जाता है । उद्युगदासनिर्वाही और कवियों ने इस कठिनाई को खूब अच्छी तरह समझा था । इसलिये उन्होंने बहुत के उपाय कई निकाले थे । प्रथम उन्होंने उस मधुरतम व्यक्तित्व को अतीतिक्रम सत्ता-गम्यम बन्धित करने की चेष्टा की । इसके लिए दार्शनिकों को विषय सत्ता गम्यमभी एक नई दार्शनिक प्रक्रिया ही बतानी पड़ी जिसमें उस विषय व्यक्तित्व के सभी उपकरणों उसने नाम रूप सीमा और ब्रह्म को तथा उससे संपृक्त वस्तु-व्यापार को बार बार अप्राकृत घोषित करना पड़ा । किन्तु काम्य अथवा कलाओं का काम केवल घोषणा से नहीं चलता । उन्हें ऐसी प्रतीक-सौजन्य का सहारा लेना पड़ा जिससे वस्तुतः अतीतिक्रम का मायाव मिस सके । कवियों को उस मधुरतम चरित्र क निर्माण में विषय सौन्दर्य-सृष्टि की अक्षेप कला समाप्त कर देने पर भी सीमा के अन्दर संतोष नहीं हुआ । उन्हें पद-पद पर उम व्यक्तित्व की महिमा का बसग से निर्वह करते रहना पड़ा जिस पद्धति को हम 'भीमभ्रमण' और 'धीरम चरितमानस' में भी देखते हैं । फिर भी एसीमता और असीमता साधारणता और रहस्य में जो मौलिक अन्तर है उसकी पूर्ति नहीं हुई । एतत् सीता राम और राधा-कृष्ण की पूर्ण परोक्ष अनुभूति काम्य के अन्दर नहीं हो सकी । तब रामायण कवियों ने रहस्य का पस्ना छोड़कर चरित्र की व्यक्त महत्ता के माध्यम द्वारा महाकाम्य की सृष्टि कर बानी और कृष्णायण कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य की अक्षेप तर्पणीय बहाकर राधाकृष्ण की जो चरित्र-बीजा निर्मित की वह रोमांचक भावों से भर गई । किन्तु रहस्यवाद के निकट होंठे हुए भी वह रहस्य-काम्य नहीं कहा जा सकता । ब्रह्मण्डल चरित्र के दो प्रमाण प्रसंगा— रास और भ्रमरगीत में हम रहस्य-काम्य के सारे लक्षण पाते हैं । रहस्य के क्षेत्र में वैष्णव कवियों की वास्तविक सफलता इन्हीं दो प्रसंगों को लेकर है ।

जब उस मधुरतम व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन का क्रम आरम्भ हुआ तब तो काम्य स्पष्टतः धार्मिक क्षेत्र में आ गया । यहाँ वैरा मतलब उन विनय-गीतों से है जिसका कृष्णकाम्य में भी प्राचुर्य है और जिससे तुलसीदासजी की 'विनय-पत्रिका' भरी हुई है । इस प्रकार के काम्य में प्रकृत रहस्यात्मक अनुभूतियों की टोह लगाता व्यर्थ धर्म है । मूर्त प्रतीकों में अलौकिक अमूर्त तत्त्व का साक्षात्कार कराने वाली अनुभूत रहस्य-कला उसमें हम नहीं पाते । बहिर्द्वार में पर्याप्त काम्य भावना का विकास होता तो उन्हें उन्नत रहस्य काम्य कहना हमने कभी का छोड़ दिया होता । धार्मिक काम्य की सृष्टि से उलका बादर सबैव रहेगा किन्तु प्रकृत रहस्य-काम्य की सृष्टि से नहीं ।

मेरा यह आशय नहीं है कि महादेवीजी ने 'मधुरतम व्यक्तित्व' की सृष्टि करके रहस्य की इतिथी कर दी है, और न मैं यही कह रहा हूँ कि उसके प्रति उनका आत्मनिवेदन भी धार्मिक कवियों के ही ढंग का है । प्रचुर कल्पनागुण के कारण महादेवीजी ने रहस्यात्मकता सभी छोड़ नहीं किन्तु उनकी रचनाओं में भक्तों और निर्धुनियों की कड़ि भी कम नहीं मिसती । इसे हम आगे चलकर देखेंगे । इसका मुख्य कारण मधुरतम व्यक्तित्व की नियोजना और आत्मनिवेदन की परम्परागत प्रेरणा ही है । किन्तु महादेवीजी के पास फिर से सीटने के पहले हम रहस्यवाद की छेप दोनों ओरियों को भी छोड़ें न देखें ।

उद्युग निराकार हीमी मूर्तियों की है । सब पूर्वजिते तो रहस्य-काम्य का सच्चा

स्वल्प हूँ मैं इन्हीं में मिलता हूँ । प्राकृतिक प्रेम प्रतीकों के भीतर परोक्ष प्रेम-मत्ता का इतना प्रवाह बाधबद्ध प्रवेश और पुन-पुन उस अभ्यक्त का नैसर्गिक आवाहन और आसक्त हृदय अन्वय कहीं पाते हैं ? अबश्य जहाँ यह प्रेम कथानक का रूप धारण करता है वहाँ बड़ी कठिनाई मूर्च्छियों के सामने भी आती है जो वैष्णव साकारोपानकों के सामने आई है । यहाँ सूक्ष्मों ने कथा को सैद्धान्तिक दृष्टि से रूपक मात्र बोधित किया है किन्तु इससे समस्या सुसम्भ नहीं पाई । फलतः सूफी आख्यायक कालों में रूपक की जितना न करके सारी कथा का भीतर प्रति मोहक प्राकृतिक सौन्दर्य-तत्समीपता प्रेम के प्रति परिपूर्ण आत्मविसर्जन और फिर भी उसकी दुष्प्राप्ति का संकट दिखाकर अभ्यक्त प्रेम रस्य का इंगित किया गया है । इन कथानकों को रस्य-काम्य कहने में फिर भी संकोच रूढ़ि जाता है । यह स्पष्ट है इसलिए कि कथा के मूल साधन रस्य की रक्षा नहीं कर सकत और यदि उन्हें रूपक मान लें तो सख्त काम्य-सौन्दर्य की हानि हो जाती है । इसलिए कथानकों वाले आधुनिक आदि कविओं को रूपक के स्वरूप की जितना न करके गारे काम्य का बाह्य वह मायावपिनी मागमती अथवा विद्यावपिनी पदावतों का प्रसंग हो आत्मविसर्जनकारी मनीषिक प्रेम-वीर से आत्मतत्त्व देना पना है । फिर भी कथा का एक स्थान-स्थान पर बाधक बन ही गया है ।

कुछ समीपक इसी निराकार प्रेम-व्यंजना के भीतर, ब्रज में बिहृण करण वाली गिरिधर-मूर्ति की उपासिका, विरलत प्रेम और विर-विहृमयी मीरा के काम्य का भी पुनार करते हैं किन्तु ऐसा करण का हमें कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दीखता । जिन्होंने मुरदासजी के 'गोपीविभाष' और 'भ्रमरगीत' का अध्ययन किया है उन्हें मीरा की किमी निराकार दुष्ण की उपासिका बना देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होगी । अथवा मीरा एक माटी थी और गिरिधर के प्रति उनका प्रियतम भाव था किन्तु ऐसा ही भाव गोपियों का भी था जो निराकार की उपासिका नहीं थीं । स्वप्न में प्रियतम के दण्ड धारि क उल्लेख गोपियों के विरह-वर्णन में भी मिलते हैं और मीरा में भी । महादेवीजी और मारा शार्गनिक दृष्टि में एक ही परम्परा की अनुपायिनी प्रतीत होती हैं ।

निर्गुण निराकार ही आध्यात्मिक शार्गनिकता की धरम कोटि है । एक अर्थ-अभ्यय अतन तरब अितमें विकास में भी कोई भेद किमी प्रकार सम्भव नहीं जिस विर त्पिर आत्मतत्त्व के अविचल गौरव में संसार की उच्चतम अनुभूतियों भी मरीचिका-भी प्रतीत होती हैं यह परिपूर्ण आझाद अिनमें स्मित-नरंगों के लिए कोद अकटाय नहीं रहस्यवाद का मधोच विरूप्य है । इसके अतिरिक्त अित्पय उपनिषदों के अर्थ और नहीं नहीं मिलने । अथे अक टर इनकी महामहिमा का अय हाथे मया इनमें विरह के कमंडोर अंम बुझने लगे और कमण यह वैराग्यपूतक कण्य मापनाओं का अविधान बना दिना गया । काम्य में अब तक हमका केवल मनीषिक स्वरूप रहा अब तक यह अथिक विहृण नहीं हुआ था (उदाहरणार्थ आर्यम्भिक बौद्ध-आह्वय में) किन्तु अब इनम साम्प्रदायिक धार्मिकी प्रवेश करने लगी और इडा-विमता आदि की अर्था बड़ गई अब काम्यदृष्टि अ मका म्नाम होन मगा । कपीर की अमत्कारगुण अनिमा और अम्यदृष्टि के अयस्वरूप एक बार फिर यह अकटर अक प्रवाण में आया किन्तु इन बार यह उनका अतिरिक्त और

महिमाय नहीं था। कारण इस बार प्रतिस्पर्द्धिनी माया भी दसबल-अहित उपस्थित थी। कबीर से आगे बढ़ने पर मायापत्नी की छाया भी काष्प में खोर पकड़ने लगी और कमल-मत्सर की सत्ता असंख्य शरों की मन्थित सीमा पर जा पहुँची। जहाँ आरम्भ में भेदों की अस्वीकृति इष्ट थी वहाँ अन्त में भेदों का प्रापत्य ही प्रमुख बन गया। ऐसी अवस्था में निरक्षर अध्यात्म-सत्ता अपने पूर्व गौरव से कैसे स्थिर रहती ?

ऊपर मैं प्रसंगबध कह चुका हूँ कि महादेवीजी के काष्प में छायावाद-युग की विद्येपताएँ नहीं मिलती। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति 'पल्लव' बाल पंतवी का-सा विमोहक आकर्षण उनमें नहीं। इसके बदले वह प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक कृति को साकार व्यक्तिगत देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं जिनमें उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है। अबस्य यह कल्पना-बाहुस्य ही छायावाद-युग की एक विद्येपता उनके काष्प में बीसती है। किन्तु वे कल्पनाएँ सब जगह मीची और खोल करने वाली नहीं हैं। उनका प्रत्यक्ष रूप सहज आँखों के सामने नहीं आता। कहीं-कहीं तो उन प्रतीकों का वह कल्पित व्यापार हमारे सौन्दर्य-संस्कारों के प्रतिकूल पड़ जाता है और कहीं-कहीं वह इतना विस्फोट होता है कि हम ईप्सित सौन्दर्य की खोजी नहीं पा सकते। इन दोनों का एक-एक उदाहरण मैं देना चाहता हूँ—

रजनी ओढ़ जाती थी मिठमिठ तारों की बाली ।

उसके विस्तरे बीमज पर जब रोती थी उजियासी ॥

यह प्रभास का दुष्प है। रजनी का मिठमिठ तारों की बाली ओढ़कर जाना बड़ी ही सरस और मानिक कल्पना है। किन्तु उजियासी का रोना हम साधारणतः नहीं देखते। वह प्रायः हँसती ही आती है। यहाँ हमें अपनी अस्थित अनुभूतियों का दबा कर यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभासकाल की लमी अदवा ओढ़—आँसू के रूप में उजियासी रो रही है।

कितना कल्पना का एक उदाहरण मैंने यह चुना है—

निस्वाशों का नीड़ निशा का बन जाता जब धयनागार ।

लज खाते अनिराम छिन्न मुक्ताबलियों के बंदनवार ॥

तब बुझते तारों के नीरव लयनों का यह हाहाकार ।

आँसू से निज-निज जाता है चितना अस्थिर है संसार ॥

आकाश में रात्रि के समय अज्ञानक बाबल धड़ गये हैं और पानी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है जबवा यह राष्म्यंत की कल्पना है। रात्रि की मुक्ताबलियों के अनिराम बंदनवार (तारिका-बलिष्ठ) छिन्न होकर लुठ गए हैं। निस्वाशों का नीड़ उसका धयनागार बन गया है। तारे बुझ रहे हैं, बूँदें गिरने लगी हैं, बड़ी मानो बुझने तारों के नीरव लयनों का हाहाकार और उसके आँसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है 'समार चितना अस्थिर है ! कितनी कल्पना हमें ऊपर से करनी पड़ती है कल्पना विचार कीजिए। और जब भी मुझे निश्चय नहीं कि मेरा जब ठीक ही है।

जिस लय को महादेवीजी की कल्पना ने पकड़ा है—तारों से हँसते हुए आकाश में लक्ष्मी मणिन बाबलों का सा बागा लक्ष्मि निदान्त में तारों का बुझना वह काष्पोपयुक्त

और अति सुन्दर है किन्तु क्या यही बात उनके इस चित्रण के सम्बन्ध में कही जा सकती है ?

इसके दो कारण मुझे दीखते हैं। एक तो यह कि महादेवीजी की कविताएँ इतनी अत्यन्त हैं कि वे प्रकृति के प्रत्यक्ष स्वरूपों उनकी ध्वनियों और संकेतों से सुपरिचित नहीं और दूसरा यह कि वे काव्य के एक-एक अन्व को एक-एक चित्र के रूप में समझना चाहती हैं जिसमें वस्तुओं और व्यापारों की योजना संक्षिप्त रूप में करनी है। और वनों कि यह मानसिक वृत्तियों और बाधावरणों को भी उन्हीं वस्तु-व्यापारों के द्वारा ध्वनित करना चाहती हैं, इसलिये यह कार्य उनके लिए दुःसाध्य हो जाता है। उनके इन वीर्य चित्रणों की तुलना अन्य प्रमुख छायावादियों से कीजिए तो अन्तर आप दीखेगा—

बेल बसुवा का घौन भार, गूँज उठता है अथ मधुमास ।

बिपु उर के-से मृदु उर्ध्वगार, कुसुम जब लुल पड़ते सोष्णवास ।

न जाने सौरभ के निध कौन संदेशा मुझे भेजता मौन ।

— सुमित्रानंदन पंत ('मौन निमंत्रण')

अथवा—

पवन में टिपकर तुम प्रतिफल, पत्तियों में भर मधुल हिमोर ।

जूम कलियों के मुद्रित बल पत्र-छत्रों में गा निद्रि भोर ॥

विषय के अन्तस्तल में जाऊ, धमा बेती हो तड़ित-महाहू ॥

— निराला ('स्मृति')

अथवा ये चित्र अधिक हल्के और अनजड हैं इनमें सूक्ष्मतर रूप-योजना और भाव-संज्ञता की वह महत्प्रशंसा भी नहीं है यह हम स्वीकार करेंगे किन्तु तब हम महादेवीजी से कहेंगे कि वह अपनी उच्चतर कला प्राकाश के उपर्युक्त सामग्री का भी राक्षय करें। यह कहना भी उचित न होगा कि जिस सूक्ष्मतर भावभूमि के चित्र महादेवीजी बना हैं उनमें अस्पष्टता अनिवाय है। अस्पष्टता काव्य का कोई गुण नहीं है यह पित्रण की पूर्णता ही है। अस्पष्ट छाया भावों का चित्रण भी सुस्पष्ट मोती व पानी विसा भीतर में दमकता और मसमिद होना चाहिए। काव्य की विद्येयता तो इसी में है।

महादेवीजी ने भी जहाँ अलंकृत चित्रांकन छाड़कर मोबा रास्ता पकड़ा है, वहाँ यही सजीव कविता का लोठ बह जाता है।

स्वयं का या गीरव उष्यवास देव बीषा का टूटा तार ।

मत्स्य का जलभोगुर उपहार, रत्न बहु प्राणों का शृंगार ॥

नई मागाओं का उपवन मधुर बहु या मेरा जोवन ।

और जहाँ यह कल्पना के अर्द्धसुट या टुकड़ उपमानों को छोड़कर इसी मराजा के ताव कांकन की टरले मगी हैं वहाँ उनके चित्र गूँब साठ भाए हैं वैसे—

जाव जाग मुकेतिनी री

मरिदा ने या मधुल होने गिचित देको रूप लोके

पर न तेरे बलक डोरे । बिपतरतो अन्के भरे जाने

मुनन वर बेयिनी री ।

जाहूँ में अस्तित्व लीये अमृत से राख रंग घोये ।
महप्रेम बीपक सजीव रंग किसका देखती तू
असत स्वप्न निर्बेधिनो री ।

पाठक देखेंगे कि यह सौन्दर्य-विभक्त भाव्यामिक रहस्य-मुद्रामा से परिपूर्ण है। इसे छायावाद की परम्परा में हम नहीं ले सकते। इनमें एक बिसर्पण उपासीनता साहित्यता दान्ति और निरुपमता भक्तपत्नी है। छायावाद की अतनता आँसु और अटक इनमें नहीं। महादेवीजी के काव्य की यह एक सार्वत्रिक विशेषता है।

किन्तु महादेवीजी की अधिकांश रचनाओं में ऊपर के-से भाव-संकेतक लय-विनय नहीं मिलते भावों का विषय ही प्रधानतः मिसता है। मेरी अपनी दृष्टि से रूप-विनय की सहायता के बिना रहस्यवाद की काव्य-कला का पूर्ण प्रस्तुतन नहीं हो सकता। जो स्वयं अक्षय्य वस्तु है उसे अस्पृष्ट उपमानों से व्यक्त करना पाठकों को काव्य रस से अंधता बचिन ही रहता है। जैसे 'अनुपम पीड़ा क सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ—

इसमें अतीत सुखरूपता अपने भाँसू की लड़ियाँ
इसमें अतीत गिनता है वे मधुमासों की घड़ियाँ

किन्तु इनकी मजना कहाँ तक की जाय यह महादेवीजी की प्रधान काव्य शैली ही है। तो भी इसके अन्तर कुछ उल्लेखोक्ति की रचनाएँ भी उन्हीं की हैं। जहाँ व्यक्त रूप किसी-न किसी प्रकार आ पाए हैं वहाँ रचना प्रायः सुन्दर हुई है—

किसी नज्द मोह से दूट
बिबक के झतबल पर जबात ।
हुलक को पड़ी मोस की बुँद,
तरल मोती-सा से मुहुगल—

नाम से बीबद से अजजान,
कहो क्या परिचय है नादान ।

अपना—

किन्तु तुम्हारी से छलक यह ज्योस्तना अम्तान
जात कब पाई हुमा कसका कहाँ निर्माण ।
अजस पलकों में जड़ी-सी तारिकाएँ बीन
हुँडती अपना पता बिस्मित निमेष बिहीन ।

×

कौन तुम मेरे हृदय में ?

कौन मेरी कलक में गित मधुपता भरता जलकित ?
कौन प्यारे लीचनों में घुमड़ फिर भरता अपरिचित ?
अनुत्तरण निश्वास मेरे कर रहे किस्का गिरलार ?
अमने पबजिहू किस्के लौटते यह इबास फिर-फिर ?

यह विस्तार पद प्रगाथजी के 'कौन हो तूम इसी सून हृदय की चिर लोज ? का स्मरण दिलाता है। यद्यपि महादेवीजी और प्रगाथजी की रहस्य भावना में यह सुस्पष्ट

न्तर है कि महादेवीजी का मुकाम सर्वत्र करमा और भक्ति की ओर रहता है जब कि महादेवी प्रायः तत्कालीन का संकेत करते हैं ।

‘मत् भरणं भूषणं खोल री’ और ‘शृंगार कर म री सजनि’ रहस्यात्मक रूप-विन्यास सुन्दर उदाहरण हैं ।

‘साध्यगीत’ में दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हा उठी है किन्तु काव्य-उपादान जतनी ही मात्रा में समृद्ध नहीं हो पाया । इसीलिए सम्भवतः इन गीतों की रहस्य भावना ही प्रधान स्थान पा गई है उपयुक्त रूप-योजना उन्हें नहीं मिला सकी । भावना का विकास होते हुए भी ‘साध्यगीत’ में और महाकवि रवीन्द्र की ‘भोतांजलि’ में दो मुख्य अंतर हैं । उनकी अनेक काव्य-शक्ति कभी उनकी भावना का साथ नहीं छोड़ती । भावना की दृष्टि में पिछड़ जाने पर ही काव्य की—

पंजज कसी पंजज कसी
बया तिमिर कह जाता करण,
बया मधुर है जाती किरण ।

जैसी अन्वोक्ति-व्यक्ति परकृती पड़ती है । यद्यपि यह अन्वोक्ति अनेक दृष्टियों की है किन्तु अन्वोक्ति कितने ही अनेक दृष्टियों की हो उसकी काव्य से मिल्न शैक्षिकता बिना एक नहीं रह सकती । दूसरी बात यह है कि रवि बाबू की रचनाओं में कल्पना की जो एकत्वानता को प्रसार, जो बहुत शृंगारता मिलती है वह इन गीतों में उठनी नहीं । तो भी छोटे-छोटे टुकड़ों में अपने ढंग की मझाई और काव्य नाम महादेवीजी के बहुत-से गीतों में मिलता है ।

प्रसार के ‘औं’ निरामा की ‘स्मृति’ जैसी उदात्त और एकजान कल्पना तथा परबप का-ना मौख्योन्मेष महादेवीजी में नहीं है किन्तु वेदना का विन्यास उगकी परलुप्तता (‘आन्वोक्ति-व्यक्ति’) का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण जितना महादेवीजी में दिया है, उतना कहीं कवि नहीं दे सके हैं ।

‘साध्यगीत’ की पहली ही कविता में साध्य-नाम और जीवन का विन्य-प्रति विन्य रूप महादेवीजी के काव्य में चित्रांकन-कला का एक मजल उदाहरण है मम ही प्रकृत भावोच्छ्वास का प्रवेश उसमें न हा ।

मैंने पहले कहा है कि छायावादी काव्य के व्यक्त प्रकृति के गीत-पं-मतीकों को न सार महादेवीजी ने उन प्रतीकों की अत्यन्त मतिवों और छायाओं का संग्रह किया है । इसमें उनकी रचनाओं में वेदना की शक्ति और रहस्यात्मकता बढ़ गई है किन्तु वे स्पष्ट नहीं-यही अर्थिक कुछ हो गए हैं । उदाहरण के लिए यह रचना लोचि—

उच्छ्वासों की छाया में पीड़ा के आतिथ्य में
निद्राओं के रोदन में हृच्छाओं के पुम्बन में
उन कही हुई सोती-सी उजियाली को पनकों में
बिपरी जलभो हिलती-सी नमपादित को मनकों में
सूने मानत-मन्दिर में सपनों को सुबह हसी में
आजा के आवाहन में जीने की विषयों में

देव, अब बरदान कैसा ?

बेध हो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है ।
 मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है ।
 छीन सब मीठे लपों को इन सबक मन्विष्यों का ।
 मान लघुता से मुझे होगे निदुर प्रतिबान कैसा ?
 जन्म से यह साथ हूँ मैंने इन्हीं का प्यार जाना ।
 स्वजन ही समझा दुर्गों के भयु को पागो न माना ।
 इन्द्र-बनु से मिल लखी-सी बिद्युहीरक से जड़ी-सी ।
 मैं भरो बरसो उन्हें बिच मुक्ति का सम्मान कैसा ?

इस अवस्था की अनुभूतियों का वैविध्य और काव्य की मनोहारिता महादेवीजी में ऊँची खेची ली है । कोई भी छायावादी इतने अटल माब से इस भूमि में नहीं उठ सका । इस भूमि की प्रसीप्त अनुभूतियों का ऐसा संकलन मनीष बुद्ध का कोई हिन्दी कवि नहीं कर सका है । तो भी हम कहेंगे कि महादेवीजी का काव्य व्यक्तितगत दुःख को सब जगह धार्मिक ढँचाई तक नहीं ले जा सका है ।

महादेवीजी जिस गये क्षेत्र में जिस लीन हय से काम कर रही हैं। इससे उनकी कठिनाइयों का अनुमान हम कर सकते हैं । एक तो परोक्ष स्तर की निपुण अनुभूतियों का उपग्रह फिर उनकी परिष्करण और उन्हें उपयुक्त ब्यंजना देना तीनों ही व्यापक-साध्य हैं । फिर महादेवीजी अपनी ब्यंजना-बीनी म भी एक लीनता रखती हैं । एसी अवस्था में हमें आश्चर्य नहीं होता कि भाषा तुकों और छन्दों के ब्यंजना की ओर बहू पर्याप्त सतर्क न हो सकीं । महादेवीजी की भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं मिलती । तुकों के सम्बन्ध में भी काफी सिधिलता बीजनी है । छन्दों और पीतों में भी एककृता बधिक है । नाचो को काव्याभिव्यंजना देने के सिधिलिसे में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ बीसे प्रयोग एक पंक्ति के बार बूसरी ही पंक्ति में जाते मिल हैं—

जिन लयनों को विपुल लीलिमा में मिलता लभ का आभास ।

जिन मालस में बूब पड़े कितनी कबला कितने तुफान ।

जिन जयनों की मन्व होती थी लभ मन्वोदक का उपमान ।

किया ईब से जिन प्राणों का केवल सुपमा से निर्माण ।

मोठों की हँसती पीड़ा में जाहों के बिजारे त्यागों में ।

जो तुम मा जाते एक बार

कितनी कबला कितने संदेस पच में बिछ जाते इन परान ।

इन उद्धरणों की पहली पंक्तियाँ कितनी सुन्दर और काव्योपयुक्त हुई हैं। उतने ही अन्येक बूसरी पंक्ति के विज्ञित प्रयोग बिल्ल हो गए हैं । कई पंक्तियाँ सुष्क पच-धी मपीठ होती हैं—

मैं मबिरा तू उसका कुमार ।

मैं ज्ञाया तू उसका जन्म ।

बल चितवन के ब्रुत सुना उनके पल में रहस्य की बात ।
 मेरे निजिमेव पलकों में मचा गये क्या-क्या उत्पात ।
 यद्ये सब से कितने मुप बीत हुए कितने बीपक निर्वाण ।
 मूर्खी पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा-सा मनमौहूत पाण ॥
 नीचे लिखी पवित्र ध्वनि-दीपित्य का एक उदाहरण है—

सिधिल मधु-यवन विन-विन मधुकम
 हरतिगार भरते ह भर-भर ।

'गुम विन 'उन विन'-जैसे प्रयोग अधिक नहीं अलरत और 'पव विन अम्त' भी बस जाता है। 'मै न बानी' 'मै प्रिय पहचानी नहीं 'जैसे व्याकरण-असम्मत प्रयोग भी अत्रिब नहीं लगते। तो भी कहना पड़ता है कि महादेवीजी की रूस्मानुभूति चितनी समृद्ध है, उनकी काव्य-प्रतिभा उतनी ही उल्लुष्ट नहीं और भाषा-शक्ति भी सीमित है। किन्तु अभी महादेवीजी निरन्तर विकास के मार्ग पर बढ़ रही हैं, वह किस दिशा में कितना बढ़ेंगी यह अब तक अज्ञात है। इसलिए उनकी किसी भी विशेषता पर अन्तिम मुहर अभी नहीं लगाई जा सकती।

अब यहाँ मुझे उन मतदाताओं के समाधान में कुछ अन्तिम उद्य कर्तने होंगे जो महादेवीजी की अनुभूतियों पर कास्पनिकता का आरोप करते हैं। उनकी समझ में नहीं जाता कि किस जयत् की बातें वह कर रही हैं और उनसे हमारा क्या सम्बन्ध हो सकता है। इन्हीं में से वे कुछ शोभ भी हैं जो आधुनिक बोलाहम म अस्त होने के कारण या तो महादेवीजी के काव्य-जयत् में पहुँच ही नहीं पड़े अथवा दो-आर पीढ़ों की बातचीत लेकर शेष सब एकरूप ही हैं कर्तने की अस्दबाजी करते हैं। इन सबको मरु उत्तर यह है कि महादेवीजी के काव्य का आधार उही अर्थ में कास्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार कास्पनिक है जिस अर्थ में 'गीतांजलि' और 'जायू काव्यनिक' हैं। जो महादेवी का अध्ययन नहीं कर सकते वे इन कवियों का भी अध्ययन कैसे कर सकते हैं अथवा इनको भी एकरूप क्यों नहीं ठहरा सकते। यहाँ मैं उन महानु माओं का सुमार नहीं कर रहा जिनकी राम में रहस्यवाद किसी प्राचीन बर्बर युग की स्मृति है, मनुष्य की अधिकसिद्ध काव्य भाषता की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास सिद्धान्त में बहुत दूर की पीढ़ हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी हैं नहीं मानता।

ऊपर मैंने प्रथमपत्र मीरा का नाम से लिया है। साथ ही कुछ अन्य कवियों का नाम भी आये हैं जिनमें महादेवीजी की तुलना करने का मेरा मत्तव्य नहीं रहा केवल काव्य की आधारभूमि मिलती-जुलती दिलानी थी। फिर भी अकसर सौधों का मापह रहा है कि मैं मीरा और महादेवी के काव्य की तुलना के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। मेरा कहना यह है कि मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अर्थों में एक-सा है किन्तु वे दोनों दो युगों की सृष्टियाँ हैं। अपने अपने युगों के अनुकूल ही इन दोनों का काव्य-अवकिण्ड है। मीरा का काव्य नैर्धनिक भावोन्नत का नमूना है। वह अनीतिक प्रेम और विरह से जीये हुए हृदय का उद्धार है। उनमें काव्य-कला की बाणीकियाँ हमें नहीं मिलती सुविमान

बिरह की लड़प और मिलन के सम्बन्ध मुन पड़ते हैं। प्रकृति और कल्पना की महापता से भावों का विनय बह नहीं करने देती। मध्यम्य के सभी समुन्नत कवियों की यह अप्रतिम निरसिगता उनकी अपनी थी है। उस तरह की थोड़ा मात्र इस शैलिक विकास के युग में बूढ़ना योग्य सुपों का अपमान करना है। महादेवीजी में भी अनुभूति की सचाई है और गहराई है किन्तु वे काव्य-कला में सबकर आई हैं। मीरा अपने प्रियतम की खोज में राज महल छोड़कर निकल आई थी और उन्हें गुह-जन पुकारती फिरती थी। उनकी काव्य पुकार साफ़र है। महादेवीजी की प्थानि अधिक पीनी और अधिक उम्य होनी समुचित ही है।

विष्णु काव्य-कृष्टि से महादेवी मीरा की उँपारि पर कम ही पहुँचती है। काव्य कला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र शैर्गिक उन्मेय नहीं साध ही उनमें एँकीधिता भी है। उक्त भावना-विष्णु के लिए मुक्त बाधाध म फानी की भाँति उड़कर चराचर जगत की जो सौन्दर्य तामशी जो सहज आरबाध फस कविगत प्रस्तुत किया करते हैं महादेवीजी में उसकी कमी है। भावना-विष्णु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छाड़ने नहीं देता। फलत उनके काव्य में प्राकृतिर अपमानों का बीकिय्य नहीं है। उनकी कविता कुछ शर्दों में शोरी भावना-निष्ठा से जो व्यक्तितगत है, विजड़ित है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मैं प्रसार'की की शोपकितयौ कितता हूँ। ये उनके चरद्रमुष्ट नाटक में आई हैं, विषय है बेसप्रेम का—

सहज यह लक्ष्मण बेरा हमारा

जहाँ पहुँच अनजान सितिक को निमता एक सहारा।

लक्ष्मण लक्ष्मणु से पंख पतारे पीतल भलम समीर उहारे।

उकरी खव बिस ओर मुँह किये सधन मीड़ निर प्यारा।

कवि अपने मूल विषय को लेकर कितनी दूर जाता गया है, व्यक्तितगत भाव के मार से कितना झूटा हुआ। पक्षियों का अनुकूल पवन के सहारे छोटे-छोटे इन्द्रजनुषों के-से पंख पतारे, अपनी इप्सित विधा में मीड़ों की भार उकता और मेरा दस (सुख सौन्दर्य और अपनपन की स्वयंता)। अनजान सितिक की कूल-किताग मिसता—सहारा मिलना और मेरा बेस (भावम बाधिय्य और औशर्य का भाव)। और साथ ही शिठिक को किमारा मिलने और पलियो के मीड़ की ओर उड़ने की मूर्तिमता कितनी सहज मध्य और हृदयप्राप्तिची है। यह भावना तो है ही किन्तु समुन्नत काव्य के बेरा में। महादेवीजी की पकित भावना के विपलेपन म है प्राकृतिक रूपों और उपमानों द्वारा उसे व्यक्तिक करने में नहीं। बाह्य निरसलता और अंतरंगता जो महादेवीजी में एक सीमा तक बड़ी हुई है, उनकी काव्य-व्यक्ति को परिपूज विकास नहीं दे रही है।

सभी उच्चकोटि के रस्यवाची कवियों और स्वयं मीरा में भी भावना का प्राचुर्य अपयुक्त प्राकृतिर उपमानों और कल्पनाओं के सहारे काव्यात्मक परिच्छेद में व्यक्त हुआ है। बकिर हृदय के मूलम भावों की स्वयंता के लिए अन्य कवियों की अपेक्षा रस्यवाची कवि को प्रकृति की—उमटी एक-एक भावमयी रूप रंय पति-अनुभूति की और भी

सम्भीर पर्यटन रानी पड़ती है अन्यथा उसका काम नहीं चल सकता ।

मीरा का काम्य दिव्य प्रेम और विरह पर आधारित है जो एक और उस सहज हृदयवादी बनाता है और दूसरी ओर काम्य क विषय को विस्तीर्ण कर देता है । महादेवी के काम्य में वैराग्य-जाबना का प्राबल्य है । महात्मा बुद्ध की भाँति सही (बुद्ध की मूर्तियों में दुःख की मूर्ता नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध-सम्पासियों और सम्पासिनियों-सरीली एक चिन्ता-मुद्रा एक विरहित एक ठरूप शान्ति के प्रति एक व्यथाति महादेवीकी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है । किन्तु इस कारण उनकी कविता में एकक्यता (मोनोटनी) नहीं आई है जैसा बुद्ध भोग आरोप करते हैं । उनके रूप-चित्रों में प्रचुर वैभित्तय है ।

जागा है मीने दोनों का अन्तर यथासम्भव बाड़े में स्पष्ट कर दिया है ।

अब मैं अन्त में यह कहूँगा कि आधुनिक कवियों में महादेवीकी का क्या स्थान है इसका निर्णय करना अभी हमारे लिए असामयिक होगा । इस युग के अग्रमध्य कवियों में संभवतः उनका स्थान सुदृष्टित रहेगा (केवल इसलिए नहीं कि भारत सम्पारम-ग्रन्थान्नेत है बल्कि उनके काम्य-मुषों के कारण) किन्तु उनमें उन्हें कीम-सा विषय पर प्राप्त होगा यह तो समय ही बता सकता है । मैं यह चुका हूँ कि उनका विकास अभी ब... नहीं हुआ है ।

किसी कृति को कलात्मक होने के लिए अनिवार्य गुण तो यही हैं कि कोई मुकबि हो। पर मुकबि हम किये कहे यह विवादास्पद हो सकता है। माबक व्यक्ति गुरबि हो सकता है। शिक्षित व्यक्ति मुकबि हो सकता है। जम्मास से सामान्य व्यक्ति मुकबि हो सकता है और केवल बाबी के समुपह या प्रतिभा के बल पर कोई व्यक्ति अमर हो सकता है। केवल भावुकता के बल पर, केवल शिक्षा के बल पर केवल जम्मास के बल पर और केवल प्रतिभा के बल पर, साहित्य के इतिहासों में अपने नाम छोड़ जाने वाले कबि किसी भी देश और किसी भी समुह साहित्य में मिल सकते हैं। प्रकृति ऐसा जम्मास तो नहीं करती कि जिसे प्रतिभा है उसे हृदय न दे जिसे हृदय दे उसे चिन्ता प्राप्त करने का संयोग न दे और जिसने पुस्तकों का ढेर लगा दिया हो उसमें कहीं भी प्रतिभा की मूलक न हो। पर प्रतिभा भावुकता और विद्वत्ता के संयोग का बरदान छत्ताभियों में किसी तुलसी किमी रबीन्द्रनाथ किसी जयसंकर प्रसाद और किसी महादेवी को मिल पाता है।

कला-पक्ष अविश्वन्त-पक्ष है। पर अविश्वन्त की पंखुरियाँ कोमल के लिए उस वस्तु-भुवन के स्वप्न पर भी बिचार करना आवश्यक होता है जिसकी वे पंखुरियाँ हैं। महादेवी के हृदय से निकले गीतों का आत्ममग्न ब्रह्म है जो स्वयं निर्विकार रहने पर भी सभी परिवर्तनों की भाष्य भूमि है जो इस विवाद दिव्य के मुकुट मग्न से अलक्ष्य रूप से बम्पी होकर समस्त प्रतिबिम्बों का आधार है जिसमें 'नाम' 'रूप' की प्राप्ति हो रही है जो अन्नित सौम्य का अन्तर्गत शोध है। प्रलय निवेदन के लिए इससे ऊँचे इससे स्वामी इससे सुन्दर, इससे आकर्षक आत्ममग्न की अस्पता नहीं की जा सकता। जब प्रेम करना ही है तो ऐसे स्नेही का सहारा क्यों न लिया जाय जो आत्मा को ऊँचा उठावे ? अलक्ष्य ही है तो ऐसे क्यों न बना जाय जिससे निमेष कोमल आसोक फेले ? रोना ही है तो ऐसे क्यों न रोया जाय जो मन की मलिनता को भी दे ? सौम्यप्राप्तना करनी है तो ऐसे सुन्दर से अनुदाग क्यों न किया जाय जिसका रूप अक्षय ही ? महादेवीजी की कला का जन्म अक्षय सौम्य के मन से दिव्य प्रेम के नीलर से अक्षीकिक प्रकाश की मुहा और पावन उज्ज्वल रसे हुआ है।

गीतों की परम्परा यों सीधी बेधों से स्थापित की जा सकती है, पर हमारी माया की झंझड़ में सबसे पहला स्वर-संज्ञान वैदिक-बौद्धिक विद्यापति ने किया। विद्यापति के पद निमित्तान्तरेण के अंत पुर को एक दिन मजायमान करते थे और आज भी उस भूमि में अपनी रक्षात्मकता के कारण सहस्र-सहस्र बौद्धिक-कंठी बकिताओं द्वारा हाथ-बाट, उत्सव और एकाग्र में पाए जाते हैं। इस मायुर्म में ही बंगालियों के हृदय में यह शोभ उत्पन्न किया कि जिस प्रकार भी हा विद्यापति को बंगमा-कवि सिद्ध किया जाय। बंगाल के अनेक पत्रनाम्य वैच्यक कवियों पर विद्यापति का प्रभाव स्पष्ट महिष्ठ होता है। विद्यापति के पदों को पुनर्पुनः ही मयुर-कम्पन की असंख्य विशदण् महुरियों समस्त गिरा उप धिराधों में तीव्र वलि स प्रमाहित होने लगती हैं। पर विद्यापति की मक्ति भावना ने मायुर्म-नाम का भाव्य लेकर राधा-कृष्ण न एकाग्र जीवन के जिस मीमा-न्स को इन पदों से मरा, उसका आस्वादन स्वयं श्रुति वालों को कठिन पड़ता है। यही कारण है कि विद्यापति की बहुतांश और गृह्य की संज्ञा ही। विद्यापति के अनुराग कबीर ने अपनी ठंडी संज्ञानी और एकाग्रता की मस्ती में सैकड़ों पद उनके ज्ञान-निष्ठ से निम्नत हुए। उनका अधिकार काव्य वशाकरण की अस्मयस्या से पंथु और हठयोग के जाने जाने से उत्पन्न हुआ है। उस एक आचरा पावक उठा जियने अपने इकतारे पर एक साध पव ठीर दिए और अपनी बन्ध जालों से मकनीत-शोर के प्रेम की असंख्य लीनियों को विविध किया। मूर के शय्य होते ही न जाने किसनी राय-रागिनियों सजग हो उठीं। उस पावक की जाने आज भी भारतीय संघीतकों की साधना की वस्तु है। पर मूर में भाव और भाव-विस्तार में कोई अनुपात नहीं है अर्थात् उन्होंने एक-एक बात को अनेक पदों में गा-गाकर एकरस कर दिया है। यह बात उनके भाव-शोक हजार उपसम्भ पदों को एक ओर से पढ़ने पर अनुभव कीजा सकती है। मूर के पदों का चयन चितना प्रभावशाली प्रदीत होता है उतना उन का अर्थ नहीं। उनके समकालीन महात्मा तुलसीदास की गीतावली और 'विनय-पत्रिका' भी इस क्षेत्र में महत्त्व रखती है। तुलसी भी मूर की भांति राय रागिनियों की प्रजा के सहाय थे। गीतावली की शृंखला में कथानक की बारा बहती है, अतः वे पद उतने संघीतारमक नहीं हैं जितने कथनात्मक। गीतावली के कुछ प्रारम्भिक पद जिनमें कोई-कोई पञ्चम बंधनों तक का है और विशेष रूप से उत्तरवाण्ड के पद इसी प्रकार के हैं। 'विनय-पत्रिका' के कुछ पद प्रायः वाए जाते हैं पर कुछ चुने हुए पद ही। उनमें से पञ्चम से ऊपर हा सश्रुत की दीर्घ समास-व्यक्ति के अनुकरण के कारण बुद्धि के लिए यहाँ तक बौद्धिक है कि संघीत प्रेमी तो क्या साहित्य के विद्यार्थी के प्राय भी उनसे पबरते हैं और उनकी सबसे बड़ी उपयोगिता पुस्तक में प्रकाशित होना ही है। यय पर उपरोक्त का रंज बहुत महत्त्व है जिसे अधिन माना न पञ्चमा सह्य नहीं है। पञ्चमों के दुर्घों की बहुलता और रागी की अत्यधिक म्युमता को लेकर चलने वाला काव्य केवल एक ही 'दरद दिवानी' का है और वह है—मीरा। मीरा में स्वर-महुरियां ही जैसे साधारण हो गई हैं। मीरा ने रो रागर गाया है अतः उसके चर-सम में कल्पन बड़ी है जिनसे उष्णान-मान से हृदय भर भर उठता है। पर वह इतनी बावली भी थी कि भावांत में बहने-न-कहने की सब जाने बिना शिषक के बह देती थी।

अर्थात् गीति काव्य प्राचीन पदावली-साहित्य से निम्न कोटि का है। पदावली साहित्य के साथ भारतीय संगीत की राम रतिनियाँ हैं और तुमसी को छोड़कर मात्राओं की पूर्ति का ध्यान सभी स्वसों पर विद्यापति कबीर, सूर, मीरा आदि किसी ने नहीं रखा। वहाँ तब से सब पूरा हो जाता है। आधुनिक काल में उन ढाँचों की ओर जोड़ा बहुत आग्रह केवल निरामात्री का ही है। आज का गीति-काव्य अर्थात् और बँसरा गीति-काव्य की प्रतिस्पर्धा में लड़ा किया गया है। पर उसमें सब कुछ अपना है—अपने विमल का अनुकरण है, अपनी भाव भंगिमा है अपना स्वर-संशोधन है। प्रसाद ने अपने नाटकों और 'सहृद' पुस्तिका में पद्य के 'कुञ्जन' में और निरामात्री 'गीतिका' में कुछ बहुत ही मधुर गीत हिन्दी-अपन को भेंट किए हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में श्री हरिविद्याराय 'बन्धन' को विद्युत्-गति से सफ़लता और श्वाति प्राप्त हुई। उनकी रचनाओं में सक्षिप्तता स्वर माधुर्य भाव-विभूति और आत्मानुभव के सभी अनिर्वाय रूप एकत्र है। वे स्वामात्रिक जीवन के सफल गायक हैं। सुय-सुख दोनों से उनका बहुत परिचय है। अनुभूति की छविमत्ता उनमें नहीं पाई जाती। विर विभोग के क्षेत्र में जैसे 'निष्ठा निमग्न' अन्तर को कसक से भर देता है वैसे ही निमल के क्षेत्र में गत रतिनी 'मिमल मामिनी' और प्रलय पत्रिका के गीत पाठक के मानस में सुप्त के अमक्य सततल जिला जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन युग के कवियों में 'बन्धन' की अपने ढंग के अकेले गीतकार हैं। प्रसाद निरामात्री और पद्य को अपने-अपने क्षेत्र में अद्भुत सफलता मिली। ये तीनों ही कवि हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियों में हैं। पर फिर भी तीनों में कुछ ऐसा है जो उनके गीति-काव्य को पूर्णता प्राप्त नहीं होने देता। प्रसाद के नाटकों में अविद्याय गीतों का भाव के भीतर भाव और उस भाव के भीतर भी भावों का कुम्फल होने से आकर्षण एकत्र कुठिल हो गया है। 'सहृद' में दो-एक गीतों को छोड़कर भाव का सुत्र चिन्तन की इतनी गहराई में मिलता है वहाँ पहुँचने का कष्ट पाठक सामान्य रूप से नहीं उठाता। निरामात्री 'गीतिका' में सहृद भाव से नहीं जिला। पहले उन्होंने साथ ही तैयार कर लिए हैं और फिर उनमें शब्दों की स्थापना की है। तब और विशेष रूप से अनुप्रास का प्रयोग बहुत सचेष्ट होकर उन्होंने किया है। लघु की तरास उन रचनाओं में बहुत है। उनमें स्वरों का उतार चढ़ाव तो है पर भावों की गहराई नहीं अनाप की मधुरता तो है, पर बर्ष या आह्लास की अतिशयता नहीं। पद्य का 'कुञ्जन' आकर्षण का कुञ्जन है। उनकी रचनाओं में बाह्य शौर्य की इन्द्रधनुषी रसाएँ तो हैं पर किसी गहरी कोट का निरर्घन उनमें नहीं है। इनमें वे अन्तर में पीठनी नहीं। संयोज-नाम की आज रहने को वह गृहकार्य बीसी विमलस्य माधुर्य-सम्पन्न रचना दूसरी दिशा में है ही नहीं।

'गीतिका' की सृष्टि के भाव गीति-काव्य की परम्परा महादेवी में जैसे अपनी पूर्णता को पहुँच गई। उनका मानस भी वर्तमानित है, पर वह तब को नहीं दुबाता बर्षन की वह भी परिष्ठा है। पर माया और मन के विकारों पर ही दृष्टि गड़ाये रखना उनका काम नहीं भाव-नाम्नीय उनमें भी है, पर शुष्कता बचाकर भारतीय संघीत से उनका भी परिचय है पर अनावाचितों को गमस्कार करके असंकारों का प्रवेश वह भी करती है पर अनायास ही अकथिमता से। उनके गीतों को अनेक बार सुनने पर भी मन जैसे तृप्त

नहीं होया—

मूँजती क्यों प्राण-बन्धी ?
 शान्यता तेरे हृदय की
 आज किसकी साँस मरती ?
 प्यास को बरबाद करती
 स्वर-सहस्रियों में बिखरती
 आज मूक अभाष किसने कर दिया लम्बान बन्धी ?
 अमिट मस्ति के अंक से
 सने कभी ये छिद्र तेरे,
 पुलक क अब हूँ असेरे,
 मुझर रंगों के बिदेरे,
 आज जो इनकी अन्धा किन उँदालियों ने आज बन्धी ?
 मूँजती क्यों प्राण बन्धी ?

मैं पलकों में पास रही हूँ यह सपना मुकुमार किसी का ।
 जाने क्यों कहता है कोई
 मैं तम को पलन्य में बोई
 धूमधयी बोपी-बीपी में
 कुक-छिपकर बिद्युत्-सी रोई
 मैं कम कम में डाल रही अस्ति अस्ति के मिस प्यार किसी का ।
 पुतली ने धाकाया चुराया
 उर में बिद्युत्-लोक छिपाया
 अंगराग-सी है अंगों में
 सीमाहीन उसी की छाया
 अपने तन पर नाता है अलि जाने क्यों मूँजदार किसी का ।
 मैं कैसे उलझूँ इति-अब में
 गति वैरी संकृति है पय में
 बनता है इतिहास मिमने का
 प्यास भरै अनिसार अक्षय में
 मेरे अग्नि पय पर बतता जाता तुम्हा संसार किसी का ।

पिरती रहे रात ?
 न पय होपती ये
 गहननम शिवायें

म गति रोक पातीं
 पिपल निस बिघामें
 बली मुबल मै ब्यों भलय की ममुर बात !
 न आसू यिने औं
 म कटिं सँजोये,
 म पमचाप दिग्भ्रांत
 उच्छ्वास लोये
 मुसे बँदता हर पलक-पात में प्रस !
 स्वजन ! स्वर्ध कैता
 न लो बवाल घोया ?
 हुँसा कम तड़ित् में
 न लो मैघ रोया !

लिया ताव नै लोल अमार-संघात !
 बिरती रहे रात ?

सूत्र सभी भाषिक हैं, और वे पूरे छतरते हैं। 'रक्ति' की दो रचनाएँ—बलि और पपीहे पर—सुमिल सबैया होने के कारण बर्णवृत्त में सम्मिलित हो सकती हैं, पर उनमें भी 'समन' (115) का निर्वाह ठीक से नहीं हुआ अद्यपि बच प्रत्येक पंक्ति में प्रचानुधार २४ ही है।

भाषिक कवियों के अतिरिक्त अनेक लोक-गीतों में महादेवीजी ने नवीन प्राण प्रतिष्ठा की है। गीतों में टैक की विविधता से एक प्रकार की नृतनता भीषिकता और मुखता मटी हुई है। इनमें जो कोमलता जो गून है उसकी प्रसंसा सामर्थ्य के बाहर है। केवल स्वर-साधन से उनके प्रभाव का परिज्ञान हो सकता है। उनमें संगीत का वह मोहन मन्त्र है जो मन को लोरी बेकर स्वप्नाविष्ट करभे की शक्ति रखता है। 'गीरजा से बड़कर 'सान्ध्य-गीत' और 'सान्ध्य-गीत से बड़कर 'दीपशिका' में उनकी स्वर-महुरी कोमल से कामलतर और कोमलतर से कोमलतर हो गई है। जीवन के अनाप अकूम धार-सिन्धु से कितनी एकान्त पलों में व्यथित प्राणों की रई के संघाजन से यह अमृत-मंजन हुआ है कहा नहीं जा सकता।

आधुनिक हिन्दी-कविता के सम्बन्ध में यह सिंकायत अभी तक बनी हुई है कि वह स्पष्टता से समझ में नहीं आती। सिंकायत करने वालों में कुछ तो प्राचीन संस्कारों से पूर्ण व्यक्ति हैं, जिनका काम केवल नवीनता का निरोध करना है पर अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं, जो वास्तव में काव्य के प्रेमी हैं पर आधुनिक कविता की भाव प्रणाली तथा बर्णन-पद्धति से परिचित न होने के कारण उसके रस को ग्रहण करने में असमर्थ रहते हैं।

आधुनिक कविता में संश्यों का सामान्य अर्थ सर्वत्र नहीं है। जब कवि सुमुद निर्भर, मणि बनना दीप का नाम लेता है तब उसका तात्पर्य भारमा से होता है जब

तम कहता है तब निराशा अथवा अज्ञान की खर्चा करता है जब हास्य अथवा रहस्य पर कविता लिखता है तब उसके वृष्टि पत्र में बाधा और अज्ञान होते हैं इसी प्रकार जब पथिक या पत्नी को सम्बोधन करता है तब वास्तव में साधक उसकी कल्पना में भूमता है। इस प्रकार आज की कविता प्रतीकों समासोक्तियों, रूपकों और शालभिक प्रयोगों की बहारा शीतली के भीतर भावों के उस मन्त्र में जिसके शर एक विभिन्न भावों की सीढ़ियाँ पई हैं वहाँ बिचार और कल्पना पहुँचेदार हैं, बँटी है। उस तक पहुँचने के लिए कोई सामयिक पत्र और पद्य के सम्बन्ध की आवश्यकता है।

महादेवीजी का वाक्य मत्स्यभिक धार्मिक है इससे कहीं-कहीं कुछ-सा समता है। वह भी अपनी बातों को प्रतीकों के माध्यम से कहती हैं। इनमें कुछ प्रतीक तो परिचित होने के कारण बुद्धिमत्त्व रखते हैं—बैसे सागर संसार के लिए, तटी जीवन के लिए, बल चर-मुन्द कुशासनार्थों के लिए अथवा तम अज्ञान के लिए, प्रकाश ज्ञान के लिए इसी प्रकार शीतली के तार हृदय के भावों के लिए गायक साधक के लिए।

कुछ प्रतीक बिनका व्यवहार प्रचुरता से नहीं होता या भिन्न अर्थ में होता है तात्पर्य ग्रहण कराने में बाड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। अज्ञान की मणना आत्मक और मीन के साथ आदर्श प्रेमियों में हाती रखी है। पर महादेवीजी ने वहाँ आत्मा की दीपक रूप में कल्पना की है वहाँ अज्ञान को मोहमूलक सांसारिक आनन्द मानकर उसकी अज्ञाना की है या फिर उनके प्रति क्या विरताई है—

सतत मैं शापमय कर हूँ !

किसी का शीप निपटूर हूँ !

शून्य मेरा जन्म या
अवसान है अन्धकी सचेरा,
प्राण आहुति के लिए
लंगी मिला केवल अंधेरा

मिलन का मत नाम ले मैं बिरह में बिरह हूँ।

मयन में रह किन्तु अलती
दुर्नितियों आमार होंगी,
प्राण से कैसे बसाऊँ ?
कठिन अग्नि-सामाधि होयी।

किर रुही पालूँ तुमों में अत्यु-नगिदर हूँ ! १

शेष यामा याभिनि मेरा निवृत्त निर्वाण।

पापल रे तानम अमज्ञान।

कर भुभे इमित बता किसने तुमो यह पय बिलम्ब ?

किपिर में अज्ञातवैगी क्यों भुमो तू जोड ।

अग्निपद्मी में तुमें दूँ
कौन-सा प्रतिदान ?

'इन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्यासा' की उद्धरणी कल्पना की उत्कृष्टता दिखाने के लिए कई स्रोतों में हुई है। तारे महादेवीजी के नाम्य में सौमिक भावों के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। 'भीहार' की निम्नलिखित पंक्तियों को 'बीपद्या' के अनेक उद्धरणों की संघति में मिलाकर पढ़िये। आश्चर्य है कि वे एक स्थल पर भी नहीं भटकी हैं।

इन हीरक-से तारों को
कर चूर बनाया प्यासा
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसन बनाता !

भीस तारक मूर्तै दृग ।

भर पए कछोट सारे
तिभिर बस्य-बक में सब
विष गए अनमोल तारे !

भर चुके तारक कुसुम बब !

राख-से बंगार तारे भर बके हूँ !

किसी भी एक निरिखत अर्थ से प्रतीक का प्रयोग होने पर कभी अर्थ में व्याघात नहीं उत्पन्न होगा। महादेवीजी के श्चतु-सम्बन्धी प्रतीक भीजिए। वे बीप्य का प्रयोग रोप के लिए, वर्षा का करना के लिए, घिघिर का बबता के लिए, पतभर का बुझ के लिए और बसन्त का आनाख के लिए करती हैं। यहाँ तक तो ठीक है। पर एक प्रतीक का प्रयोग एक ही भाव के लिए हो उनके यहाँ ऐसा नियम नहीं है। जहाँ घिघिर से उनका तात्पर्य बबता से है, वहाँ मधुच्छतु का अर्थ कहीं-कहीं बेचना से भी है। भाषों के लिए ही उन्होंने कहीं 'बीपा के तार' लिखा है, कहीं 'कसियों के उच्छवास' और कहीं उग्ग्वल तारे। बुद्धि के लिए कहीं उन्होंने 'सुपनू' लिखा है, कहीं 'नखब प्रकाश'। सुख के लिए जहाँ 'मधु' का प्रयोग करती हैं, वहाँ 'रसिम' और 'मसय-पबन' का भी। मीथुओं का भाव उन्होंने 'नदाओं' से भी ग्रहण किया है, 'मकरण्य' से भी 'मोती' से भी और 'तुहिन-कल' से भी। बीजन का अर्थ वह 'तरी' से ही नहीं खींचती 'बसन्त' 'प्यासी' और 'महर' से भी। बड़ता को 'घिघिर' में ही निहित नहीं कर दिया 'रज' को भी उसके लिए अपनाया है। इच्छाओं के लिए किसी स्थल पर 'मकरण्य' किसी पर 'वीरन' किसी पर 'इन्द्रबनुप के रंया' से काम निकाला है। कहन का तात्पर्य यह कि जाकार अपना अर्थ-साम्य पर प्रतीकों का अर्थ सगाते हुए भी प्रसंग पर बहुत-कुछ निर्भर रहना पड़ता है। प्रसंग का ध्यान न

वेदना और करुणा

कुमार विमल

महादेवी के भाव-पक्ष का विवेचन भी आवश्यक है। भाव दृष्टि से इनकी कविताओं में बिरह और विप्रलम्भ की प्रपातता है अतः ईपन् एकरसता भी। किन्तु रींसी और सिरुप के अभिराम बेष्टन के कारण काव्य की यह भावगत एकरसता बहुत खमती नहीं है। छास्त्रीय दृष्टि से इनकी कविता में रति विस्मय शोक और शम—इन्हीं स्थायी भावों की प्रधानता है। इसी प्रकार साहित्यिक भावों के बीच रोमांच काव्य वैचर्य्य और अथु तथा व्यभिचारियों के बीच म्लानि निरा स्वप्न उगमाय भय मोह अपमत्ता स्मृति वितर्क आदेव विपाव निर्वेद चिन्ता शंका श्रास गर्भ और वीर्य का इनकी रचनाओं में पुष्कल विनियोग मिलता है। इनके भाव दो हैं—रति और करुणा। किन्तु, इन्हीं दो भावों को रस भूमि पर लयकारी स्वरूप देन से कवयित्री को काव्य का 'सर्वोत्तम' सुमम हो गया है।

यह कहा जा सकता है कि महादेवी में मीरा जववा आलवार भक्तिम जन्दात की सर्वरामता प्रपति—आत्मसमर्पण—नहीं है। इनके पास एक भूठा अभिमान सर्वत्र नील की बीवार बना रहता है। इस कारण इनकी रचनाओं में मान-गुप्तता आसावग्य और समुच्छंठा का अभाव मिलता है। फलस्वरुप बिरह की बिरहा नबी को य कभी पार नहीं कर पाती हैं। और, ऐसा मासित होता है कि इन्हें प्रिय की 'भावना' भसे ही स्वीक्य हो किन्तु जनका आनुगत्य नहीं। इसलिये माधुर्य भाव को तरजीह देनेवासे विचारक यहाँ तक कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में प्रेम स्नेह नहीं बन सका है क्योंकि स्नेह तो प्रेम का परिणत रूप है। सम्भवतः मान और अभिमान की अभिक्रता के कारण इनका मनोव्यव विपन्न नहीं सका है। इसलिये इनका प्रेम न बृत्-स्नेह बन सका है और न मनु स्नेह। फलस्वरुप इनकी रचनाओं में प्रपन्नता का अभाव है। इनमें न दृष्टा प्रपन्नता है और न आत प्रपन्नता है।

यह पारणा आवश्यकता से अधिक कठोर है। वास्तविकता यह है कि महादेवी का मान—जवात एवं ललित—विभ्रम की अवस्था में प्रणय बन जाता है। इसके पन्ते प्रेमास्पद के साथ अश्रेय की भावना आपत हो जाती है—

माकुलता ही आज हो गई लगभग राधा

बिरह बना माराप्य ईत क्या कैती बाबा।

महादेवी भी मूलतः अष्टम मिसन की आकांक्षिणी है। यह दूसरी बात है कि इन्हें युगमिसन महासब प्राप्त न हुआ हो। इस धारणा की पुष्टि इस बात से होती है कि इनकी कविता में भक्ति का उन्मत्तता का तब यत्र-तत्र मिसता है। उदाहरण के लिए निम्नांकित कविता में—

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस मसीम का गुम्बर मग्निर मेरा सघुत्तम जीवन रे।

मेरी आँसुं करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

पर-पर को घोलने उमड़े माने सोचन से अत-कम रे।

अजल पुष्कित रोम मन्वर तेरी पीड़ा का चम्बल रे।

स्नेह भरा जसता है भिन्नमिन मेरा यह होपक-मन रे।

मेरे दुःख के तारक में जब उत्पल का उन्मीलन रे।

बुप बने उड़ते रहते ह, प्रतिपल मेरे स्पर्शन रे।

प्रिय-प्रिय जपते अन्धर ताल देता पलकों का नर्तन रे।

उस प्रेमा भक्ति का लोकेत मिसता है जो रागानुया भक्ति की प्रथम अवस्था है। यहाँ प्रेमा भक्ति को ही मये सांभ में आसकर उसका सभी उपकरणों—अर्चन अभिनन्दन कीर्तन धूप शीप नैवेद्य अक्षत और अर्घ्य—का अधिकरण आराधिका अथवा साधिका के मरीच को ही बतसाया गया है। अतः यहाँ बिधि भक्ति के बाह्य उपकरणों का भले ही वर्जन हो किन्तु इन्मा का भाव तो व्यक्त हो ही जाता है।

माधुर्य भाव की दृष्टि से यह भी विचारणीय है कि महादेवी को मिसन से अधिक बिरह ही प्रिय है। इसका कारण जोड़ते हुए हस्के डव से यह कहकर सम्याप किया जा सकता है कि जब मिसन 'अट्टा थंनूर बन जाम तब बिरह का काम्य बन जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु यहूदाई में जाने पर स्थिति कुछ भिन्न मानूम पड़ती है। कारण महादेवी की बिरह-साधना शक्ति सम्प्रदाय की लज्ज-साधना से भिन्नी भ्रुमती मानूम पड़ती है। शक्ति सम्प्रदाय में भगन एक प्रकार की भाव-भाधना है। उक्त सम्प्रदाय में भगन का स्वरूप कुछ इस प्रकार है—आराध्य के नाम त्रप जप ध्यान और गुण-स्मरण से 'भाव की उत्पत्ति होती है। इसका प्राथमिक उद्देश बिरह के रूप में ही होता है। इस बिरह-बाह में ही प्रिय के मिसन की लज्जावनाएँ मन्निहित रहती हैं। और बिरह की यह बुकूपाभि तब तक उपममित नहीं होती जब तक प्रनयी आराध्य का साशास्वार नहीं होता। इस तरह लयन एक प्रकार की उन्मत्तगुण बिरहानुभूति है जिसे हम अनुराग की पुनदना कह सकते हैं। इस लयन की परिधि 'प्रीति' में होती है। प्रीति लयन की निरुदना है और इन्ही प्रीति की दृढता से लज्जाभाव का जयन होता है। निरचय ही महादेवी में भगन का यह जमिन बिजाम नहीं मिलता किन्तु लयन की बिदमानता निरिचत है। इस लिए भगन की बिबन्धित अवस्था 'प्रीति' की बिठनी भी स्थितियों है—जैसे प्रथम प्रथम भागविन लयन साग अनुराग नेह और प्रीति—उनमें न अपिबाध महादेवी की रचनाओं के बिदमान है। लयन की भाधना हम पंक्तिओं में इष्टव्य है—

तो रहा है बिज बर प्रिय तारकों में जायता है।

अपवा

सदि से हूँ अमर मुहाग भरी
प्रिय के अनन्त अनुरागभरी ।

अपवा

क्यों वह प्रिय आता पार नहीं ?

स्वप्न बिस प्रणिपन्न भेत रही
क्या युग-युग से मनुहार नहीं ?

अपवा

कुत्वाता संकेत भरा नम
अमि क्या प्रिय आनेवाले हूँ ?

अपवा

तुम्हें बाँध पाती सपन में
तो फिर जीवन-व्यास बन्ध
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।

महादेवी की रचनाओं में बिम्बोक के असाध एक अत्यंत लक्ष्मण और फिरी
'समिया से मिलने की लालसाभरी समक के कारण मोट्टायित की अवस्थाएँ भी प्रचुर
हैं। मोट्टायित की ब्या से कवयित्री की 'इच्छा' का स्पष्ट उन्मेष मिलता है। जैसे—

ठहरो केतुब पीड़ा की
मेरी न कहीं हूँ लेना ।
जब तक वे मा न कपारें
बस सीती रहने देना ।

अपवा

प्रतीक्षा में मतवाले नयन
उड़ें जब तीरभ के साम
हृदय हीया तीरब आह्वान
मिलोवे तब क्या है अज्ञात ।

अपवा

तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो फिर जीवन-व्यास बन्ध
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।

अपवा

कल्पामय को माता है
तम के परबों में आना
है नम की दीपावलिओं ।
तम पल-भर की बन्ध आना ।

इस प्रकार महादेवी की कविताओं में त्रिकल्पित विद्याक और नाट्यवित की प्रधानता है। 'साम्यगीत' में बिम्बोदकी भाषा अधिकतम है। साम्यगत मान्य वा उपाहरण मही के बराबर मिलता है। भादन की कमी वा कारण मिसन के धिन्नो अबवा मिसन की अनुभूतियों का अभाव है तथा विम्बोदकी अधिकता का कारण कवयित्री के हृदय में अपनी ससीमता सुबुठा निबल एब बरना का अमिमान है।

सयोग के नाम पर महादेवी की रचनाओं में बेचन स्वप्न-सयोग मिलाता है।

श्रीस—

अम्बु मेरे मौयने जब नींद में बहु पास आया ।

स्वप्न-सा हूँस पास आया ।

हो गया बिब की हूँसी से शूय्य में सुखाप संकित

रदिभ-रोमों में हुआ निस्पम्ब तम भी तिहर पुककित,

अनुतरण करता अमा फा चौबनी का हास आया ।

नींद में बहु पास आया ।

अंक में तब मास को लेने अमल बिकास आया ।

नींद में बहु पास आया ।

यही हमें स्वप्न-सयोग में ही प्रिया मियतम के बिद्-बिजास और परात्पर मिसन की मारी मिसती है। स्वप्न-सयोग क एमे अनेक उपाहरण महादेवी के काव्य में सुलभ है। किन्तु इन उदाहरणों में एकरमता वा एरस्वरता नहीं है कारण इनका स्वप्न-सयोग नहीं मात्रमभूमक है कही प्रम-बीचिष्यभूमक और कही बिपम्भभूमक।

स्वप्न-सयोग की अधिकता से ही यह स्थापना समबिन होती है कि महादेवी के काव्य में मूमठ कृठित और अबबमिन बासमात्रों की उरयेपपूर्ण अमिष्यकित है। हिन्ने के एकरापिक विशान् यामोचकों की ऐमी ही कारण है।

निरपय ही महादेवी की कविताओं में सपनों की अधिपता है। जब कभी इसका प्रिय मनुहार मे इबिन हाता है बहु सपनों में आ पाता है—

बिछाती थी सपनों के जाल

सुम्हारी बट कल्पना की कोर ।

अत 'नीहा' में 'दीपतिगा' तक स्वप्न-मिसन वा स्वप्न-अरेत वा मरमार है। बेचन 'रदिभ' बुद्ध अंगों में इवना अपरा है। इसी कारण पावड के स्वप्न-मिदासों के आगा पर बट कहा वा मरना है कि महादेवी ने प्राय-यवन को अबतम की अयेना बट्ट अधिपक बनवान बना मिया है। इनमिप इतमे रदिभ कामना की कुंगर अधिपक है। प्राय-यवन के मरम अधिपक वा कारण इतके मयने भी अधिक एम्भेगी इत मल है। क जाप्यामिक मवेमों वा बनटाए पत्रकए उरिप्य होने है। पाय वा कल्पना है कि प्राय-यवन क भवम कामनाए कदम रदिभ हा मरी मारी बरि के कामनाए उर मरम क अधिपक

हार्ती है। तब भी उन्हें प्राक-वचन व अभीष्ट का भयबना रहता है। इसलिए वे बातनाएँ सपनों में भी मुझभिषेय नहीं रहती बल्कि अचेतन में निवसने समय वे अभीष्ट का भय से छद्मवेश धारण कर लेती हैं। यही कारण है कि सपनों की व्याख्या मजबूत नहीं होती। अतः महादेवी के सपने भी गूमी पुस्तक के पन्ने नहीं हैं। उन्हें समझने के लिए मानसिक व्यायाम और वारसर्गों मूक की आवश्यकता है।

महादेवी की बिरहजन्य व्यथा कल्याणजन्य वेदना के सम्बन्ध में मुख्यतः इनती बातें नहीं जा सकती हैं—

१—बचना महादेवी के काव्य की भाव-मीमा है।

२—वेदनासुभूति की तीव्रता के कारण महादेवी की कविताओं में उम प्राध्यात्मिक रचना की प्रचुरता है, जिसमें रोमांटिक ध्वनि और रस्युक्त शोभीता (रोमांटिक पैसाइनी एण्ड मिस्टिक वेन) विद्यमान है।

३—महादेवी के बिरह-भीत वहाँ बचना प्रथम अनुभूति के कारण अत्यन्त विरिष्टात्मक हो सके हैं वहाँ इनकी वार्धनिक भावनाएँ अनमृत विचार-मय नहीं बन पायी हैं।

४—किन्तु, इतना स्वीकार करना पड़ता है कि उनका वेदना-सम्बन्धित बिरह गीतों में श्रेष्ठ से निमती-जुसती बरणा बबबय है।

५—बिरह ही महादेवी का आराध्य है और कवयित्री स्वयं उस बिरह की मातृ सत्ता है। इसलिए इनकी वेदनासुभूति बेवसी से मरी हुई है—

मातृसत्ता ही आश्रय हो गई लगभग राधा।

बिरह बना आराध्य ईत क्या संती बाधा ?

६—इस तरह बिरह और वेदना की बहुमता के कारण हम महादेवी की रचनाओं में एक प्रकार की 'एनाल्ड-निष्ठा' (कल्ल अँक सानिष्पुड) पाते हैं—

अपने इस सुमेयन की

मैं हूँ रागी मतवाली

प्राणों का भीप जलाकर

करती रहती बीबाली ।

७—और अन्तिम विशेषता यह है कि महादेवी की वेदना कल्पना रंक नहीं है। इनकी वेदनासुभूति में कल्पना का बहू माधुर्य है जिसमें नारी भावनाओं का हृदय साक्ष्य मरा रहता है जैसे—

कीन आया था न जाने

स्वप्न में शृङ्गो जगाने

याद में उन अंगुलियों के

हूँ मुझे पर मुग बिताने ।

स्वप्न में स्वयं-मुक्त बने जामी उन अंगुलियों की याद में जीवित व्यतीत करन की कल्पना बचवा साब कितनी मजबूत है। स्वप्नमुक्त ऐसी याद बड़ी मर्मसुप्त होती है।

महादेवी की वेदना का भी स्मृति से निबिड सम्बन्ध है। इन्होंने स्वयं ही मन को

बेदना का मवपी बनाने का समय पून-स्मृतियों को दिया है—

जस जितबन के दूत मुना
उनके पल में रहस्य को बात,
मेरे निनिमेय पलकों में
सबा गये बया-बया उत्पन्न ।

जीवन है जगमाह तभी से
निधिर्दा प्राणों से छके
सांग रहा है विप्लव बेदना
के मन प्याले पर प्याले ।

यहाँ यह स्मरणीय है कि बेदना महादेवी के काव्य का अर्थ है और कदमा उनका इति। अतः कदमा ही इनके कृष्णबाण का मेकदण्ड है तथा इनकी बेदना का अरथ मय भी ।

चिन्तु महादेवी की यह कदमा छायावादी कवियों के बेदनावाद में बहुत भिन्न नहीं है। इनकी कदमा और उनका बेदनावाद म मूलतः दो अन्तर हैं। एक यह है कि छायावादियों की बेदनानुकृति के पीछे काम करने वाला 'पराजय का भाव' इनकी कदमा में मूल में नहीं है। इनकी कदमा अनुभूति में अधिक अभीत है और दार्शनिक दृष्टियों से अमत्या प्रेरित है। अतः इसमें छायावाद की अनाबिभ वास्तविकता का कुछ जमाव है। दूसरे गहा देवी की कदमा में उन्नयन का अंश अधिक है। कुछ आलोचकों का कहना है कि कवयित्री ने 'अतिरिक्त काम' की अनुकृतियों का करना के माध्यम से प्रतीकारमय प्रथम किया है। इसमिग इनकी कदमा की अमिम्यवित में हम पारम्परिक विम्यों का प्रचुर प्रयोग पाते हैं जबकि अन्य छायावादियों की बेदनामिम्यवित में हम उन अवितावादी विम्यों की प्रथमता पाते हैं जो प्रायः अवितागत अकवेतन से अतकर आते हैं। पारम्परिक विम्यों की तच्छ सामूहिक अकवेतन म नहीं ।

महादेवी के काव्य में कदमा की प्रथमता म मुख्यतः निम्नमिम्यवित कारण है—

- १—छायाबाण की सामान्य बेदनावादी धारा
- २—कदम रम का पारम्परिक-स्वीकृत महत्त्व अथवा कदमा का रम-पद्य
- ३—बीज अमन की म्नाकदमा का प्रभाव
- ४—अछाजन साम्प्रत्य

और ५—वैधानिक रचित का परिवेग ।

इन कारणों म मे प्रथम तीन को हम निचित विस्तार में समझने की बेवटा करेये ।

छायाबाणी काव्य मुकुरतः मबेदनाओं पर निर्भर रहा है और मबेदनाओं पर कापुन जीबन-अजन निम्न देह अमम्लोपपूरुम हुमा करता है। पून मवन्वगीम और मापुक होने के कारण छायावादी कवि पनपी अमदी के हुमा करते हैं। निमम परिवेगमन प्रनि किया और राग-विराग का हुमा अथवा मी उन पर गहक अविता हो जाता है। मापुनता की हर अविता और मारी हरप-मुकम आगु अवनगीमता के विवर में ही छायावादियों

की बेरना का कीर पलता रहा है। अतः सामान्यतः छायावादी काव्य बेरनाबिह्वल हुआ करता है।

दम बेरनावाद के दो प्रमुख पक्ष हैं—दुःख और भाँसू। दुःख बेरना का अनुभूति पक्ष है और भाँसू उसका अज्ञातमक परिणाम। भाँसू भी अन्तर्वेदा-व्यञ्जक होने पर अनुभूति प्रकण्ड हा सनता है। जिसके पास सबेचना है जीवन का कटु-मधु है उसके पास मधुरय ही भाँसू रहेगा। संभवतः इसीलिए रवि बाबू न भिजा है कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसा द्वीप है जो अभ्युत्थनाकत सिग्नु स चतुर्विध बिरा हुआ है। किन्तु, छायावाद के भाँसू अधिकतर अन्तर्वेदा-व्यञ्जक न होकर अज्ञातमक हैं। यही कारण है कि छायावादियों की प्रारम्भ में ही यह आरोप सुनना पड़ा कि उनका भाँसुओं में से निकलने वाले कीर में मिससरीन की सहायता से गाल भिचोने वाले सिने सिठारों के 'मयन-जस से अधिक वास्तविकता नहीं है।

इस प्रसंग में प्रसाद का क्या कहना। उन्होंने तो भाँसू पर एक प्रथम लिखकर छायावादियों के अभ्युत्थों का 'पलकडेन' ही खोस दिया। इसकी य पणितयी द्विवेदी-युग के उपरान्त चलने वाले बेरनावाद के लिए बलव्य का महत्व रखती है—

ओ बनीमूल पीड़ा की
मस्तक में स्मृति-सी छापी
बुद्धि में भाँसू बनकर
बहु आन भरसने आई।^१

इसका प्रभाव महादेवी पर भी पड़ा। फलस्वरूप ये मधुचक्र में सिपटे भ्रमर की तरह बेरना करना और भाँसू में जासूस-बुल डूब गई—

जीवन बिरह का बलजात !
बेरना में जन्म कहना में भिजा जावास
अधु चुनता बिबस इसका अधु गिहती रस !
जीवन बिरह का बलजात !
भाँसुओं का कोप उर बुध अधु की टकताल
तरल बलकन से बने बन-सा कपिक मृदु पात !
जीवन बिरह का बलजात !
अधु से मधुचक्र कुटाता जा यहाँ मधुमास
अधु ही की हाक बन जाती कचन बरसात !
जीवन बिरह का बलजात !
काल इसकी दे गया पल-भाँसुओं का हार
पुञ्जता इसकी कथा निबन्ध ही में बात !
जीवन बिरह का बलजात !

मगता है यह काव्य-कण्ड भाँसुओं का चपक हो। इस छोटे-से पीठ में संभवतः

साठ बार 'अभु' अथवा 'आंभु' का व्यवहार हुआ है। फलस्वरूप यह अनुभूति-रसय कविता उर्दू के सापरों की ऊहासकता के पास पहुँचती प्रतीत होती है—

एक दिन रोने को बीठा मैं सपन को याद में
साठ नाके सौ सन्मुख, काक बरिषा बहु बडे।

अथवा

तिरहाने मोर क आहिस्ता बीनो
अभी टुक रोते-रोते तो गया है।

अथवा

रोझंगा आके तेरी गली में पार।
पानी ही पानी होगा हरेक घर के पास।

अथवा

किसी को किसी तरह इज्जत है जग में
मरे अपने रोते से हो आबक है।

किन्तु, इन उदाहरणों का यह आशय नहीं है कि महादेवी और अन्य धार्मिकियों को शीघ्र हिन्दी से अधिक उर्दू के समीप है। हिन्दी साहित्य में भी गसवभु भावकता की उपेक्षा परम्परा रही है। घूर की योगियों के आंभु मूरज की तपिस को मता बनाकर कंचुकी माँही सूखने देत ब—

निमित्त दिन बरसत मीत हमारे।

तथा रहति पावस आतु हम पे जब ते स्वाम तिपारे।

बूग अंजन लागत नहि कबहूँ उर कपोल भये कारे।

कंचुकि नहि सुखत सुनु टजनो उर बिच बहुत पनारे।

केवल कंचुकी माँही सूखती और कपोल-गुमाव काजर-भर से काने हो जाते तो एक बात थी।

आंभुओं का यह माहात्म्य भक्तिकाल और रीतिकाल तक ही सीमित न रहा, बहु दिव्यो-कास के युक्त बगारों को भी सू गया। हरिभीषजी की इतिवृत्तात्मक प्रतिभा और दास-निलय तक सापास नोमित रहन वाली उनही काव्य-कला भी आंभुओं पर चीम गई—

आंभु का आंभु उल्लसता बेवचर थी तड़प करके हमारत रह पया।

क्या गया मोनी किसी का है बिलर वा हुआ वंश रतन कोई नया।

मोय की बूँदें कमल से हं कड़ो, या जगसती सू बह दो बडनियाँ।

या अन्तही योगियाँ बोबी कड़ी पंजनों ह लंजनों की कड़ियाँ॥

आंभु के परबों से आ टनकर बहा मीत मोड़ा भी रहा बिनयें मही।

बूँद जिसकी अंत टनजानी रहे बिसजनों को आहिये पानी बही।

धार्मिकियों का अशु-मोद्द एतना 'अभिमत नहीं है कि उन पर एसी अत्यंत पंक्तिनी का नर-आशय उचित माना जाय—

बज्र असली हो तो रो रो कर इतना आंसू रोज यद्दामे
पानी तिलमें कपड़े धो ले पुत्र बैठकर पूज महादे ।

आंसू जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, उसकी मात्रा मझे ही विवादास्पद हो ।

यूरोपीयों तड़ागस्य परीबाहू प्रतिक्षिया ।

घोके सोभे च हृदय प्रसापेरंभ घायते ॥

महादेवी के अश्रु-गीसे गीत मझे ही अहात्मक हों किन्तु उनके आंसू सर्वथा
बहिष्कृतनीय नहीं हैं । इन आंसुओं ने महादेवी को छायावती वेदना की सन्नाही का पद
देया है । 'नीहार' की 'बरबान धीर्यक कविता इस पद को ग्याम्भ घोपित करती है ।
कामा सब तन साइहो चुनि-चुनि लीयो माछ हो, नैता मठ घाइहो विया-मिसन की
प्राध' में अंबित नेत्रमोह छि भी अयिक मोह बबमिषी ने अपनी असपरी-सी से पुरनम
आँसो के लिए आराध्य के समझ लालसापूर्ण ढंग से निर्देशित किया है—

तरल आंसू की सङ्ग्रमा मूष
इन्हीं से काटी कामी रात
निरासा का सुना निर्मास्य
बढ़ाकर देखा लीका प्रात ।

मसन बल का अल ही परिपान

रखा ना बू हो में संसार

इन्हीं सीले तारों में मुख

साधना सोली भी साकार

भाव आये हो हे कबभेभ ।

इन्हीं जो तुम देने बरबान

गलाकर सारे अंग

बरो धो आँसों का निर्माण ।

सबमुख कबमिषी को आँसों से अत्यन्त मोह है । कारण उसे आंसू प्रिय हैं और
उन आंसुओं का अधिकरण उसकी आँसों ही तो हैं । जठ प्रियतम के बिरह म बाटर
बबर्से बल जाने वाले मयनों को बह बरवान मानती है । 'नीरवा' की उनचासवीं कविता
में उसने बरबान-स्वरूप प्राप्त मयनों को अनेक सुन्दर बिरहोपयो—दुख-मद का अचक
तममय बिरह का बीपक बीबन-सरित का सरसिञ्ज इत्यादि से विनूयित किया है—

असि बरबान मेरे मयन ।

पी उजाळा सिमिर पल में

केंकता रवि पात्र लस में

सब विसासे स्नेह अशु-अशु

को अलकते मयन ।

बदल के बलक यह मयन ।

धू भरण का किरण-बामर

बुद्ध धमे मान-बीप निर्भर

बल रहे भविराम पब में

किन्तु निःशून्य मयन ।

तममम बिच्छु-बीनक मयन ।

पलभते तित बुद्धबुदे रात

घेरते आकर्ष आ हुत

पर न च्छता लेय प्रिय की

स्मित रने यह लवन ।

बीचन-सरित-सरसिज मयन ।

इस प्रकार महादेवी की बेदना और अमु कुछ विरहसमीय हैं अनुभूतिवत् भी केवल कल्पित नहीं । संवेदनीय बेदना का विरहोपम करते हुए उन्होंने स्वयं ही इसके अमु मूर्ति-पत्र पर बस दिया है— बेदना को दूसरे के निःकृत संवेदनीय ब्रह्म के सिंग बनने हृदय की अतस महाराई की अनुभूति आबधयक है और उसे व्यापकता देने के लिए जीवन की एकता का भावना । अत महादेवी को ध्यायानावी बेदना की सम्प्राप्ति का पत्र पत्र अनुचित नहीं है ।

छमावादी वैष्णवावाद के प्रभाव के असावा महादेवी के काम्य में कल्याण की प्रधानता का कारण कल्याण का परम्परा-स्वीकृत महत्त्व और कल्याण रस की मुखात्मकता है । कल्याण रस की मुखात्मकता तो बुद्धात्मा भाटकों के प्रचलन उसके काम्यशास्त्रीय महत्त्व और रक्षण-सिद्धांत से ही प्रमाणित है । सोष्टोक्तिज, युरिपाइकाइज ध्यानि के काम्य म अद्यावधि कल्याण रस का उद्रेक करने वाले बुद्धान्त भाटक कसा-अमत् में रैतांकित महत्त्व रखते हैं । कारण यह है कि कारविक्रम दुर्मों में जीवन का गाम्भीर्य अधिक होने के कारण अद्यमें साहाय्यमूर्ति की भाषा अधिक होती है । इस महातुमूर्ति के हमारी आत्मा का विस्तार होता है और आत्मा का विस्तार ही मुक्त है । अतः कल्याण की अतस महाराई में स्वयं पर अचित्त का सीमापारीण विरहवत् और संकुचितस्वविशुद्ध निमग्नित हो जाना है असावहय उद्यम मत् का परिहार हो जाता है ।

भारतीय और पारश्चात्य साहित्य में कल्याण का परम्परा-स्वीकृत महत्त्व है । महादेवी की कल्याण पर भारतीय साहित्य की परम्परा-स्वीकृत कल्याण का पुष्कल प्रभाव है । कल्याण के उन्मेषों में ही यह निश्चय होता है कि इनकी कल्याण पर पारश्चात्य साहित्य का कोई प्रभाव नहीं है और न इन्हीं कल्याण का सम्बन्ध उन पारश्चात्य अथवा विद्याशास्त्रों से है, जिनके शासन की इतपति से भारत और भारत के बाहर भी बीजबीं पत्राणी के प्रथम कल्याण में एक मन्त्र धिदित्त की धर कर बुद्ध-स्नान कर दिया था । इसे निश्चय करने के लिए महादेवी का एक ही सम्बा अद्यत्त पर्याप्त होगा । वैदिककाल में लेकर ध्यायान वाद तक के कल्याण की विरति गावित्त करते हुए दुर्मोति विद्या है—“कल्याण हवादे जीवन और काम्य से बहुत पहला महत्त्व रखती है । वैदिककाल ही में एक अत

आनन्द-उत्साह की उपासना होती थी और दूसरी ओर इस प्रकृति के विरुद्ध एक कठम भाव भी विकसित पा रहा था। एक ओर यत्न-अम्बन्धी पशु-वृत्ति प्रचलित थी और दूसरी ओर मा हिस्मात् सर्वभूतानि का प्रचार हो रहा था। इस प्रकृति में आये विकास पाकर जैन-धर्म के मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट बना दी। कुछ भाग स्थापित संसार का सबसे बड़ा कठम का धर्म भी इसी प्रकृति का परिष्कृत फल कहा जाएगा।

‘काम्य मे भो करुणा का महत्त्व दिया। हमारे दो महान् काम्यों में से एक को करुण भाव में ही प्रेरणा मिली है और दूसरा अपन संघर्ष के अन्त में करुण भाव ही में जन्म परिणत पा भेता है। संस्कृत के उदात्त काम्यों में भी कवि अपने इस संसार को नहीं छोड़ता। सबभूति तो करुणा व अतिरिक्त कोई रस ही नहीं मानता और बालिदास के काम्यों में करुणा बखोबी-सुखास के समान मिली हुई है। अभिषेक के दुःख अन्त में समाप्त होनेवाला ‘रघुबंध’ जीवन के सब उत्साह उमरों की रात्र पर दुःखस्त संसाधन करने वाली शकुन्तला यदि करुण भाव न जगा सके तो भावधर्म है। इस करुण भाव का भी कारण है। जहाँ भी चिन्तन-प्रवासी इतनी विकसित और जीवन की एकता का भावन इतना सामान्य होगा, वहाँ इस प्रकार का करुण भाव जनायात और स्वाभाविक स्थिति पा भेता है। आरम्भक ‘सकमुत्पे’ की धारणा जब जीवन पर व्यापक प्रभाव डाल चुकी तब उठना बाह्य अन्तर पम-पग पर एक अद्यस्तोप को जन्म देता रहेगा। पद्म तत्व की व्यापकता और इष्ट की पूर्णता के साथ अपनी सीमा और मरुगता की अनुभूति ही निर्गुण सगुणवादियों के विरुद्ध की तीव्रता का कारण है। यह प्रकृति भी मूलतः करुणा से सम्बन्ध रखती है। करुणा का रंग ऐसा है जो जीवन की बाह्य रेखाओं को एक कोमल बीजित से देता है। सम्भवतः इसी कारण भौतिक काम्य भी विप्रलम्भ शृंगार को बहुत महत्त्व और विस्तार देने रहे हैं। जब यह करुण भावना व्यक्तिगत सुख-दुःख के साथ मिल जाती है तब उन दोनों के बीच में विभाजन के लिए बहुत मूल्य देता रहती है। मारुत-मु-मुग में भी हम एक व्यापक करुणा की छाया के नीचे संसारी की दुर्बला के पित्र बनते-बिचड़ते देखते हैं। पौराणिक धर्मों की खोज करुण-भावना की सामान्यता लिए होती है और देव समरक भावि का यथार्थ चित्रण व्यक्तिगत विषाद का विस्तार देता है। बड़ी बोली के कवि संस्कृत काम्य-साहित्य के और अधिक निष्कट पहुँच जाते हैं। प्रिय प्रवास की राधा और ‘साकेत’ की रमिता का नये बातावरण में पुनर्जन्म जड़ी सनातन करुणा की प्रस्था है और राष्ट्रगीता और सामाजिक चिन्तन में व्यक्तिगत विषाद को समष्टिगत अभिव्यक्ति मिली है। छायायुग का काम्य स्वानुभूतिमयी रचनाओं पर आधारित है यत्न व्यापक करुण भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है। भीत में पाया हुआ परमा दुःख भी अपना हो जाता है और अपना सतका इसी से व्यक्तिगत हार से उदात्त ब्यथा एक सनत्तिगत करुण भाव में एकरस बन पड़ती है।

‘इस व्यक्ति-प्रधान युग में व्यक्तिगत सुख-दुःख अपनी अभिव्यक्ति से लिए आकुल से यत्न छायायुग का काम्य स्वानुभूति प्रधान होने के कारण व्यक्तिगत उदात्त-विषाद की अभिव्यक्ति का अल्प मात्रा बन सका। समष्टिगत जीवन की बाह्य विकृति और आन्तरिक विषमता की अनुभूति से उत्पन्न करुण भाव जो रूप पा सकता था वह भी नायक

न मिला कोई स्थिति नहीं रहता था। बदनामके काव्यों में जो प्रकृति कवि की मूलम
 पुष्टि और उसके हृदय की संवेदनशीलता को व्यक्त करती वह म्नातुष्टिमयी रचनाओं
 में सहसा वैयक्तिक विषय बमबदर उपस्थित हो सकी। यत इस विषय के विस्तार में
 दूसरे केवल उसी का हाहाकार और उम प्ररणा देने वाली मानसिक स्थिति जोड़-जाड़कर
 पकने लगे। 'कर्म भाव के प्रति कवियों का झुकाव भारतीय संस्कार के कारण
 है पर उसे जोर अधिक बल सामयिक परिस्थितियों से मिला गया। (छायावादी
 काव्य में व्यक्त) इस विषय में व्यक्तिगत वृत्तों का प्रकटीकरण में हो कर उस घोरवन
 बदना की ओर संकेत है जो जीवन का सब ओर से खण कर एक स्थिर अव्यवस्था
 देती है।

व्यापक बेतना से व्यष्टिमय बेतना की एकता के भाव में पुरानी रहस्य प्रकृति
 को नया रूप दिया। यम और समाज के क्षेत्र में बिबि विधान इतन जन्म हो चुक था कि
 जीवन उनमें बिरक्त होत था। अपने व्यक्तिगत जीवन और सामयिक प्रभाव के कारण
 कवि के लिए रहस्य सम्बन्धी सामना-पत्रों को बदलाना संभव नहीं था पर सामंजस्य
 की भावना और जीवगत सूर्यता की अनुसूति ने उनके काव्य पर करण का रोम
 भर उरित नुन दिया जिसकी छाया में कुछ ही नहीं मृग के भी सब रंग बनते-मिटते रह

राष्ट्र की विषम परिस्थितियों ने भी छायावादी की करण में एक उल्लसपूर्ण
 स्थिति पाई। रस परत उत्पन्न तादात्म्य के लिए विरक्त भावना का पन्दन व्यापक
 है बने ही राष्ट्रव्य की मुक्ति में अपनी मूर्तिन चाहते वाली राष्ट्रवादी का विद्या में
 बिलुप्त है 'छायावाद बदना की छाया में जीवन के माध्यम से व्यक्त होत बात
 यावत्सक सर्ववाद ही रहा है और उसी रूप में उसकी अवधारणा है।^१ इस प्रकार महा
 देवी की कथा पर भारतीय साहित्य की परम्परा-संवेदन बनना का प्रभाव संभव्य था
 है।

पर न अब तक कथा का एक अस्तित्व था चुकी है

महादेवी के काव्य में कथा की प्रकृता का एक कारण व्यक्तिगत कवि और
 परिधि के साथ उनका असफल सापेक्ष भी है। परिधि की प्रतिध्वनियों और आवेदन के
 प्रभावों से महादेवी के कथ साहित्य में अधिक अभिव्यक्ति पाई है तथा असफल सापेक्ष
 की अनुसूतियों एक सुगतो ने उनके काव्य में। असफल सापेक्ष ने उनका व्यक्तिगत जोर
 अन्त-बेतना को था विप्रसन्न का अधिकरण बना दिया है जिस कवियों ने कौटिल्य
 आचार्य ने अपि सन्निवारण और प्रकृति नहीं होत दिया है। किन्तु यह एक निर्विवाद
 माम है कि व्यक्तिगत जीवन की स्थितियों और परिस्थितियों का कवि की कृतियों पर
 निश्चिन्तनेय पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। महादेवी ने भी 'मे सत्य स्वीकार किया है—
 "देव जान की सीमा में आरत जीवन में बदना अर्थात् होता है कि अरत परिधि जो
 परिधियों में उमगा कोई संभव न ही और न पड़ संभव इतना तत्त्व होता है कि उम
 आचार्यों के बिना न रहे।"^२ पुन कवि टाहुर के संस्करण में कथावाच के व्यक्तिगत

१ महादेवी का बिबेचनाम्बर पद्य पृ० ६५ १००।

२ पद्य के साथी : दो पाठ पृ० १।

जीवन और उसकी कृति के सम्बन्धों पर अपनी धारणा व्यक्त करते हुए इन्होंने लिखा है—महान् साहित्यकार अपनी कृति में इस प्रकार व्याप्त रहता है कि उसे कति से पुष्कल व्यक्त करना और उसके व्यक्तिगत जीवन की सब रीयाएँ छोड़ देना कष्टसाध्य ही होता है। एक को सोचने में दूसरा लुप्त जाता है और दूसरे को मापने में पहला लप जाता है। जैसे ही जैसे घट के अन्न का माप-सोम घट के साथ है और उसे बाहर निकाल लेने पर घट का अस्तित्व-अनस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं पड़ता।”^१ महादेवी ने इस रूप में एक स्पष्ट धारणा को कुछ अस्पष्ट और रहस्यमय अवश्य बना दिया है किन्तु यह रहस्यमय अस्पष्टता इस धारणा से उनके साक्षात् परिचय को प्रभावित करने में कोई भ्रम पैदा नहीं कर सकी है। इनके यद्यपि कविता की भावधारा में जो महान् अन्तर है उसका सर्वोपरि कारण यह है कि यद्य-अज्ञान के क्षणों में बौद्धिक सञ्चालन की बन्धु से कवयित्री अपने व्यक्तिगत ही अभावमूलक सञ्चालन को छिपाने में समर्थ हो गई है। किन्तु कविता रचने के समयमुक्त साधारणक क्षणों की अन्तर्धानतापूर्वक अहिंसित रचना में बौद्धिक आवरण के बीच छिपी हुई उनकी अज्ञानताएँ एवं बुद्धिपूर्ण राग के अन्तर्भावों से स्पष्ट रूप से स्पष्ट अपने अस्तित्व का संकेत देने से लक्ष्मी हैं।

महादेवी की कठना और बुद्धवाद पर बौद्ध धर्म की कठना और बुद्धवाद का पुष्कल प्रभाव है। बौद्ध धर्म के कर्मवत्त का मूल और बोधि-प्राप्ति की उत्तरदायिता कठना ही है। यह बोधि वित्त का अनिवार्य पुत्र है। बोधिसत्व की प्राप्ति के बाद बुद्ध-हृदय में कठना का संचार होता है। इस प्रकार बौद्ध-धर्म कठना को एक प्रकार का धीम-विकास मानता है।

महादेवी ने बौद्ध-धर्म की इस बहु-विचारित कठना के सामान्य स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'बुद्ध होने का प्रयत्न करनेवाला बोधिसत्व है और बोधिसत्व के लिए दो गुण आवश्यक होते हैं—महामैत्री और महाकरुणा। महामैत्री छठे अर्थ प्राणिमा के पास के लिए अपना सर्वस्व त्यागने की क्षमता देती है और महाकरुणा के कारण वह सबको दुःख से विमुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है।'^२

बौद्ध-धर्म की कठना के इस सर्वभूतहित भाव ने महादेवी को बहुत प्रभावित किया है। 'रहस्यवाद धीपक निवृत्त से इन्होंने महामैत्री और महाकरुणा के प्रसार एवं महत्त्व को दिखाते हुए लिखा है 'सर्वभूतहित और 'मा हित्यम्' की भावना बुद्ध-मत की महामैत्री और महाकरुणा में इतना विस्तार पा गई कि वह अरम विकास तक पहुँचाने वाला साधन ही नहीं उसका सञ्चालन भी बन गई। अरम मतों में कठना परम तत्त्व के साधारण्य का माध्यम भाव है पर बुद्ध की विचारधारा में वह परम तत्त्व का स्थान ही से सेटी है। कठना किसी परम तत्त्व से साधारण्य के लिए स्थिति नहीं रखती बल्कि वह बोधिसत्व की स्थिति का अभाव का साधन और उसका अरम विकास का परिचय है। उसके प्रति महामैत्री और महाकरुणा से बुद्ध होकर ही बोधिसत्व बुद्ध होता है और

१ पद्य के लक्ष्मी पृ. ४।

२ कठना पृ. १२।

निर्वाच तक पहुँचाता है।^१ अतः कल्या में छिपे सर्व-कल्याण के कारण ही महादेवी का कथन है कि 'बुद्ध का मनुष्य समष्टि का मनुष्य है और उसका निर्वाण सबकी बुद्ध-मुक्ति में अपनी दुःख-मुक्ति है।' 'साम्बगीत' में इन्होंने लिखा है—

आज कल्या-स्नात जजला
दुःख हो मेरा पुजारी ।

पुन 'यामा' के 'साम्बगीत' नामे कण्ठ में ही कवयित्री ने जो 'सुदु महान' धीपक विन बगामा है उसमें भी मृगाल-विष और हस्त-मुद्रा से कल्या की वेश्या का प्रत्यक्षण है। उस विष की पीठ पर ये पंक्तियाँ अंकित हैं—

मेरे जीवन का आज मूक
तेरी छाया से हूँ मिथ्या
तन तेरी साधकता छू ले
मन लेकल्या की बाहूँ ताप ।

इसी प्रकार कवयित्री ने 'बीपटिका' की विषमय कविता में अपने दो कल्या का बाहूँ पोषित किया है—

मैं यति बिह्वल
पाबंघ रहे तेरा दुःख-जल
आवास मिले भू का अंधल
मैं कल्या की बाहूँक अधिनल ।

• इत पंक्तियों से संरिप्त विष में भी कवयित्री ने कल्या का मार बहन करने वाली मुद्रा प्रस्तुत की है। 'बीपटिका' के अनेक स्वर्णों में कल्या के प्रति मानसा भरी लसक मिलती है। जैसे—

तारों से लारे जो विवाह से इयाजल,
अपनी विषमल में छान इन्हूँ कर लयुजल
किर इनसे शककर एक घटा कल्या की
कीई यह अमला इजोम आज छा मला ।

अथवा

विष लीगे तुमने वे जाला
कल्या का पारावार मुझे ।
किर मुप-मुल के दो बार मुझे ।

अथवा

देने हो तुम केर हास मेरा मित्र कल्या अनकलमप कर
लौटाते हो अथ मुने तुम अपनी तिमन के रंगों से भर ।

अथवा

नम अपरिमित में भले हो पथ का रापी सजेरा
 प्रीत का पर भात है यह तुल-दर्शों का लयुं बसेरा ।
 तुल उड़ो ले मूलि का
 कल्पना-सबस बरदान ।

इसी प्रकार 'रदिम' से कवयित्री ने करुणा को ही जीवन का सच्चा मम
 ना है—

रसत रसिमयों की छाया में भूमि घन-सा छा जाता
 इस निरास से मानस में कल्पना का ज्योत बहा जाता
 जलमें मर्म छिपा जीवन का
 एकतार भयभित कम्पन का
 एक सुत्र सबके बन्धन का
 संसृति के झूमे पृष्ठों में कल्प काव्य बहु सिद्ध जाता ।

करुणा की तरह महादेवी का दुःखवाद भी बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद से प्रभावित
 है। यह दुःखवाद बुद्ध के धर्मचक्र-प्रवर्तन का मूलाधार है। इससे अनुसार सारा सृष्टि
 संघ ही दुःख है। यह दुःख राग या लुब्धा से पैदा होता है।

बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद का प्रभाव महादेवी पर है। लेकिन संघत। महादेवी की
 कलाओं में इस दुःखवादी दृष्टिकोण के अभासवाद का कोई प्रभाव नहीं मिलता है
 भक्ति इन्हें आत्मवाद प्रिय है। दूसरी बात यह है कि इस दुःखवाद के निर्वाण सिद्धान्त से
 महादेवी ने कोई सीधा प्रभाव नहीं ग्रहण किया है। महादेवी की विचारधारा पर केवल
 बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद और उद्दण्ड महाकल्पना का प्रभाव है। इस प्रकार यह प्रभाव पूर्ण
 ही अधिक सिद्ध होता है।

महादेवी की रचनाओं में बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद का यह आधिक प्रभाव विविध
 रूपों में व्यक्त हुआ है। इस दुःखपूर्ण जगत एवं जीवन की अशुभता ने कवयित्री के संवेदन
 शील हृदय को अत्यन्त बेरुमा और करुणा से परिप्लावित कर दिया है। किन्तु, संवेदन
 शीलता की अधिकता के कारण ये दुःख के प्रति श्रुत-दृष्टि अर्बित नहीं कर सकी हैं। दुःख
 उनके समक्ष कभी आराध्य के समान का सुन्दर पावन बनकर जाता है और कभी दुःख
 ही इनका आराध्य बन जाता है। कुछ गीतों में इनका दुःखवाद आध्यात्मिक दृष्टि से इतना
 आमान्य हो जाता है कि ये सुख दुःख के समन्वय-सिद्धान्त में विरवास करने लगती हैं।
 उदाहरण के लिए—

सब जीवों के जासू चकले सबके सपनों में रास्य पथा ।
 जिसने उलफो ज्वाला सीपी
 जलने इसमें मकरन्द भरा,
 आलोक लुटाता वह पुल-मुल
 बैठा फिर यह सीरज बिजरा

दोनों संगी एक एक, किन्तु कब भीप जिला कब कूस जाता ?

इन पंक्तियों में कवयित्री ने सुख-दुःख को एक ही आगम सत्य के दो पक्षधरों के

रूप में स्वीकार किया है। इसमिय दुःख इनके समस्त पशुओं को मड़काने वाला काष्ठ-क्रीणिक बनकर नहीं आ पाता। यह इनके सिप प्रमथन बाता है और उस दुःख का एकाग्र पद इन्हें मृग की भीरभरकम बामी 'रात्रदगर' से अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होन सगदी है—

पंच होने से अर्परचित्त प्राण पढ़ने से शकता ।

बुद्धवती निर्माण जम्बर
 यह अमरता मापते पर
 बाध होने अक-ससुति-से तिमिर में स्वर्ग बैसा ।
 ब्रह्मरी होमी कहुानी
 गूम्ह में जितक मिटे स्वर, धूमि में लोभी निशानी
 आज जिन पर प्रलय बिस्मिद
 मैं लगाती जम रही नित
 मोतियों की हाट भी चिगमारियों का एक सेता ।

इस प्रकार कथपित्री में धन्य के प्रति इतनी आशंकित बड़ जाती है कि ये आराध्य को ही दुःख का प्रतिरूप मान लेती है—

तुम बुद्ध बन इस पत्र से जाना ।
 शूलों में निम पुरु काटक-का
 कितने बैसा मेरा जोवन
 क्या हार बनेगा यह जितने
 सीखा न हृदय की विषवाता ।

दम महन और उरकठ दुःखनाप के कारण कथपित्री में ऐसी अग्रन्त करणा समाहित हो जाती है कि यह अपने जीवन की इजाजत किसी दुनिया के दुःख पर दो बूँद आँसू बहा देने में ही मान लेती है—

प्रिय जितने बुद्ध पाता हो
 जित प्राणों से सिपटी हो पीड़ा मुरमित कम्बल-धी
 लुफाणों को छाया हो जितको प्रिय-आशिमन ती
 जितको जोवन की हारें हों जय व अमितम्बन ती
 बर हो, मेरा यह आँसू
 उसके उर का माता हो ।

कनस्वहा दुःख महादेवी को बहुत प्रिय है क्योंकि इनके लिए दुःख जीवन का सबसे कुलर काम्य है। 'ऐसा काम्य है जो छारे ममार का एक मूक में बाध रखन की शमना रखना है। हमारे अस्वय मृग हमें चाहे अनुप्यता की पहली सीढ़ी तन भी न पशुबा मों जिम्मे हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन का अधिक मधुर अधिक उबर बनाय बिना नहीं गिर सकता।'

बुलबाद से सम्बन्धित महादेवी की कविताओं में 'नीरमरी हुग की बरनी' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी अग्रिम पंक्तियाँ और भी मानिक हैं—

बिस्तृत नम का कोई कोना

मेरा न कभी अपना होना

परिचय इतना, इतिहास यही

जमड़ी बल की मित्र आज बनी !

सतही डंग से इन पंक्तियों में जीवन एवं अगत से पराजित किसी कारणवारे की निष्ठा आस्थाहीनता भ्रमजती है। मजता है जीवन की वस्तुनिष्ठता का परिचायक कर महादेवी फेंच कबचित्री हीपियस की तरह निराश और ममत्वहीन होकर किसी ऐसी मग-मरोचिका के पीछे दौड़ रही हैं, जिसका अस्तित्व कम से-कम इन अगत में नहीं है। हीपियस ने लिखा है—

आईं बीप बिदाउट बीयस ऑऊ ए बो

बिदाउट पीष

आइ लीड ईट ड्रिफ्ट डब नाउ एबिस्ट इन बिल बस्ट

ड्रिफ्ट डब नाउ एबिस्ट इन बिल बस्ट ।

किन्तु महादेवी की ये पंक्तियाँ इतनी सर्वस्वस्य सिद्ध नहीं होती हैं। इन महादेवी का स्वर भावना से ऊपर दर्शन के स्तर पर अवस्थित है।

एक सापर का भी ऐसा ही उपास है—

बदमजारे मां परीबां नै बिरलीं नै पुके

नै परे परबाना मोअर नै सदाये बसपुके ।

महादेवी की ये पंक्तियाँ दर्शन के चरतल पर हैं। बिस्तृत नम के किसी कोने को अपना बना लेना मोड़ या आसक्ति है। बीड़-दर्शन में जीवन क समग्र वृत्तों का कारण इस आसक्ति को ही माना है। मानव जीवन इन आसक्ति-सम्भूत वृत्तों से मरा हुआ है— अनिश्चितता का सम्पर्क वृत्त है, इच्छित का वियोग वृत्त है और ईप्सित की अनुपलब्धि वृत्त है। आसक्ति बलिष्ठ होकर ऐसी एपणा बन जाती है, जो इस जीवन के बाद भी पत्नीभूत होना चाहती है। फलस्वरूप जीवन को उसकी पूर्ति के नियम विभिन्न दोनियों में भटकना पड़ता है।

महादेवी ने बीड़-दर्शन से केवल 'बुलबाद' को ही नहीं अपनाया है बल्कि बीड़ दर्शन के सर्व लभिक ने इन्हें प्रभावित किया है। समग्र सृष्टि के प्राणी और पदार्थ सत्ता में विश्व प्रकार नवरर सगिफता का कुटिल नीट कर कर गया है—इसका पता कबचित्री को है। सृष्टि की सुपना में सोई-छिरी लभिकता ने इन्हें बार-बार भ्रमभोर है—

न चहुता भीरों का आह्वान

नहीं चहुता कुलों का राज

कोटिना होती अन्तर्धान

बला जाता प्यारा अतुराज

अलम्ब है फिर लम्बेज

म भूलो क्षमभंगुर जीवन ।
 अपवा
 भुमा डालो जीवन की साथ
 मिटा डालो बीते का मेरा
 एक रहने देना यह ध्यान
 क्षणिक है यह मेरा परदेस ।

महादेवी को बौद्ध-धर्मन क असावा बुद्ध के व्यक्तित्व में भी प्रभावित किया है । इनके अनुसार "बुद्ध के व्यक्तित्व में दा विशेषताएँ ऐसी हैं जिसका संयोग सहज नहीं— बटोर बुद्धिवा" और कोमल मानवीय तरब । उनके बुद्धिवाद के सामने तो आधुनिक वैज्ञानिक धर्म का बुद्धिवाणी भी बड़ा भावुक आन पड़ेगा । आज का बुद्धिवादी मध्यम पी उन्धेरा करने भी अपने अहम् की पूजा अर्चना में आधुनिक मन्त्रमन्त्र जाता है । 'बुद्ध की इन बौद्धिकता की प्रणाम करने हुए महादेवी ने करणा का मन्त्र-बाहक' धीरे-धीरे निम्न में लिखा है कि 'अपनी विपुल बौद्धिकता क कम पर ही वे मुझों से मठमठ विचारों का विरोध करने लड़ हुए और तर्क की सहज स्वाभाविकता के कारण ही हर दिशा में उनकी मानाधिकार मात्रा ही मिट गई पर उनकी अनीम धुक् बौद्धिकता में मानवीय सौहार्द की अतिम्यापित मार्गर्ष का कारण बनती रहती है ।' इसीलिए बुद्ध विपुल बौद्धिक और महान मानव हैं । पुन बुद्ध के व्यक्तित्व का मन्त्रांकन करने हुए उन्होंने लिखा है "संसार के धर्म सत्पात्रों की पक्ति में बुद्ध ही ऐसे अकने हैं जिन्होंने मन्व्य क सम्बन्धों में सामञ्जस्य पाने क लिए परमात्मा की मन्व्यस्वता नहीं स्वीकार की मन्व्यता उन्मन् करने के लिए किसी पारलौकिक अस्तित्व का महाराज नहीं किया । जिस निमम बौद्धिकता के साथ वे अपने बचनों को भी तर्क की बनीगी पर कमकर ही स्वीकार करने क लिए कहते हैं उन्नी के माब के जीवन क अन्तिम क्षणों में अपने संस्थापित धर्म क लिए कोई उन्मरापिकायी नश चुनने । उन्म अपने माग्य और प्रिय शिष्य स कह देते हैं—'युव नहीं रहा यह म मन्मन्ता आत्म ! मेर द्वारा जो धर्म-विषय उपनिष् हुमा है प्रकृत हुमा है मेर न रहने पर यही मुन्मराय गुण है ।

उन प्रकार महादेवी का बुद्ध के व्यक्तित्व की विपुल वाकिता और पून मानवता में मावपिक प्रभावित किया है । बुद्ध के व्यक्तित्व और जीवन-धर्मन म मन्त्र प्रभाव पहल करने वाली महादेवी की बकिताओं में 'औरता की यह बकिता अत्यन्त स्पष्ट है—

जाय केमप जाय ।

अध-अध से उर सजाया स्पाम होरक हार,
 भीम रूप की मापने फिर जो पया प्रतिहार
 मूल जिनने कूल हू चरन किया सत्पात्र
 भुन जपानी है उनी गिन्नाय को पर-आव
 करणा के बुतारे जाय ।

शंका में ले नारा मुरती में दिया बरवान
दृष्टि में जीवन अक्षर में सृष्टि के दृष्टिमान
भा रखा भित्तने स्वर्गों में प्यार का संसार
तबजो प्रतिष्ठाति जती की फिर त्रिस्तम्भ के पार
बुद्धादिपिन वाले जाग ।

रात के पक्षीन तम में मधुर जितक वनाम
पंख भरते तापुवर्णों में भी असीम गुवास
कंटकों की सज जिसकी छांतुओं का ताज
सुनय । हस उठ उस प्रफुल्ल गुमाव ही सा भाज
बोती रजनि प्यारे जाग ।

यामा म इस कविता के ऊपर कुछ का चित्र भी दिया हुआ है । बस्तुन ये पंक्तियाँ
शोषिताओं म सर्वोपरि कल्या के बरमोन्दन निरक्षण अयनोक्तिद्वय कुछ को साय कर
मिती गई हैं । महाशक्तिप्रमग काल की निर्मोही शक्तियों के बीतगग कुछ न भी कवियत्री
को अत्यधिक प्रभावित किया है । 'दीपविद्या की ये पंक्तियाँ—

प्यबा प्राण हूँ निरय मुक्त का पता में
घसा इयाक से मोम का बैचता में
सुजन-ववास हो सर्वो निर्गुमास के भन ।

कुछ के तत्त्वामीन अतिरिक्त से प्रभावित होकर ही मिली गई हैं ।^१

यह स्पष्ट है कि महाश्वी के असावा किसी अन्य छायावादी कवि म कुछ का
प्रमान शीतम-वर्षान नहीं बन गया है । अतः शीत शान न दुःखदाय और महाश्वी की
रचनाओं में उगक अन्वय को किञ्चित् विस्तार से समझना आवश्यक है ।

महाश्वी ने बुद्धबाव को यथावत ग्रहण नहीं किया है ।

किन्तु इस भौतिक प्रपञ्चता और आध्यात्मिक बस्तुनिष्ठता म महाश्वी के बुद्धवाद
का कम सम्बन्ध है । वह एक प्रकार की आध्यात्मिक अस्पता और कल्पना की दृष्टिको
जाह्यत है । शीत—

सेतु धूर्तों का बना बाँधा बिरह बारीग का जब
फूल-सी पलकें बनाकर प्यालियाँ बाँटा हुआहल
हु-प्रमय मुझ, मुजमरा कुछ
कौन सैता पुउ जो तुम ब्रह्मक जल का देश हैते ?
अथवा

बिरह का मुय जाब बीजा मिलन के लय पल सरीखा
कुछ मुज में कौन तीला मैं न जानी भी म तीला ।
मधुर मुम्बकी हो गये सय मधुर प्रिय की भावना है ।
अथवा

१ इन पंक्तियों की पृष्ठभूमि में अंकित चित्र भी इसे समर्पित करता है ।

जिसकी विशाल छाया में
जग बामरू-सा सोता है
मेरी आँसों में वह बुलबुल
झाँसू बगकर जोता है।

महादेवी के बुढ़ाव की बूझते बिदेपता मनु है कि इन्होंने दुःख भयना विपाद को भी ज्ञानरूप की तरह स्वामी या मत्-सवृष मान लिया है जब कि बौद्ध दशन बुद्ध को एक प्रकार की ऐसी कर्मजन्म बिकृति मानता है जिसका निराप पापमन उन्मेष है अर्थात् दुःख ग्राह्य है। किन्तु महादेवीजी ने अनुसार आदिम युग से आज तक मनुष्य अपने हृदय और बुद्धि का परिष्कार करता आ रहा है पर इस कर्म के किसी भी क्रियु पर उसकी मानसिक तथा बौद्धिक वृत्ति का तात्पर्य नहीं दूना। किन्तु भी युग में मनुष्य जीवन की धार्मिक-साधु स्वरूप पर अपने अनुभवों की बर्णनामा नहीं आरम्भ करता। मनुष्य ये झंझू हूँनी के कारण मित्त हो सकते हैं परन्तु उनका मूलमन विपाद एक ही रह्ये। इस तरह महादेवी युग अथवा विपाद को भी मानस की तरह विरक्षाधी मानती है।

महादेवी और बौद्ध-दशन के बुढ़ाव या कल्या की पात्रताओं में पर्याप्त अन्तर है। मगपात् बुद्ध के प्रति मस्तिष्कमय अनुराग के कारण उनके दर्शन का प्रकाशस्वरूप प्रभाव महादेवी के साहित्य में अवश्य प्रकट होता है किन्तु यह प्रभाव इतना अनिश्चित और स्थिति-स्वायत्त है कि इसकी मौजिबता मरिष्य नहीं हो पाती है। महादेवी की रहस्य भावना प्रत्यक्षानुसंधान और विरह-व्यत्रमा किसी अन्तर्गतता के विश्वसनीय सागानों पर आसोटन उगुक्त लोच पड़ती है। पुष्ट की महाकल्पना के आधार पर ही महादेवी की कविता या कवि मन्त्र नहीं है। तीसरे निरन्तर की प्रसिद्धिगी भी अपनी 'वय सोमा —

जब मसीम से हो जावेग
मेरी लघु सीमा का मिस
देखोने तुम रूप! अमरणा
खेदेमो मित्ते का रोस।

य भी विरहात् प्राण उरते बाली कवयित्री भारमबा" को छान्द बौद्ध पर्ये के अन्तर्गतानी दशन में जिस प्रकार अपना मार्मिकरूप स्थापित कर जाती है। एक तरह बौद्ध दशन और महादेवी की कल्या अथवा मवाद में साम्यजितना गुण है उमम अतिरिक्त उन्ना धर्म्य हा प्रकृत है। महादेवी की रचनाओं में धार्मिकगुणा के विरहात् म जो कारण देना निश्च जाता है यह प्रभाव ही बौद्ध दशन के बुढ़ाव का प्रभाव माना जा सकती है। अतः निरन्तर में हम यह मान है कि महादेवी के साहित्य में बौद्ध दर्शन का प्रभाव अथवा कल्या का क्या अन्त ही नहीं उन्ना पड़ा है बल्कि यह बुद्ध मूलतः महादेवी के उन्ना भी हो पाते।

महादेवी के साहित्य में धार्मिकगुणा के प्रतीति-दर्शन का बौद्ध दर्शन का प्रभाव निरन्तर का अन्त ही म है। महादेवी की कल्या अथवा मवाद का अन्त ही जोर की

कही इसकी दाममगूरता मीनिक तरल के बाह्य रूप-परिवर्तन मात्र का हेरबामय मीवैश कर देती है ।

भाँधों म रात बिता जब
बिपु नि पीला मुक्त पेंरा
माया फिर बिन्न बनाने
प्राची म प्रात चितेरा ।^१

अथवा

विरक्तते मुरभ्राने को फूल
उदय होता छिपने को चम्ब
शून्य होने को भरते जेप
होप अकता होने को मम्ब
यहाँ कितका अकता यौवन ?
जरे अस्मिन् छोड़े जीवन ।

सस्ते । यह है माया का हेरा
सगिक है मैरा-तेरा सय
यहाँ निरुता कौधों में बन्पु !
सजीला-सा फूलों का रंग
तुम्हें करना बिच्छेव सहम
न मूलो है प्यारे जीवन ।^२

अथवा

सिम्य अथवा जीवन कर क्षार
बीप करता आलोक प्रसार
जलाकर मृत पिण्डों में प्राण
बीज करता सद्यस्य निर्मात्र
सृष्टि का है यह अमित विधान
एक मिटने में सौ बरवान ।

अस्य उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि महादेवी पर बौद्ध धर्म का प्रभाव साम्प्रदायिक एतावत्त्व के साथ नहीं पड़ा है । अपनी अनुभूतिजन्य निष्पत्तियों को पुष्ट बनाने में इन्होंने आध्यात्मिकतानुसार इस प्रभाव का उपयोग किया है । इसलिये जिन प्रश्नों पर बौद्ध-वर्धन मीन है, उनसे सम्बन्धित सन्दर्भों में इनके हिन्दू संस्कार बनामान ही मुद्रर हो गए हैं । उदाहरण के लिए हम अगमास्तर या पुनर्जन्म की बात से सज्जे हैं । इन दो पंक्तियों—

१ आधुनिक कवि पृष्ठ ६ ।

२ आधुनिक कवि पृष्ठ १० ।

रक्षण पर अतकल हो बरसी
 सब जीवन अंकुर बन निकली ।

से कुछ वैसी ही ध्वनि निकलती है जब कि बौद्ध-दलम में अमान्तर या पुनर्जन्म की भाँव प्रचलित अर्थ में स्पष्ट स्वीकृति नहीं है ।

महादेवी के बुद्धभाव के इन विलसृत विदमपन के बाद यह कहने के लिए लाजान होना पड़ता है कि महादेवी मुक्त और दुःख के स्वरूप को स्पष्ट नहीं कर सकी हैं । 'यामा का दार्शनिक भाषाण' शीघ्र निबन्ध में मन्ददुयारे बामपेयीजी ने अत्यन्त मीमिक तिरक्य प्रस्तुत करते हुए उचित ही लिखा है कि "महादेवी ने सुख और दुःख के स्वरूप को अस्पष्ट ही रूप छोड़ा है । उन्होंने दुःख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के भौतिक स्वरूप का सामने रखकर विचार किया है । किन्तु इसके विपरीत मुक्त का एक आध्यात्मिक और दुःख का एक भौतिक स्वरूप भी है जिसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गई । बुद्ध की सामाजिक राजसिक और मारिक सीनों अभिव्यक्तियाँ हूँ सकती हैं उसी प्रकार मुक्त की भी । यह सब-कुछ उस संवित्त पर अवलम्बित है जिससे मुक्त और दुःख का निश्चरण होता है । महात्मा बुद्ध ने दुःख को आध्यात्मिक अर्थ में लिया है उसी प्रकार भाग्यीय दणनों ने 'आत्म्य का आध्यात्मिकरण कर लिया है । इसलिए भौतिक भाषाण पर मुक्त और दुःख का वा व्यतिरेक महादेवी ने दिखाया है उन्हीं में उनकी व्यक्तिगत मारिकता का परिणाम मान मरणा है । उसे वाचनिक सत्य या काष्ण की कसौटी मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ ।

पर्वों और मुससी के फ़ानभुधुष्णि प्रगंग के राम के बिराट रूप तथा बिलपपत्रिका के आत्म-गमपत्र तब भारतीय काव्य का सार्थनिक और आध्यात्मिक मास पु होना गया है। अन्वेष काव्य नहीं तो और क्या है? श्रीरामकृष्ण परमहंस ने धारु-बलाका म ही ता अध्यात्म का पहला सस्पर्श प्राप्त किया था। प्रकृति के भीतर में प्रकृति पर एक पहुँचन की साधना ही तो अध्यात्म है। क्याकि रूप की परिवर्ति अरूप ही है। 'शुद्धी की बनी' से निरात्मा का काव्य आरम्भ होता है तो आरम्भ ही क्या है। भारतीय अध्यात्म पुगक काव्य प्रकृति और मागक जीवन को सम्भवतः आध्यात्मिक चेतना की भूमिका के रूप में उपयोग करता है। इस रहस्य को न समझकर हम महादेवी और निरामा-वैश अध्यात्म निष्ठ और सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न कवियों और कलाकारों के प्रति अश्रमिष्ठ रहते हैं। हम उनके कवि-कर्म पर ही एक बातें हैं या अध्यात्म को उनके काव्य का विषय मात्र मान लेते हैं। दोनों दृष्टिवाँ भ्रामक है। जहाँ अतन्त दर्शन अध्यात्म और काव्य एकरम हो जाते हैं वहाँ क्या काव्य से बड़ी उपसम्पि की कोई कल्पना हमारे मन में आप्त नही होनी? यूरोपीय रोमांटिकों तक जिनकी पहुँच है वे न भारतीय अध्यात्म की प्रकृति को समझते हैं न भारतीय काव्य-परम्परा से ही परिचित हैं। उन्होंने भीरा को महादेवी से समझना चाहा है और महादेवी को भीरा से। वे भीरा की गेयता की अनिवायता को मूलकर महादेवी के काव्य को पाठ्य कहते हैं। उनके लिए हस्तालगो की मुद्रा ही सार्थक है मास के भीतर को अक्षर प्रतिष्ठित है जो अक्षरों पर आकर और अध्यात्म रसिक की चेतना में बुलकर स्वप्न वगता है उसे उसका परिचय ही नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने आध्यात्मिक काव्य को वैयक्तिक जीवन के प्रभावों शैतिक प्रमादों एवं यूरोपीय मनोविश्लेषणात्मक गतों से उबारें और अपनी आदीय तथा भौगोलिक प्रकृति एवं परम्परा के अनुसार अविमानसी बरातन से उसकी व्याख्या करें जिनसे उनके रसास्वादन की प्रकृत्य भूमि उद्घाटित हो। महादेवी के काव्य का सम्यक अध्यायन और आस्वादन हमें अपनी दर्शन अध्यात्म और काव्य की ओट परन्पर से एक बार फिर जोड़ सके तो उसकी सार्थकता में एक नया अध्याय जुड़े।

अंग्रेजी शिक्षित समाज में यूरोपीय प्रभाव में आधुनिक हिन्दू धर्म के तीन रूपों की सृष्टि की जिन्हें उत्तरोत्तर विकास के रूप में भी पहचान किया जा सकता है—बाह्य समाज (१८२८) आर्यसमाज (१८७५) और नव्य वेदान्त (त्रिवेदान्त १८८९ १६ २)। हिन्दी प्रवेश में आर्यसमाज और उसकी प्रतिक्रिया की ही प्रभावता रही है जिसका एक स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'वहीय समाज था। शिक्षित हिन्दू संसानी सन्ध्याधियों के माध्यम से बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही नव्य वेदान्त के प्रभाव में आ गया था और एक प्रकार से आर्यसमाज और नव्य वेदान्ती समाज में बँट गया था। आर्यसमाज का प्रभाव उसकी शैतिक और सुधारवादी चेतना पर था और नव्य वेदान्त समकी आध्यात्मिक और भक्तिवादी प्रकृति को पुष्ट करता था। दोनों में राष्ट्रीयता की टुक थी। हिन्दू चेतना ने बंकिमचन्द्र चटर्जी के समय से ही इच्छा धरित की बुद्धिमूलक व्याख्या वृद्ध कर गी भी और गीता की अनेक व्याख्याओं के द्वारा उसे नये जीवन की कर्मशागा में संपर्कित कर दिया था। एसी स्थिति में पौराणिक राम-कृष्ण के प्रतीकों का चेतना

से दूर हट जाना स्वाभाविक ही था। तात्पर्य यह है कि मध्यवेदा की काव्य चेतना जिस नए माध्यात्मिक समीकरण की आकांक्षी थी वह महादेवी दर्मा के काव्य में प्रतिफलित हुआ। उसकी भूमिका व्यक्तिगत रही हो परन्तु उसमें मध्यवर्गीय मन की समष्टिगत अभिव्यक्ति भी हुई है। मीरा का स्वर महादेवी का स्वर बनकर नारी-आगरण के प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ परन्तु उसमें कवयित्री की अत्यन्त निगूढ़ और निजी व्यथा नये रहस्य की साधना वन गई। श्रुत्येव की श्रुतियों उपनिषदों और बौद्ध ग्रन्थों तथा सूफी फार्यों के मन्गीर अध्ययन-मनन ने उसे नया रूप प्रदान किया। व्यक्तिगत पीड़ा वहाँ पनीभूत होकर निर्बयक्तिक एवं सर्वगत हो जाती है वहाँ महादेवी को व्यथाबोध जागता है। 'नीहार' की जीवन की नश्वरता कठना एवं अनृष्टि की दार्शनिकता उनके काव्य की पृष्ठभूमि बनी परन्तु 'रश्मि से बीपशिखा' तक इस आभारधिसा पर काव्य कल्पना और अध्यात्म-गीति का जो देव-मन्दिन अनेक शिखरों को लेकर ऊपर उठा वह अपनी बारी गरी शिखर-चानुर्य और रूप-बैभव में यद्विनीय था। यदि उसमें कुछ सन्निवृत्त हृदय ने 'रहस्यवाद' पड़ा तो ऐसे भी लोग कम नहीं थे जिन्होंने इन व्यथा में अपनी ही कथा पढ़ी।

निश्चय ही महादेवी के काव्य की अभिव्यक्त्या में माध्यात्मिक भाषा प्रतीका तथा संकेतों का उपयोग हुआ है परन्तु उसमें साधना का स्वर नहीं है क्योंकि उसकी प्रकिया बौद्धिकता से आरम्भ होकर सफ़ल्यारम्भ अनुभूति तक चलती है और उसमें मध्य भूमिक भूमिों सत्ता और मन्तों की भावराशि और साधना का उपयोग व्यक्तिगत प्रम की पीड़ा और अन्तर्द्वन्द्व्य अन्वेषण में हुआ है। माध्यात्मिक काव्य में उठाधियों से जस आते हुए बिम्ब और प्रतीक उनके काव्य की सामिकता बढ़ाकर उसे जातीय उपचेतन क रंग में रंग देते हैं। प्रकृति उनके उस्सास और पीड़ा की अभिव्यक्त्या का सुन्दर साधन है और वह एक प्रकार की माया ही बन गई है। व्यक्ति का जीवन जहाँ समष्टि की वीर बन जाता है वहाँ वह निरान्त मानसी और मारिक होना है। वहाँ व्यक्तिगतता निर्बय क्तिकता में बसा जाती है और साधारणीकरण का प्रम हो नहीं उठता क्योंकि कवि की बात में गडके मन की बात कह दी जाती है। महादेवी की साधना माओं की साधना उगनी नहीं है जितनी नर्द काव्य माया (सड़ी बोली) के द्वारा गई संवेदना की शृष्टि की साधना। उनकी चिन्मन्ती प्रतिमा और तरल गीतरीती में नारी-हृदय की भावकथा नया काव्य समीकरण बनकर आई है। उसकी अभिव्यक्ति की समन्ता सामिकता तथा चित्रापन्ता द्धानीय है। निरन्त ही नारी की ओर ये नहीं आया है उसमें नारी-जैठ की मजीबता और आकृष्यता भी है। जगका स्वर बिनाग का नहीं आरम्भमपण और मारिक उपास का स्वर ही ही गलता था।

गड़ी बानी काव्य के पाप में दृग्-जा पुराता नम में बदलकर आया है और यह आवरण ही नहीं अनिवाय भी था क्योंकि मध्ययुग में जिन भूमिकाओं का निर्वाह अबधी ओर दृग् में हुआ था वे अपने अपने रूप में दृग् में ही आभव साधुभाषा के रूप में प्रकृत हो गये थे। उद् में मूषी भावभूमि पर अध्यात्म का एक ताता-बाना प्रकृत बुना गया था। परन्तु वह मूषी तुलसी कवीर और मीरा के काव्य का स्थान नहीं में मन्त

पा । काव्य के भीतर से प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति प्रसार की 'कामायनी' और तिरासा तथा महादेवी के रहस्यवादी काव्य में जुलफर मामने आई । पन्त नये युग के प्रतिनिधि बौद्धिक तथा वर्तमान के साथ थे । उर्दू काव्य की अस्तुद्धता बिरोह प्रेम विसास और उचित-वैशिष्ट्य की परम्परा बाद में 'नबीन' मयवती बाबू बख्शन' और 'अबन' के द्वारा जारी गई । राष्ट्रीयता नये युगधर्म के रूप में सर्वत्र व्याप्त थी । मायनसाल बतुर्बेदी भारतीय आत्मा ने उसे भक्ति-युग की आध्यात्मिकता और वैष्णवधर्मों समर्पण मानना के साथ संजोया था । इन पृष्ठभूमि पर महादेवी का काव्य अपना निश्चित तथा केन्द्रीय महत्त्व रखता है क्योंकि उसमें गीत-परम्परा का ही नया विकास नहीं मिला है ज्ञानी और मधन कवियों के निर्गुण तथा सनुष काव्य की प्रतिष्ठा नियाँ मने कष्ट में पिरोई गई हैं । उसे रहस्यवादी काव्य कहकर उससे चारों ओर पानी की प्राधीर ही उठाते हैं । उसे आध्यात्मिक कोटि का काव्य कहने में हम क्यों सज्जा का अनुभव कराते हैं वह समझ में नहीं आता । महादेवी ने व्यक्तिगत सामाजिक पीड़ा को यदि अध्यात्म की बापा में अत्यन्त निपुणता और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया तो यह उनकी संकलात्मक अनुभूति की तीव्रता और एक सुनिश्चित भाव-लोक को जन्म देने और विषयसमीच बनाने वाली कार्याधी प्रतिभा का बरदान ही समझना होगा । इस भाव-लोक को हम समझे और उसमें युग की पीड़ा पढ़ें तो महादेवी के व्यक्तित्व और उनकी संवेदना की तरसता द्वारा जनमें सारतम्य ही स्थापित किया जा सकता है । कवि की चेतना में कामायनी लक्ष ही काव्य का विषय बनता है और उसमें युग निरन्तर पुनरुत्थन में डगता जाता है । महादेवी के काव्य में भी यही हुआ है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

कविता रचकर कवि अपनी व्यथा से मुक्त हो जाता है तब वह युग का आन्तरिक बन जाती है । लोकोत्तर आनन्द (रस) के रूप में वह साधारणीकृत होकर सबके लिए व्यास्त्यापनीय बनती है । वह व्यक्ति और युग से कहीं बढ़ ऊपर स्थित करने लगती है । वह संस्था बन जाती है । कवि से व्यक्तित्व और जीवन में स्वतन्त्र वह अपना व्यक्तित्व विकसित कर लेती है और अपना निज का जीवन आरम्भ करती है । उसके मूल्य उची के भीतर अन्तर्निहित रहते हैं और समीक्षक को वहीं उन्हें लोभना होगा । सहृदय पाठक के होंठों पर उतरकर वह उसके मानस की तरसता बनेगी तभी वह अपने को सार्थक कर सकेगी । इस प्रक्रिया में कवि का व्यक्तित्व और उसका युग पीछे छूट जाते हैं । उसमें हम अद्भुत गायक की धीन पर उठी रागिनी सुनने लगते हैं—'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ । जब हमें महादेवी की कविता को इसी मन्त्रिण्य की ओर बढ़ाना होगा । उसमें व्यक्ति और युग को पकड़कर हम हास्तास्पद ही नहीं बनते उसके चिरन्तन को भी छोटा करते हैं । जहाँ पहिलम में उपचेतन को देखा है वहीं कहीं चिरन्तन ही तो चिर नूनन बनकर प्रतिष्ठित नहीं है ? क्या यह असम्भव है कि महादेवी का काव्य किसी पाठकन सत्य का प्रमाय हो ? उपनिषदों में ज्ञान और मध्ययुग में साध-मविन के भीतर जिससे सत्य को देखा गया था उसे यदि आज हम काव्य की रसात्मक भूमिका के भीतर से देखें तो उससे क्या वह अवास्तव बनता है ? काव्य को हम विषय से कैसे रिक्त करेंगे ? प्रकृति के सौन्दर्य से उद्भूत और लौकिक जीवन की विपर्यस्त स्थितियों से

उत्पन्न बेदना को यदि हम कल्पना का सौन्दर्य और आध्यात्मिक अनुभूति की गहनता से सँभो तो क्या हम जीवन की मूलभूत एकता को ही पुष्ट नहीं करेंगे ? अध्यात्म यदि सौन्दर्य की भाषा बन सकता है तो काव्य रसिक को कुछ अधिक ही मिला जाता है ।

परन्तु यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अध्यात्म क्या है ? क्या वह कोई पारलौकिक वस्तु है या उसका इस लोक के जीवन से कोई सम्बन्ध है ही नहीं ? क्या वह केवल रहस्यारमक अनुभूति-मात्र है जिसके पीछे शार्धानिक ऊहापोह का भ्रम है ? जहाँ व्यक्तिगत सुख-दुःख समाधिगत आनन्द और बेदना का रूप ग्रहण करते हैं वहाँ क्या अध्यात्म नहीं है ? प्रकृत के सूक्ष्म रूप में सूदन बैठना का आभास ही तो अद्वैतीय एकता की सृष्टि करता है और उसी का रूपक तो जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेमावेशन है । दर्शन में उद्ये ब्रह्म-विज्ञाना कहा जाता है परन्तु अध्यात्म में वह जाने बढ़कर आंतरिक पीड़ा का रूप धारण करती है और मिसन-विप्लव के रूपकों में बँधकर निम्न शृंगार की जन्म देती है । मूल वस्तु है एकता की अनुभूति चाहे वह स्वप्न बगल के नीचे स्थित सूक्ष्म एवं चिन्मय जीवन-प्रवाह के रूप में हो या सावगौम कक्षा के रूप में । चिन्मय सूक्ष्म को भाव की भाषा में ब्रह्म कहा जा सकता है और अभाव की भाषा में शून्य । ब्रह्मोपलब्धि या आत्मा पलब्धि और ब्रह्म-विहार के दो ही रूप भारतीय अध्यात्म का निर्माण करते हैं । सबभ्याषा चेतनता प्रियतम अथवा सार्वभौम कल्याण बिदय-बेदना के प्रति उत्कट आकर्षण जिस रहस्य बोध की सृष्टि करता है वही महादेवी की कविता का विषय है । उस उन्होंने उपनिषदों के अध्ययन से पाया या सन्त साहित्य से या मीरा से या बुद्ध-बाणी से वह भारतीय अध्यात्म-परम्परा की बीज है जो अनायाम भी है और सायाम भी । महादेवी के द्वारा नई काव्य-भाषा और अभिनव गीत-समी में जल गई है । उसके ऊपर कवयित्री का दावा है भी नहीं । परन्तु वह जिस काव्य की चित्ररेखा में प्रगट हुआ है वह नितास्त उनका है । हम उसी की परीक्षा या समीक्षा कर सकते हैं उसके पीछे जो रहस्य-बोध या आत्मिक पीड़ा है उसे प्रमाण और मापदण्ड के अभाव में बिचबना का विषय नहीं बनाया जा सकता ।

परन्तु क्या कवि का काव्य स्वतः प्रमाण नहीं है और क्या उसके मापदण्ड उसी के भीतर नहीं हैं ? जिन समीक्षकों ने महादेवी के रहस्य-बोध को उत्कृष्ट गम्भीर एवं सशोभ्य कोटि की पीड़ा बताया है परन्तु उनकी अभिव्यक्ति का दुर्बल बहाना है उनकी बात समझ में नहीं आती । विगुड काव्य-दृष्टि अथवा तीव्र नैसर्गिक जन्मप अथवा एकांगिता की आड़ लेकर वहाँ महादेवी की काव्य-कला का छाया प्रियामा है वहाँ तक तो समझ में आन घानी नागमनी ठीक है परन्तु काव्य का भावबोध अभिव्यक्ति के भीतर में ही और उसको सम्पूर्णतः निरूपण ही है ता वस्तु और चित्त को वा निम्न और विरापी घरातलों पर देगना काई बड़ी समझ को बात भी नहीं है । राग और विराग के आचार पर पाप्य की उत्कृष्टता निरूपणा निर्धारित नहीं की जा सकती क्योंकि जड़ के प्रति विराग्य प्रायतः निम्न प्रेम का प्रथम सागर है । अंतर्गामी होने में ही कोई काव्य बाह्य-निरूपण नहीं हो जाता क्योंकि वह बाह्य-जन्म के रूप रंग का प्रचुर उपयोग अत रंगता के दृढ़ करने के लिए कर सकता है । महादेवी के काव्य के मूल्यांकन के लिए हम

'रहस्यवाद' सगुण-निर्गुण और वेद-शास्त्र की टेकों को छाड़कर अथिक्त स्वाभाविक और मिश्रवर्णीय मानदण्डों का उपयोग करना होगा। भाषा छन्द और शिल्प की कारीगरी के भीतर म भाष के मौक्तिक की अनेक परतों में निर्माण की जसा काव्य-विषय के प्रति गहरी भावना हो चाहती ही है उसमें व्यक्तित्व की मानचिह्नता और तरंगना को सुरक्षित रखते हुए भाष में उन महाराष्ट्रों तक उतरना होता है जो संचारियों में भी बंध नहीं पाई है। महादेवी की पंक्तियों के सहारे हमें उन महाराष्ट्रों में उतरना होगा।

अस्पष्टता काव्य का गुण नहीं है। अध्यात्म के क्षेत्र में रहस्यवाद धन सफलता है परन्तु कविता सौन्दर्यविभागी है। अव्यय प्रियतम के प्रति प्रेम-निवेदन और अभिसार प्राकृतिक उपमानों और समर्थ बिम्बा में बंधकर यदि प्रायःप्रानुभूति की तीव्रता और मिश्रवर्णीयता उत्पन्न नहीं कर सके तो काव्य असमर्थ ही कहा जायगा। मित्रता हुआ हृदयबन्धुप या जलता हुआ दीपक स्वयं अपने में काव्य है क्योंकि उनमें जीवन की मस्करता और एकात्मिकता प्रतीकबद्ध है। यदि महादेवी ऐसे समर्थ बिम्बा और साधक उपमानों को काव्यता की अतिरिचयता में बंधकर उ हें भाव की नियुक्तता तथा अंतरंगता से देखी है तो कवि के मात उतका काय पूरा हो जाता है। प्रत्येक गीत यदि प्रथम पंक्ति से अन्तिम पंक्ति तक एक ही वृष्टिकोण भाव वा बिम्ब का प्रसार है तो उसमें पदों की संख्या बिलग धर्म बाध है। परिनिष्ठित भाषा से हटकर यदि मनुहार की मधुरता और आन्तरिक संकोच की अभिव्यंजना के लिए व्याकरण-सम्मत छन्द-योजना में षोड़ा हेर-फेर भी हो तो उससे क्या जाता-जाता है? प्रत्येक गीत महादेवी की कविता में गीत की मानिकता और मधुरता भरपूर है या नहीं? अथवा उतका भाव विद्यमान पदों के बीच के अंतराल को पार करके गुब्बद चिन्तन की गरिमा अथवा अंतर्दृष्टि की परिपूर्णता को प्रामाणिक करना है या नहीं? एक-एक बिम्ब प्रतीक या उपमान पर न टिककर हमारी दृष्टि उनके प्रत्येक गीत की परिपूर्णता और समग्रता पर टिके तभी हम उनका काव्यहेतु के प्रति संवेदित हों और उनकी अभिव्यंजना को महार्षता को समर्थें। अभी महादेवी का काव्य हमारे साम्यक अध्ययन और आलोचन का विषय ही नहीं बना क्योंकि व्याख्यात्मक प्रतीकों की कई भाषा हमारे वैमर्धिन जीवन और व्यवहार से दूर जा पड़ी है और हम उनकी निरास्त हासिक मतेवभा को बुद्धि के ऊहापोह और तर्क के विरसेपथ से अनुसंधान बना देते हैं। दीपवण्ड दीपन का स्थान नहीं से सफलता।

(२)

प्रत्येक गीत महादेवी के काव्य को किस रूप में ले। निःसन्देह उसमें एक सूक्ष्म भाव अंगत् की विवृति है परन्तु हम उसे जीवन के मध्याय से पभावत नहीं कह सकते जब तक कि हम भाष की अत्यन्तोपयुक्त सांस्कृतिक दृष्टि से उस पर आरोपन करें। उस युग के कवियों की कोमल भावनाएँ और व्याख्यात्मक बह्यनाएँ एक नये सौन्दर्य लोक के निर्माण का प्रयत्न है जिसमें मानव की भूगमल आरंभवादी प्रकृति को ही चरि चार्यता मिली है। प्रकृति और नागी की तरह अध्यात्म को भी समस्तकृति की दृष्टि से देखना युग के चार्य्य का ही सूचक है। छायावाद को स्वतः के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया रहा गया है परन्तु नई सौन्दर्य-दृष्टि नागी और प्रकृति को लेकर ही अतीन्द्रिय साधक्य

माधुर्य और मानन्द की सृष्टि कर सकी। स्वृत्त की सौन्दर्यानुभूति में बहुता के स्थान पर चेतना और रहस्यमयता भरकर नया कवि कवित्त-सर्वेषों की नारी-देह की रूप-साधना से ऊपर उठा ता उसके सामने मध्ययुग के कृष्ण-काव्य में व्यक्त स्वरूप अर्थात् को नहीं माया और नूतन भाव-भंगिमा में बौध्ने का प्रदन उठा। राष्ट्रीय चेतना और वैभ्य की भूमिका पर दिव्य सौन्दर्यता के अन्तर्गत भी कुछ कवियों द्वारा खींचे गए। परन्तु युग के अनुष्ठान अर्थात् को लेकर नई प्रतीक-भाषा और अभिव्यक्ति के नये स्वरूपों का विस्तार भा रहस्यवाद के नाम पर हुआ। अष्टि-जीवन की अनुभूतियों को समष्टि जीवन की भाषा में बौध्ने वाला महादेवी का काव्य इस नई परम्परा की ही देन है। अर्थात् की व्यापकता विश्व कक्षा में प्रकट होती है उसी की महत्ता ज्ञान की भूमिका के भीतर से आत्मवाद (सबभाव) की सृष्टि करती है। अष्टि-जीवन की निराशा को समष्टि-जीवन के प्रतीक-रूप में कल्पित किसी मधुर अतिरिक्त क प्रति निवेदित करके प्रेम-विरह की क्रमबद्ध अनुभूतियों में बड़े मानव-मन को जो मानन्द मिसठा है वह मोकोत्तर मानन्द (रस) ही है। क्यों महादेवी ने रहस्यवाद की सृष्टि की यह कल्पित कतिप्रदान ही होगा परन्तु उनके काव्य में मनुष्य की रहस्योन्मुख प्रवृत्ति क साथ सौन्दर्य की मृदु और अंतरंगी अभिव्यक्ति की चाह भी पुष्ट होती रही है। मध्ययुग के रहस्यवाद को लौकिक रूपक और हठयोग की भाषा से हटाकर उसे नये युग की मृदु सौन्दर्यानुभूति और भावनाओं के परिष्कार एवं विरसेपन की नई प्रजाती की अभिव्यक्ति देने का साहस माधुनिक युग का चमत्कार ही कहा जाएगा। यह और भी आश्चर्यजनक है कि युग की इति मूलारम्भक ध्यायारम्भक एवं निताम्भ काव्यनिक काव्य-चेतना में उसमें बुद्धि और हृदय दोनों का समाधान पाया और काव्य की नई परिपाटी में उसे स्वीकार किया। जीवन को मति देने के लिए जिस भावना की आवश्यकता होती है वह न बौद्धिक मिरुणम का विषय है न लौकिक सत्यों तक सीमित है। इसीलिए अन्तर्गत के सौन्दर्य और परिष्कार से सम्बन्धित तथा मिसन-विरह क रूपों में बंधा महादेवी का काव्य साधारण युग के सभी राष्ट्रीय एवं सामाजिक समाधानों के ऊपर आज वैदिकमान ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठित है।

महादेवी की काव्य-दीप्ती उनके विषय के अनुकूल ही है। वह प्रतीकों रूपों और विषयों की दीप्ती है। इनके लिए उन्हें उगुने प्राचीन आध्यात्मिक काव्य को टटोना है वही उगुनेपर्यन्त बौद्ध-साहित्य से भी प्रचुर सामग्री प्राप्त की है। अपनी ऐतरोदीप्त प्रवर कल्पना कविता को रूप-रूपों की साथी सार्थकता देकर उगुने प्रणति मान मनुहार अमिहार प्रतीक्षा और मिसन के रूपक संश्लेष है। प्रत्येक के भीतर भाव-संवेदन क अनेक भावत विरस बनने हैं और भाव का रूप तक विस्तार मिसठा है। भाव की महत्ता और मृदुमत्ता बौद्धिकता का आमान देन सगती है और साथ गीत एक प्रीति चित्र के रूप में मुपटिन उगुने-राशि बन इर मानव पक्ष पर अंकित हा जाता है। बुद्धि क मंशुष ने हृदय को अपनी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करन दिया परन्तु वह कहीं भी अभिव्यक्ति के स्वरूप प्रसार में बाधक नहीं हुई है। न यह कहना सम्भव है कि उनके विद्यालय अध्ययन न वैदिक कृत्यों से लेकर मध्ययुग के मति-भाष्य तक का ज्ञान माया है किन्तु और नही भाषा है न यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी प्रचुर कल्पना कविता और

भावना का कितना काव्य में बंधा है और कितना बाहर बसने के भाव और कर्म की मिसा है। उन्होंने यह स्वीकार करने में सज्जा नहीं मानी है कि साहित्य उनके सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है और उसके लिए युग जीवन की विपमताओं को सामग्य साकर बलीमें भी प्रस्तुत है। परन्तु काव्य के भीतर से उन्होंने कितना दिया है वह एक परिपूर्ण इकाई बन गया है और उसे आध्यात्मिक काव्य नहीं तो अध्यात्म का काव्य ता कहा ही जा सकता है। वस्तुतः उसमें अध्यात्म को काव्य बनाया जा रहा है, काव्य को आध्यात्मिक ऊँचाईयों देने का प्रयत्न नहीं है। यह अन्त की साधना नहीं बल्कि की भाव साधना है जो सौंदर्य-जीवन की अनुभूतिमें अध्यात्म की गति बंध रहा है। सब और निर्बाध सिद्धों की सहज साधना में कितने पास-पास बैठे हैं उतने ही पास-पास मिलन और विरह ब्रह्मानन्द और कथना आत्मोपसम्पन्न और आत्मदान महादेवी के काव्य में हैं। उन्होंने अध्यात्म को बर्म के बन्धन से मुक्त करके जीवन के सहज सौन्दर्य शील प्रेम कथा और श्रुतार में बासा है। मध्ययुग के अन्त में मत्तों गमियों की अत्यन्त मित्रुद्ध भावधारा को मध्यवर्ग की बुद्धिबारी हृदयबारी जीवन-वेतना का अभिन्न बंध बनाने का ध्येय यदि निराशा के साथ किसी को मिस सकेगा तो उन्हें ही। उनका कार्य निराशा के कार्य से भी बड़ा और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह एकाग्रता और सूक्ष्मता है और उसमें प्रथम सची की कला की कागीरी है जिस पर स्वयं निराशा मुख्य है। मुझे स्मरण है कि किस तरह तपती दोषहरी में बहुगनेधारा से मुझे साथ लेकर 'विद्यास मारुत' के एक बंध को तपसा में संयाप्रसाद ममोरियल साहसेरी तक पाकर और वहाँ उसे न पाकर मित्रों के घर भटके थे और अन्त में हजरतगंज पहुँचकर नवलकिशोर प्रेस के 'माधुरी' आविष्ट में प्राप्त करके महादेवी के साथ प्रकाशित गीत को कई बार पढ़कर गृहगृह हो सके थे। मीलों पैयम बरा कर महादेवी के गीत की रहस्य-माधुरी का रस लेने वाला निराशा का अध्यात्म रस-विपागु हृदय यदि उन्हें सहोदर से भी अधिक स्नेह से सका तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि उन-नीसा कथा की बारीकी को समझने वाला कलाकार और परमहंस रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक स्वयों में पसने वाला साधक उस समय और कौन था ? महादेवी के काव्य में उन्होंने अपने कलाकला-भाषा के दिनों के आध्यात्मिक काव्य की बर्णकथा को गई गीति-कला के साथ भाषा और नई पंचुडियाँ सोमते देखा था। वह उनके कितने भीतों पर कितनी बार भाव-विमोह हुए हैं। स्नेह उन्होंने पंत को दिया तो सीहार्दे महादेवी को। उनमें उन्होंने अपनी ही आत्मगीतता पड़ी अपना ही मुख देखा। हिन्दी का समानोच्च भाव भी महादेवी के काव्य को भीत-प्रवीत की कसौटियों पर आँक रहा है और उनके रहस्य-गान में श्रुत की पराधय पढ़ रहा है। उस ग नारी का हृदय मिसा है न कोवस का कण्ठ। वह आधुनिक नारी के टोच पर मुख्य है और उसकी बान्धिता का प्रवेसक है उसका भीतर की धारवत नारी के आत्म-समर्पण की पीड़ा और आत्मिक को उसने नहीं जाना है। दर्शन वहाँ मस्तिष्क से उतरकर हृदय के रस की गति बन जाता है और काव्य भाषा अन्त और तय के अन्तविरोधों से अवर उठकर गीत के मर्म-सधुर स्थानों में उसे साथ लेकर चल पड़ता है वहाँ भाव के समीक्षण की पहुँच ही नहीं है।

(३)

महादेवी की रचनाओं को लेकर एक प्रभाव यह उठाया गया है कि उनका काव्य निराशावाद का काव्य है और उष युग पराजित मनोवृत्ति के प्रमाण में पेश किया गया है। पराजय और पलायन आरम्भ से ही आध्यात्मिक काव्य के साथ जोड़ दिए गए हैं और मक्ति युग के सन्तों, भक्तों और मर्मियों में भी हमने राजनीतिक पराजय और सामाजिक कुष्टों के स्वर पड़े हैं। महादेवी के काव्य में व्यक्तिगत जीवन-सम्बन्धों की जोख का प्रयत्न भी हुआ है यद्यपि गहरे आकर किसी बात को कहने का साहस समीपता नहीं कर सके हैं। मन्त्र है मये खोती मक्ति-युग के साधक-कवियों में आत्म प्रमन यौमाकांक्षा और कुण्ठित काम देखें। परन्तु काव्य की आत्मादन भूमियों का उषसे प्रेरक लोतों और उल्लसों से कोई अनिर्वाप सम्भव हो यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता। जिस ध्वजा को महादेवी ने अपने गीतों में उड़ेना है वह वहाँ आध्यात्मिक कृपा बनकर ही प्रस्तुत है और उससे निवृत्त आध्यात्म-रस ही प्राप्त हो सता है।

महादेवी के काव्य की व्यष्टि-चेतना आत्मवादी भावधारा से प्रभावित है और उन्होंने निजी बात कहने के लिए बहू-जीव के मिलन-विद्योग के रूपकों को चुना है। केवलाईत काव्य का विषय कहीं तक बन सकता है यह कहना कठिन है परन्तु काव्य में ब्रह्मवाद सर्वात्मवाद बनकर ही अभिन्न आया है और अद्वैतभूमि पर इच्छेबन्ध को मजबूर व्यक्तिगत धर्म और उसका प्रति मिलन-विद्या की भावनाएँ व्यक्त करने के एक प्रकार की सगुणता अनिर्वापत इस प्रकार के काव्य में जा गई है। यह ईत की भूमि है। फलतः काव्य में अद्वैतवाद रहस्यवाद बनकर ही मौनिक अनिर्वापित पा सका है परन्तु उसमें अद्वैत का पास्तबिक रूप लक्षण भी हुआ है। निराशा ने महाकवि तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पंक्तियों को उद्धृत करके काव्य में अद्वैत लिपि की कठिमाई को उदाहृत ही नहीं किया है, उन्होंने मन्त्र और कवि की मिल्न प्रवृत्तियों और मौन सुगरता में बचलने की प्रक्रिया में ईत के ही हाथ पड़ने की बात भी कही है। मजबूरी मन्त्र और कवि ने अद्वैतभूमियों के विभिन्न परातलोकी ही नहीं है उसकी अनिर्वापता में नापा के ईतद्विज और मौनिक मन्त्र भी बाधक होते हैं और वह साधना की अंतरगता एवं भूमिगत एतता भीषे से परिचित करती है।

परन्तु एक दूसरी कठिमाई अनुभव की समष्टिगत भूमिगत पर है जिसे कल्पनावाद कहा जा सकता है। यदि हम किस प्रकार जानी है ? विरहध्यायी दुःख का जड़ यदि बिब-यैवता कहता है तो हम उग औरकारिक अथवा बायबी कल्प मान लेते हैं। यह मौनिक वस्तु है और भाव जगत् की वस्तु है कल्प-जगत् की राजनीतिक और सामाजिक पीड़ा में उसका सम्पन्न लीया नहीं पटोय का है यह हमारी बुद्धि में नहीं आता। निराशा विद्युत् और पत्थर तापती हुई धमिक गारी निराशा की भाव-अविहता का ज्ञान करन सामाजिक कल्पना का जगम दे गते हैं परन्तु इन व्यक्तिगत प्रसंगों को विनाकर या मात्र भीम कल्पना का स्वल्प यचना है उगार प्रकट करने के लिए कवि ने पाय क्या मायन है ? उसे तो वह व्यक्तिगत जीवन के प्रतीकों की ही जानी बनना है। महादेवी के काव्य में यह समष्टिगत चेतना प्रकट भाषा में है और यही उनका रहस्यवाद का भूमाधार है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह पीड़ाबाह पलायनबाह और पराजयबाह है ? क्या उसमें आध्यात्मिक निष्ठा की कमी है ? उसे निराशावाद क्यों कहा जाय ? बौद्ध-दर्शन को लेकर आरम्भ हुआ निराशावाद का प्रश्न उठाया गया है परन्तु यह नहीं बतलाया जा सकता कि वह निराशावाद क्यों है ? अर्हंत या शून्य क मानस म जब महार का विरो नाह हो जाता है और वह अपने हम नाक के जीवन में ही मुक्ति (निर्वाण) का आनन्द न सकता है तो निराशावाद कहा है ? अल्प दीपी भव' में जिन अनेरोपन की कल्पना है यह आस्था और साहज के माय ही है फलत यह दु खवाणी नहीं हो सकती। लौकिक जीवन की निराशा आध्यात्मिक निराशा में बदलकर साधक-कवि उसके लुप्ता वास उप मर्मासे छुटकारा पा जाता है। हमका तात्पर्य यह है कि उनके भाव-व्यक्त म निराशा आशा का प्रश्न नहीं रहता कबल अभिव्यंजना रह जाती है। कवि की वासना की तरह कवि की निराशा का भी कोई अर्थ नहीं है। दु खवादी होने पर भी मूल में बौद्ध-दर्शन निराशावादी नहीं है क्योंकि उसमें दु ख का निदान और निराकरण होता है। वह बन्द गयी नहीं है। उसमें प्रयत्न के अपरिमीम साहस से भकर प्राप्ति न असुमनीय आनन्द तक सात भाव-भाव जा जाता है।

तात्पर्य यह है कि महादेवी अपने काव्य म युग के साथ कम है युगेतर क साथ अधिक है। जहाँ वह युग के साथ है वहाँ भी बीजे सन्दर्भों को लेकर नहीं आध्यात्मिक प्रतीकों और निर्बैयक्तिक निकाया को बीच में डालकर है। फल यह है कि उनका काव्य व्यक्तित्व अनुभूति का स्फुरण न रहकर सार्वभौमिक एक निर्बैयक्तिक अभिव्यंजना बन गया है। उसमें उपनिषदों के ऋषियों बुद्ध धूम्रवादी साधक सिद्धों मर्मासन्तों एवं मुनिवों की अनेक प्रतिध्वनियाँ घुस-भिस गई हैं। वह मानव-जाति की अनेक सतावियों की रहस्य मानना और माधुर्य-साधना से प्रीकता प्राप्त करता है। उसमें सादासादी भाव व्यंजना भाषा और शैली का साधन उपयोग है परन्तु कवयित्री की नीतिकता अपने में स्वतन्त्र और विशिष्ट उपलब्धि भी है और उसके विकास का अपना इतिहास है। जहाँ कोली के शीतों को लौकिक जीवन क मग्गों और प्रतिष्ठित के मिशन-वियोग हास मधु माय और अभिहार के प्रतीकों में बैककन उन्होंने एक नए स्वल्प-नाक की सृष्टि की है जो मध्ययुग के साधकों के भाव-व्यक्त से कम मार्मिक नहीं है। उनकी विरहसमीयता स्वयं उसके भीतर है उसे बाहर दु ख के विरहास में व्योचना ठीक नहीं है और बिम्बों एक प्रतीका संशो एवं लयों के उपयुक्त और भावस्मिरण प्रयोग पाठक की आस्था को कवयित्री की अध्यात्म चेतना से कीलित कर देने हैं। भारतीय अध्यात्म-साधना से परिचित सहृदय को तो उसके रसास्वादन न लिए कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ता। उसके लिए आस्था का प्रश्न ही नहीं उठता। साधा की विज्ञानमता अत्यन्त सारगमिथ प्रतीकों की योगता गीत-नृत्य की प्रीकता और मधुरता तथा संगीत की मयबद्धता से अनास्थावान या तटस्थ के लिए काफी संभाव्य पैदा हो जाती है। जहाँ विरहसमीयता बुद्धि और आधुनिक मनोविज्ञान के सहारे एक-एक भाव या प्रतीक या बिम्ब का समझकर सतकंठापूर्वक बदने का प्रश्न है वहाँ निराशावाद ही हाव पड़ता है। महादेवी की कविकांशा रचनाएँ प्रवीत नहीं पीठ हैं। उनकी भाव की ध्वनियाँ दूर तक जाती हैं। वह मानव-जीवन के

विराट् सम्बन्धों शृंगार प्रतीकों प्राकृतिक उपमानों एक काव्यात्मक चिन्मों का उपयोग करती है और उन्हें जीवन-परिष्कार तथा भाव-गाम्भीर्य का साधन बनाती है। एक ही मीत में बहु निराशा से आरम्भ करके इन्धनपुत्र के आधा के दूधरे छोड़ तक पहुँच जाती है। जो जीवन विरह का जलजाल है वेदना में जिसका जल हुआ और कृपा म जिसे आवास मिला जिसका विषय अशु पुनता है और रात अशु गिनती है वही सीमा-कमल बनकर अपनी समस्त समावधानों में निरन्तर किसी के अर्चों की स्मृति बन सकता है—

विरह का जलजलत जीवन विरह का जलजाल ।
वेदना में जल, कृपा में मिला आवास
अशु पुनता विषय इसका अशु गिनती रात ।
जीवन विरह का जलजाल ।

जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज ।
जिन सके निरपम तुम्हारी देह स्मित का प्रातः ।
जीवन विरह का जलजाल ।

इतना बड़ी संभावना मानव-जीवन की ओर क्या होगी? जीवन साधक के लिए मान ही निर्बाण है क्योंकि यही उसके उन्मत्तता की परीक्षा होती है और जीवन परिष्कार के साधन उस प्राप्ति होत है। जब मनुष्य के हाथ अशु समष्टि के प्रति कृपा और मंगल-भावना से रंजित हो जाते हैं और एक क्षण का स्वप्न युग-युग की पञ्चानन बन जाता है तो मरण अथवा वस्तु न हास्य प्राण का पाहुन बन जाता है—

पथ मेरा निर्बाण बन गया
प्रतिपक्ष शत करवान बन गया

मिठ-मिठकर हर सीस मित्र रूहो
रात-रात मित्र विरह का निरा ।
निद्र को जोर निद्रिय भिक्ते
मनवेले करवों की रेखा ।

पत-भर का बहु स्वप्न तुम्हारी
युग-युग की पञ्चानन बन गया ।

देते हो तुम पौर हास्य
निद्र करवा-करवा, के पर ।
नीहाते हो अथ युग युग
अपनी निद्रिय से रंगीमय कर ।

आज मरण का दूत तुम्हें
मेरा पाहुन प्राण बन गया ।

ऐसी स्थिति में मरणार्थी व्यापारण मानव अपने अस्मिन्ध म विरगण युग का अनुभव करता है। वह मृत्यु-प्राण बन जाता है। उसका मरण परिष्कार आत्मी -
विश्व-व्यक्ति मृत्यु-जी अथवा मरण का अन्तिम प्रसन्न बनकर मानव अन्त की

चरितार्थता प्राप्त कर गेठा है—

हुए शून्य अलत तुझे बूझि चम्पन ।
 अगण-शून्य-सी तसि सुधिगन्धसुरभित
 बनो स्नेह को भारती बिर अकम्पित
 हुमा नयन का नीर अमिबेक असकन ।
 सुनहले सखीसे रंगीने छबीने,
 हसित कंचकित अशु मकरंद गीसे
 बिलरतौ रहे स्वप्न के रूप अनयित ।
 व्यथाप्राण हूँ नित्य मुक्त का पता मैं
 धुला ब्याल में मोम का बेबता मैं
 सुजन-बधास हो क्यों गिनुं नाश के लण ?
 बहु सांभ का दूत है जो प्रमातो तक चलनेवा
 यह मन्दिर का दीप इमे भीरव जलने दो ।
 सम्झ है विरभोत राग को मूर्च्छा गहरो
 आज पुजारी बने ज्योति का यह प्रहरी ।
 सब तक लौटे दिन की हमचल
 सब तक यह जागेया प्रतिपल
 दूत सांभ का इसे प्रमातो तक चलने दो ।

अमर जीवन से सम्पन्न और मानव की मरिच्यत् की आस्था से शकस्ती यादिक
 के रूप में जिस महाप्राण की कल्पना महादेवी ने की है वह मनुष्य की बेबोपम मूर्ति है जो
 फल से उत्पन्न अर्थात् को आज के कवि की वाणी में मुद्रित करती है । भीतर की
 वातरता और बाहर के तिमिर आस्थाचक्र का समकारने वाली महादेवी की यह आस्था
 क्या निराशाकारी कवि की वाणी हो सकती है—

पूछता क्यों रोब कितनी रात ?
 अमर-सम्पुट में बसा तू
 पू मर्कों की कान्ति बिर,
 सकेत पर बिजके जला तू,
 स्निग्ध तुझि जिनकी लिये
 कजल-विद्या में जैसे जला तू
 परिधि बन बरे तुझे है अपुलिया अवगत ।
 प्रकृत ली की भारती से
 शून्यमेला स्वर्ण-अकल
 नीसकृम का रती से
 मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह-अकल भारती से
 भिन्न मरे बड़ भा रहे यदि प्रलय-संभवगत ।
 कौन मय की बात ।

महादेवी के रेखाचित्र

गोपालकृष्ण कौल

चित्र भावना की नीरव अभिव्यक्ति होता है। उसमें रेखाएँ और रंग बिना भाषा के ही बोध उत्प्रे हैं। किन्तु चित्र कबम रेखाओं और रंगों से ही नहीं। दृष्टों से भी सीख पाते हैं। अभिव्यक्ति के मिश्रित प्रकार के रूप में भावना के चित्रण के लिए ध्वनि और रेखाएँ समान उपकरण हैं—दोनों ही रहस्यमय अनुभूति को मानस की गहराई में सतह पर साकार अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

महादेवी कर्मा ने अपनी रहस्यमयी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए दृष्टों और रेखाओं—दोनों का ही अपनी क्रमा का उपकरण बनाया है। चित्रण में उन्हें विराप रवि है। उनके मीन-काम्य में अनेक ध्वनि-चित्र हैं। जैसे दोषपियर और कीट के सामने गया साह जाने ही—उनके नय-नय चित्र भी बनने सघने के और उन्होंने अपने काम्य में भावों का बिबीकरण करके भावनाओं को एक साकारता-सी प्रदान की जैसे ही महादेवी कर्मा की रहस्यमय भावना की अभिव्यक्ति अपने काम्य में प्रतीकों में छोटे छोटे चित्र प्रस्तुत करती है। महादेवी कवि के माय कुण्ड चित्रकार भी है। सायद द्वागिण काम्य में भी चित्र बनाती है। 'दीपगिण काम्य-संग्रह' में महादेवीजी के चित्रों के गीत और गीतों के चित्र हैं। उसमें उन्होंने रेखा और ध्वनि—दोनों में ही कविता का साकार प्रदान किया है। जैसे चित्रकार प्रकृति के अनेक गुण प्रमुद्धर उपकरणों का रेखांकित करके चित्र में भावना को रूप प्रदान करता है उसी प्रकार महादेवी रहस्यमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अनेक काम्य-चित्रों का प्रस्तुत करने में प्रकृति के अनेक उपकरणों का प्रयोग के रूप में प्रयोग करती है। कर्मा के कर्मा दीप्य न बोध पदमर के कुण्ड पगल में मानन्द को गहन द्वाग अभिव्यक्त करती है। सुग के लिए वह 'मन-प-पवन' 'मपु कोर' 'मपि जाति' ध्वनों का प्रयोग करती है। अमू के लिए उन्होंने 'मदग्द' 'नगय कोर' 'मुक्ति-कथ' आदि ध्वनों का प्रयोग किया है। बीजक के प्रतीक के रूप में उन न गयी प्यामी मरुत भादि ध्वनों का प्रयोग किया है। इस प्रकार द्वाग द्वाग में भावनाभिव्यक्ति में करके प्रतीकों में रहस्यमय भावना की अभिव्यक्त करने की ध्वनि बिबवार की दीपी है कर्मा के सब चित्र मान ध्वनि में अनेक को अनिव्यक्त नहीं कर पाता नहीं वह एक प्रतीक चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु वह अपनी मरुतरी नहीं बलि उगके

कामागत सौन्दर्य की विधेयता बन जाती है।

महादेवी बना अपने गीति-काव्य में व्यक्त-प्रधान हैं समाज की अभिव्यक्ति का उगम समाज है। उसमें वह व्यष्टि है समष्टि नहीं। जैसे उसमें प्रकृति के बिना सौन्दर्य का इमान किया गए हैं अदृश म अदृश के स्पर्शन को अनुभव किया गया है किन्तु जा बेगन का यथार्थ रूप है—जन-जीवन उसका दर्शन का उगम अभाव है। इसलिए गीति-काव्य में उनकी व्यक्त-साधना है। प्रियतम के रूप में प्रकृत जनका माध्व बिरह उनकी साधना और परमात्मा से मिलने को अपने आत्मा उनकी साधिका है। गीति काव्य में वह प्रेमिता है प्रकृतिनी है। प्रेम की मत्पुत्र प्यास बिरकिडमय अमुराग वासनाहीन बिरह-पीड़ा और एक अज्ञात ईश्वरीय सौन्दर्य के प्राकृतिक सौन्दर्य में दर्शन—उनके काव्य के विषय हैं। यह बदना करणा और दुःख की कवि हैं। रसि की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

ससार साधारणतः बिछ दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुःख, बहुत आदर और बहुत भाषा में सब कुछ मिला है उस पर पाँचव दुःख की छाया नहीं पड़ी। क्या बिना यह उसी की प्रतिक्रिया है कि बदना मुझे इतनी मधुर लगती है।

जो पाँचव है उससे उनकी बिरकिड है। उनका बच माध्यात्मिक है और वेदना में अनीकिक अनुप्राय का रस है। किन्तु पाँचव और स्पृहा मानकर काव्य में उन्होंने जन जीवन के समष्टि-रूप समाज की यथार्थ और आदर सेना को स्थान नहीं दिया। जैसे गीति-काव्य व्यक्त-प्रधान कला-साधना है, किन्तु समाज के प्रति कवि के जायन्तक दृष्टिकोण की भूमक उसमें प्रतिबिम्बित हो सकती है। यदि कवि का समाज के प्रति कोई जायन्तक दृष्टिकोण हो। तबमान समाज में व्याप्त दुःख ईश्वर विपन्नता और उत्पीड़न की भूमक उनके गीति-काव्य में नहीं बयोकि उसमें जो दुःख और बदना है वह भी उनके अनीकिक प्रेम की बिरह-पीड़ा के सक्षण माध्व हैं। इसीलिए उन्होंने काव्य के अधिकार उपमा और प्रतीक भी प्रकृति से ग्रहण किये हैं जन-जीवन से नहीं। किन्तु महादेवी के रेखाचित्रों में समाज के प्रति आकर्षण है। गीति-काव्य में जो कला व्यक्त प्रधान की रेखाचित्रों में वह समाज प्रधान हो गई है। जन-जीवन में व्याप्त दुःख ईश्वर और उत्पीड़न के बिना का उन्होंने चर्यों की रेखाओं से चित्रित किया है। इन रेखाओं में समाज के प्रति महादेवीकी के एक जायन्तक दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं।

रेखाचित्र लिखने की शैली सेलकों की चित्रकला से प्राप्त हुई है। टेडी-नेडी रेखाओं से बने 'स्केच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीव अनुभूति की आकार अभिव्यक्ति करते हैं। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विधेयता को अपनाकर ही चर्यों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने का प्रयत्न चित्रों की रेखाचित्र की संज्ञा प्रधान की गई। रेखाचित्र न कहानी है और न गद्यगीत न निबन्ध है और न संस्मरण वह एक स्वतन्त्र कला है। रेखाचित्र केवल व्यक्तियों का ही नहीं स्थान बातावरण और साक्षात्क व्यक्तित्व का भी सीखा जाता है। रेखा-चित्रकार और कैमरामैन का काम एक-सा है। जैसे कैमरामैन या बीसा है उसको बीसा ही कैमरे द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न करता है किन्तु यथाव्य चित्रण

मात्र हमारे का सेन्स ही काम नहीं करता बल्कि शैमरासैत की 'ऐंगिस' देते और 'पात्र' न की रंगा दृष्टि भी बड़ा काम करती है। रेखा-चित्रकार नी एक पीनी दृष्टि रखता है। ह्मन्तु या व्यक्ति में स्थित जनक प्रभावों और प्रतिक्रियाया क दर्शन करके माथ गरीर का रंगा ही नहीं लीपता बल्कि मन आत्मा और जीवन का विशेषताओं का भी गवना पनी रंगाओं में प्रस्तुत करता है। 'रेखाचित्र' की सीमा बड़ी नहीं हो सकती। उमका पिक बिम्बारा उनके सौन्दर्य का गण कर रता है। उममें पठन हुआ चाहिए और रंग-पात्रा म त्रिमिप्यक्ति की रक्ति। 'धन्व-नस स्कैप' लघुतम रेखाचित्र का आधुनिकतम मूना है जिममें चार-स पक्तिपों में ही चित्र प्रस्तुत किया जाता है। एम रेखाचित्र भी हिन्दी म नहीं मिले जाते। किन्तु रेखाचित्र 'मिरिफ' नहीं है, इससिए कसाकार पक्ति का रखा-चित्रन करने हए भी समाज को नहीं मूस सकता। बहु व्यक्ति प्रपात रंग मबन रेखाचित्र नहीं अंकित कर सकता। इनके सिए उमे जन-जीवन का सामीप्य णन करना अनिबाय है।

इसीलिए गीति-काव्य में स्थिति प्रपात महारबा की नाबना रेखाचित्रों म समाज प्रपात हा गई है। रेखाचित्रा में उमरी अनुभूति माप्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं। उममें गन्तुष की ममता बहन का स्नह और नापिख की बिबिप धनुभूतिया की मन्मिप्यक्ति है। एम जन जीवन में व्याप्त कु ल दैन्य अघिषा उत्पीडन आदिक प्रति बिराद् महाभुभूतिपुन म्पना और ममता है—कही-नही बिशाह नी है किन्तु बहु ममता और कण्ठा म मनिमूल है। किन्तु महादेवी की कसा में यदि कहीं जन जीवन और समाज का प्रतिदिम्ब ममता है ता इन रेखाचित्रों में ही इससिए महादेवी क साहित्य में इनका बिधिप्य स्थान है। इमर न रेखाचित्रा का मन्वप महादेवी क जीवन ने है। बिन पात्रा का चित्रन उममें कसा है कसाकार की जीवन-कपा का हृदय छूत बाते मंग हैं। 'अतीत के चमपिन' की भूमिषा म उभूति मिया है—

"इम स्मृति-चित्रा में मंग जीवन नी भा गया है। यह स्वाभाविक भी था। अंपने को बन्तुओं का इन अपने प्रकार की भूमिषा या उत्रमी परिबि म साकर ही रंग पात है। उमक बाहर ता के अन्नन अम्पकार क मंग है। मरे जीवन की परिबि के भीतर यह हाकर परित्र जैसा परिबय दे पाते हैं बहु बाहर रसास्तरित हो जायगा।"

एदरि 'स्मृति की रेखाएँ' 'अतीत के चमचित्र' और 'पय के मार्पी' म महारबीरा क जीवन-अम्पना भी निहित है। किन्तु भी उनमें रेखाचित्र ही अंपिन है। उनके रेखा चित्रा क पात्र एतिहासिक महापुरुष नहीं बल्कि माग्रीय जन जीवन के क मुख्य चित्र हैं। उ बुद्धता अघिषा और गानन म बीम और मन्व बत गए हैं और बुद्ध महादेवी का ममता और बरगापूर्न महाभुभूति म। दलित और पिछडा हुआ मानरर बिन एरिप्यो की ह्म उरवा कर देन है। महादेवी ने मरतो बिराद् महाभुभूति के महारे उमरा अंतग अल्पवत कर इन रेखाचित्रों में प्रमन रिया है। इनम कही-नही दरा हुआ बिशाह भी भुगणि हाता है। बिन्व मागगाय मार्गीय क बिबिप रणों का अल्पवत भी इनमें प्रमन रिया रता है।

'स्मृति का रंगान' म पठता रेखाचित्र एम गारा बुद्ध मन्वता का है। मिररा

नाम नस्ति है जो अशिक्षा और अज्ञान के जग्यकार में अनेक गुणों के साथ कुछ ऐसे गुण भी रखती है जो उसके व्यक्तित्व का प्रबल आकषण हैं। दूसरा बिना एक पौनी फरीबाने का है जो अपने देश को छाड़कर अपनी खोई हुई बहिन को तलाश करने के लिए कण्ठे की फेरी सनाठा फिरता है। बिगठ जीवन में उसने कितना बप्ट और धमका उठाई, इसका बिना महादेवी की करुणापूर्ण दृष्ट-रंगारंगी में उबरकर सामने पड़ा हो जाता है। इसके अनिश्चित इन सबहम साथ की मरीबा पहाड़ी धमपूर्ण अभावग्रस्त जीवन मोदियों की पारिवारिक भंडी के मन हिमा देने वाले भावनापूर्ण रखाबिना है।

सटीठ के बलबिना में पहल रेखाबिना में धमजीवी छापील मौकर के जीवन की भंडी है जो घर से छटपम में भाग साठा है और महादेवी के परिवार में बचपन से प्रीकाररुबा तक ईमालशाने में काम करता है—भुख रामू के अरिज के पुन-दोप उमरकर सामने आ गए हैं।

दूसरे रेखाबिना में एक बाल-बिना का बिना है जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षापूर्ण बातावरण में बिना बोसे ही बूट बूटकर अपना जीवन बिताती है। बिना घोपे ही उसकी कल्प बालें उसका जीवन की तमाम बेबना को ब्यवन करती हैं।

तीसरे रेखाबिना में बिनाता के दुब्यबहार से पीड़ित एक निरीह बासिका का बिना है।

चौथे रेखाबिना में भंयियों के पारिवारिक बिना के साथ उपेक्षित भारतीय मारीत्व के कपडमित समाज की मारी सभिया का कपठ अरिज है जो अशिक्षित और पीड़ित होते हुए भी उत्सर्ग की महान् भावना से अनुप्राणित है।

सम्प्री बंधने वाले अन्धे अन्धी बयनू कुम्हार और कर्मठ पहाड़ी महिला लदमी के रेखाबिना जन-जीवन क बिबिप रूप हैं।

इन बिनों के अरिज लसिका के बिना और अर्तमान से छायात सम्बन्ध रखते हैं इसलिए इन संरहा में रेखाबिना ही नहीं हैं रेखाबिना के अनिश्चित संस्मरण भी हैं किन्तु व्यक्तित्व-प्रधान निबन्ध भी कहा जा सकता है किन्तु इन बलबिनों और स्मृति की रेखाओं में जो रेखाबिना हैं उनमें बिनेय बल है और वे हिन्दी छाहित्य के लिए गौरव की बस्तु हैं। पौनी फेरीबाने के रेखाबिना को हिन्दी के प्रसिद्ध संस्मरण-लेखक और रेखा-बिनाकार समारमीबास जगुर्बेबी ने छाहित्य बिद-स्मरणीय रेखाबिना बताया है। ललापी रामू, बरमू और सभिया के रेखाबिना भी हिन्दी में अपने ढंग के सर्वप्रथम और उपलभ रेखाबिना हैं।

महादेवीजी क रेखाबिनों में पात्र स्वयं कम बोलता है इसलिए संवाद कम हैं किन्तु बिनेय संवाद हैं वे अरिज की धुन रूप में ब्याख्या करने में समर्थ हैं। लसिका स्वयं उनका बिपय में अधिक बोलती है किन्तु उनके बोलने में ही अरिज बोय उठता है। क्योंकि इन रेखाबिनों में संस्मरण के अंग भी बिद्यमान हैं इसलिए लसिका की दृष्टि अरिजों को चारों ओर से घेरे रखती है। वह अरिज को अपनी ममता और करुण उहानुसृति की गार में पीठाकर उसकी रेखाएं पीचती हैं। महादेवी बलि है इसलिए रेखाओं में

भाषणा और कल्पना के रंग भरती है। वह सारी रेखाओं से ही चित्र को नहीं जीवित उनके बाध लम्बे होते हैं किन्तु विधित नहीं—उनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण चुस्ती है। इन रेखाचित्रों में चरित्र की अतिस गहराई में खुलकर मान-साधनाओं के मोटी-पुन-पुनकर सतह पर साने का सफ़ल प्रयास है। यह केवल रेखा-आकृति और मुद्रा को ही अंकित नहीं करतीं मन के सूक्ष्म भावों को भी उमा-पद्म रेखाओं में बाँधने का प्रयत्न करतीं हैं। हिन्दी में रामकृष्ण बेनीपुरी चोटी के रेखाचित्रकार हैं किन्तु उनके रेखाचित्र कहानी या कथा-प्रधान होते हैं और आकृति प्र-होती है किन्तु महादेवी के रेखाचित्रों में कहानी के साथ कविता भी रहती है। बनारसीदास बतुबेदी ने अभिकर्त बड़े लोगों के रेखाचित्र और संस्मरण लिखे हैं कि महादेवी ने जीवन में आने वाले उन उपेक्षित, चरित्रों को अपनाया है जिनमें भारत-समाज की उत्तम समस्याएँ छिपाई हैं।

इन रचनाओं में भेदिका का समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण भी कवि के रूप में जितनी वह पापिक समस्याओं से भूर है—इन रचनाओं में उठती ही स-है। यद्यपि इनमें भेदिका मुम-वेतना के अनुरूप बिद्रोहिणी नहीं फिर भी उसमें जैसे की कन्या और माता के विरुद्ध मातृत्व के दर्शन होते हैं। वह कृपा से अधिक म-और संहानुभूति में विरवास करती है, इसलिए उसकी बिद्रोह की भाव पर कन्या-संहानुभूति का हिम आच्छादित है, फिर भी कहीं-कहीं वह दबाया नहीं जा सका-बिधेयत मारी के प्रति होने वाले अत्याचार से वह व्याकुल हो उठती है। लक्ष्मण-विष पीबते हुए मारी पर होने वाले पुरुष के अत्याचार के प्रति वह कह उठती है—

‘एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस-से प्रतिशोध लेने को उठाक हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अत्याय-प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक मारी बनाये बिना-रहती।’

‘अतीत के चमचित्र’ के छन्दे संस्मरण में अविचार मे उत्पन्न सन्ताप की मा-समाज जब सहन नहीं कर सकता और जब कि अविचार मारी को बोधा दिया गया है-वह कह उठती है—

‘मैंने ये स्त्रियाँ अपने शिष्ट को सोच-से कर साहस से वह सचें कि बर्-मुमने हमारा मारीत्व पत्नीत्व सब स लिया पर हम अपना मातृत्व—किमी प्रक-रेंनी, सो उनकी समस्याएँ गुरन्त मुमन्ध जायें।’

इन प्रकार इन रेखाचित्रों में बिद्रोही भावों भी हैं। इनमें सामाजिक चेतना-के रेखाचित्र जीवन के प्रति महादेवी के दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए उनकी सामा-कथा की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं जिनमें व्यक्ति में गमय की जायदक समस्याओं की हस्त-वेगने का प्रयत्न किया गया है।

महादेवी में रेखाचित्र लिखने की प्रवृत्ति है। वह एक चित्रकार है-गीत-नाट्य में भावना-चित्रों को प्रस्तुत करने वाली अष्ट कथाकार है। यद्यपि सत-

का संस्पर्श होने से उनकी कुछ रचनाएँ पूज्य रेखाचित्र नहीं कही जा सकतीं किन्तु उनमें भी रेखाचित्रों के स्पष्ट अंश दिखाई पड़ते हैं। हिन्दी में छायावादी शैली के पद्य सबसे रेखाचित्र और भावना में संस्मरण की दृष्टि से 'स्मृति की रसाएँ' और 'अतीत के अलखित्र' उनकी सभस और ऐतिहासिक रचनाएँ हैं जिनमें उनका रेखा-चित्रकार का रूप प्रथम है।

आत्मन्त्र और आभय के सम्बन्ध की रामायण अभिव्यक्ति ही काव्य है। रामायणक सम्बन्ध के तीन भाग किये जाते हैं उन्हें तीन मंडिमें सोपान या भाषा-वच भी कहा जा सकता है। ये हैं—आत्मन्त्र के स्वरूप की विज्ञासा सम्बन्ध-बोध और सम्बन्धानुभूति। चित्र-रचन स्वप्न-रचन प्रत्यक्ष-दर्शन मृग-भक्षण आदि से आभय के रूप में आत्मन्त्र के स्वरूप की विज्ञासा होती है। यही उसे प्रेरित करती है कि आत्मन्त्र का सान्निध्य उसे प्राप्त हो। सान्निध्य (सर्वात्म्य या काव्यनिक) प्राप्त करके स्वरूप-बोध होता है। बिना स्वरूप-बोध हुए सम्बन्ध-स्थापना की कामना न जपती है और मयनपती है। कामना जब गहन राग या वासना का रूप से सेती है तब सम्बन्धानुभूति बन जाती है।

आत्मन्त्रगत उपकरणों से आकर्षित होकर ही आभय में विज्ञासा उत्पन्न होती है। ये उपकरण हैं पारिरीक रूप-मुपमा परिचाम प्रसाधन कमकुल स्वभाव चट्टाई आदि। दूसरे उपकरण हैं बाह्य परिबन्ध आदि। काव्य में उन्हें ही उदीपन कहा जाता है। सम्बन्ध बाध या सम्बन्ध-वस्था हो जाने पर सम्बन्धानुभूति होने लगती है। ये उपकरण उस रामायणक अनुभूति को और भी तीव्र करते हैं। इन उपकरणों को दो भागों में रखा जा सकता है—प्राकृतिक और स्वनिर्मित। यही विभाजन-व्यापार कहा जाता है। आत्मन्त्र आभय के सम्बन्ध-बोध सम्बन्ध-रूपता सम्बन्धानुभूति विज्ञासा को भावना-व्यापार कहते हैं। दोनों के विस्मरणक चित्रण का अभिव्यंजना शिल्प या कलापदा।

महाशेखरी का त्रिप परोक्ष भी है प्रत्यक्ष भी। अतीन्द्रिय अपाचर होते हुए भी इन्द्रियव्यय है। वह सूक्ष्मातिमूर्धम है और बोधरागोचर ब्रह्माण्ड-विस्तार के अणु-अणु में व्यापक बिम्ब भी। उसका स्वरूप बहुत-बुद्ध करीर के ईतार्थत विस्तारय गुण वाले कल्प के समान है। रति का आत्मन्त्र होने के कारण वह निर्गुण निर्बोधोप नहीं रह पाता। उसे पारिरी कल्प में प्रत्यक्ष नहीं बिना जा सकता। उगक प्रति विज्ञासा का उदय होता मूर्च्छि-विस्तार के दर्शन में उसके मानक प्रवेगी अमापाण्य अमाताम्य और अनुपमेव मौल्य के प्रतिबिम्ब को देगाए उसके सीम्यं-भार-वेचन की प्रतिबिम्ब को अनुभव करके।

जबते ही तैरा मरुत बाध।

दहते कप कप से पूट-कूट

दपु के निरार-नी सत्रन याव।

इत कनकरिमियों में अपाह
 मैता हिमोर तम-तिषु जाग ।
 बुद-बुद सबह जलते अपार
 जलमें बिहियों के मधुर राग ।
 बगती प्रवाल का मुकुल कूल
 जो छितित रैज जो कुहर-स्ताल ।^१

यह सुकुमार प्रभात की सुयमा-स्वर्णाम प्रथम मलक का शाक्यव चित्रण है । काव्य विस्वी ने प्रथम अक्षर मूर्ध् रश्मि को बाण के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है । यदि किसी रम-सम्पन्न पदार्थ (रसमयी अंगूर आदि) पर टापघात किया जाय तो उसमें रस रस फूट पड़ेगा । उस रस-पदार्थ की राशि को बेश दिया जाय तो निरक्षय ही रस की घाराएँ बह निकलेंगी । सृष्टि के कण-कण में लबालब रस भरा है । किरण-बाण क लमते ही बह फूट-फूट बह निकलता है । रश्मि-बाण सिद्ध होकर कण-कण से बह नहीं बह निकलता । जिसका पीन से आस्वादन किया जाय बस्कि मधु के भरने के मान बह निकलते हैं । प्रथम किरण के भरती पर आते ही भरत मुजारने लगते हैं, बिहिन कसरत कर उठते हैं । पूजाघरों में अर्चना-गान गूंज उठते हैं—लयता है कण-कण से दौढ मुखरित हो खड़े हैं । पारों ओर संवीत मुनकर कल्पना भी जा सकती है कि कण-कण में संगीत भरा था—यहाँ परिणाम से तप्य का अनुसन्धान हुआ । 'सजस' विशेषण से प्रभावशीलता और अभिसिञ्चन पीनता को पुष्पों को गान में स्थापित किया गया है । गान में आने बड़ने प्रसारित होने और मानस को बुबा देने के जुग होते हैं । एक बात और संघर्ष या टूटने से सन्द उत्पन्न होता है । किरणों के आपात से कण टूटते हैं तो उनमें धरद बिलोटो सिद्धास्त के अनुसार उत्पन्न होगा ही ।

किरणों के उदय होन से पूर्व अन्धकार की तह-सी बनी रहती है । सम्पूर्ण चराचर पर सुप्त मनुष्य के समान अक्षय कियाहीन अङ्गबन् तम-तिषु फँसा पीघटा है । सब है किरणों तारों के रूप में जँघरे पर पुष्प-पुष्प नहीं पड़तीं । प्रकाश के रूप में पड़ती है तो भी किरणें हैं पुष्प-पुष्प ही प्रकाश-तारों या भागों के रूप में । सकयता की भाँपों में ऐसा ही वृक्ष उतरता है कि अन्धकार क आवरण पर किरणें जलन जलय पंज रही हैं ।

सब झिलमिलाती किरणों के बीच-बीच में तम-कानिमा कौपरी-सी मामूम होती । रश्मि आलोकित मास ऊपर उठा हुआ और अनालोकित कला भाव मोचे दशा हुआ मामूम होगा । तरंगित समुद्र में ऐसा ही वृक्ष देखा जाता है । सहूरें ऊपर उठी हुई और घेप जल नीचे खूता है । किरापीलता-कम्पन ही आवरण है निरतरपता अङ्गता भी नीन । किरणों के पड़ने से तिमिर-समुद्र तरंगायित मामूम होता है । अवा क उदयकाल में पूर्ण प्रकाश नहीं होता आलोक-तिमिर मिले-जुमे-से खूते हैं । ऐसे ही समय बिहप जहजहूते गते हैं । बिहक-स्वर्णों से ही अर्धनिद्रित प्राणी तिमिर-आलोक-विधित समय (परेमी कर्ने के समय) का आभास पाते हैं—ठीक इसी प्रकार जैसे बहने बु-बुनों से समुद्र के तरंगायित

होने का । ललित तम—सिंधु के तट हैं जा प्रवाल (सूर्य) के मंगल भीनी अरुण आमा से रेंब जाते हैं । सूर्या कमकीला मास महीं मडिम मास हांठा है । दोनों म मयार्य बमं-साम्य म्पापित्त हुआ है । मभी उपमानों का बुनाब कमान का है । यहाँ इतना और वह देना आनन्दक है कि बिना बसंतकामीन ऊषा क उदय का है । मुबह पाँच बजे यह दूरम फिरी बिरुन गमनन मीदान में जब सूर्य ललित रैला से किमसयों का परा उठाकर मीक र्हा हो प्रपत देला जा सकता है ।

प्रकृति के असीम विस्तार में वह अतीन्द्रिय सुयमा का सबासध प्बार उमड़ता देवती है । उलीक कालाकरण में साबिका ने हृदय में रति मास आकुस हो उठना है । उम्माद की र्गा में बिरहिनी उसे पत्र मिसना चाहती है ।

कैसे लंदेस प्रिय पुरुषाती ?
 हृदयम की तित मति है अक्षय,
 मति प्याती भरते तारक हृय,
 बल-बल के उड़ते पृष्ठों पर,
 गुबि से मित इबासों के अक्षर
 में अपने हो देसुपपन में,
 सिक्ती हूँ कुछ, कुछ मित जाती ।

भाँजों में अरुण अशु-बस की स्याही मरी है मकिन वह मउदेर है मकर कागज पर मउद रवाही से मिला आम तोन सैलक ही पड़ सकेगा न पाठक । माप ही पत्र-पुष्ठ लमातार अशु बरमने से इतने भीय आर्यो कि सब मिका-मिन्काया पुन आया । बिरह रगा की बेलाबी में साँसों की गति बहुत तीव्र हो जाती है । हर मौस भाषा-रचना से तीव्रता से नीन है भावाबेय में मिसना बहुत है । एक महीं पृष्ठों का भी अनन्त मग्धार सेमिका के पास है लेकिन दासों की मति इतनी तेज है कि प्रत्येक साँस का उच्छर् अंकित होने में बहुमे ही अनन्त पत्र-पुष्ठ ठेकी से उड़ जाते हैं । समक की गति-तीव्रता अमाप्य है तब मन्म मही रूप में कैसे तिला आव ?—अममम । प्रत्येक पत्र-पुष्ठ अमाप्य तीव्रता से उमी की ओर उड़ा जा रहा है तो कुछ-का-कुछ जो भी मिला जायगा उसके पास पहुँच जायगा । शक्ति-अधमिण अस्पष्ट अशु भीन बिरह-वेतार बेना-दाय मुनस मीन प्रत्येकदाय पर मचित होंगे । मही मगर बिरहिनी के हृदय को मही अभिप्यक्ति से । उम्माद देकुपी छपरदाट बेवसी अक्कायहीन भावाबेय की र्गा में माया की सही रचना बनी हा हो महीं सक्ती । पत्र-लेखन-रगा का एक उपरिपन करने सेमिए स्याही रनात लमनी कागज मगर के लिए जो उपमान उररिबन बिदे मय है हिन्नी में के अनन्त है । रहमवादी अभिप्यंरना का इस मन्म में यह आर्ण मपूना है ।

महादेवी क नाम्य में रूपकों का मयूद मग्धार मय है । बिरहमाधिरा होन क कागज बिरह-मग्धनी एक अधिक लंब्या में है—और भावीकपकारी भी है । इस मन्म

में 'विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात' १ 'प्रिय सांगम्यपवन मेरा जीवन' २ 'धमन में धापमय बर हूँ' ३ 'मैं नीर-भरी बुल की बबली' ४ 'दीपशिखा' के पाँचवें गीत का तीसरा पद^१ और अठारहवें गीत के अन्तिम तीन पद^२ देखे जा सकते हैं। ये हैं सांगम्यक। निरंवरूपक तो प्रत्येक पद में मिल जाएँगे। वहाँ प्रकृति का भीविकृतकरण करने के लिए मानव अवयवों को गिनाकर उसका घरीरी रूप-गठन करने के लिए या स्वयं को प्रकृति पर आरोपित करके उसका घरीरी रूप उपस्थित करने के लिए रूप-विधान किया गया है वही महात्मेवीजी उठनी ही असफल रही है जितनी वह भावप्रधान अनुभाव प्रधान आत्मनिवेदन प्रधान और दूरम प्रधान रूपकों में सफल है। इस सम्बन्ध में 'धीरे-धीरे उतर झिल्ल से मा बसुन्त रजनी' ३ 'ओ विभावरी' ४ 'शुभ्य मन्दिर में बनीं गी आन में प्रतिमा पुग्दारी' ५ 'मैं बनी मनुमान आमी' ६ आदि रचनाएँ देखी जा सकती हैं।

इन रूपकों में कही तो बर्तमान रूपसाम्य स्थिति साम्य का अभाव है, वहीं घरीरी रूपसाम्य का अभाव। इनमें से कुछ की समीक्षा प्रतीक-विश्लेषण के अन्तर्गत कर दी गई है।

नाम्य और व्यावहारिक जीवन में उपमा का प्रयोग सर्वाधिक होता है। इसका प्रयोग जितना सरल है, उतना ही कठिन भी। कठिन इसलिए कि एक ही उपमान से व्यापक बर्ण-व्यापार इससे होता है। ऐसा उपमान तत्साध करना जो रूपक प्रतीक या व्योम्बित के समान व्यापक बर्ण का अभिव्यञ्जक हो अत्यन्त पैनी विस्तारदर्शी प्रबुद्ध प्रतिभा की ही सामर्थ्य है। सर्वोत्कर्षकारी उपमान वही कहलाएगा जो भाकार, रूप बुभ भाव क्रिया प्रभाव की दृष्टि से अतीत वर्तमान और भविष्य को भी अपने में समाविष्ट किये हो।

कुछ उपमाएँ देखिए—

शोष-सा मन धुल चुका अब
बीप-सा तन जल चुका है।^{११}

जब मेरों को रोता था
जब जातक का जालक मन।

मेरे मन जालझिड़ी में
लंबीत मधुर बन जाता।^{१२}

व्यक्ति-से विस्मित-से दुग बाल।

जकारण यह शैशव-सा हात।

- | | |
|----------------------|----------------------|
| १ यामा पृष्ठ १३५। | २ यामा पृष्ठ २३। |
| ३ यामा पृष्ठ २१५। | ४ यामा पृष्ठ २२७। |
| ५ दीपशिखा, पृष्ठ ७८। | ६ दीपशिखा, पृष्ठ १०। |
| ७ यामा पृष्ठ १३०। | ८ यामा पृष्ठ १६५। |
| ९ यामा पृष्ठ २१२। | १० यामा पृष्ठ १३८। |
| ११ दीपशिखा गीत २३। | १२ यामा पृष्ठ ८४। |

तरंगों से हृत पर मुकुमार ।
मुकुर-से तेरे प्राण ।^१
बिहग शाबक-से जिस दिन मुक
पड़े से स्वप्नतीड़ में प्राण ।^२

मोम छनिक-से ताप से पिघल जाता है । बिच्छू-सन्ताप से मन पिघल गया है । मोम का कोई पदार्थ (बत्ती) जब पिघलता है, तब पिघले मोम की मोम-मोम बूँदें रपटती दीसती हैं । सारा मोम पिघल जाने पर बूँदें पिघल हुए मोम में विलीन हो जाती हैं । यारा मोम इतित तरस स्निग्ध पदार्थ बन जाता है । मन भी ऐसा इवगणीत तरल पदार्थ बन गया है । अब सन्ताप इतित आसू भी फिलसते नहीं आते । 'मोम-सा मन घुम चुका' में व्यंजना से सन्ताप-से आश्रित्य मन की इवगणीलता प्रिय-साधना में सन्तुर्न बिनाप— इन सबके बिना भी प्रिय की निष्कुरता प्रेयसी की एकांतनिष्ठ और प्रिय के प्रति कदया का अनुरोध समया है । दीप के सम्बन्ध में भी यही समझिए ।

'जातक का बालक मन' 'मन बालशिली' 'दुग्धमा' 'शैशव-सा हास' 'बिहग शाबक-से प्राण' में बापक और शैशव से उपमान प्रयुक्त हुए हैं । बालक और जातक का दृढ संबंधित है । बालक जिस बात पर अड़ जाय मनबाकर ही मानता है । जातक भी स्वाति-जल पीकर ही शैन सता है । बालक अबोध होता है । साधिका का अबोध मन-भोर भी आत्मजन स्वामयन को देखकर या उठता है । आत्मजन के सुधमा-प्रभाव शीतलता यान आशय के मन की सुधता की व्यंजना 'बालशिली' में है । बालक भोग होते हैं । प्रोढ़ी-भी विलसयता अगाधारणता असामाय्यता पर बिस्मित-अकित हो आते हैं यहाँ बालक से स्वाभाविक भोषेपन अपमता और सुधता को आँशों में स्थापित किया गया है । बिहग-शाबक से भी प्राणों की अबोधबाबस्वा शैशव निष्क्रिय परिबिबद्ध अबस्था की व्यंजना की गई है । शैशव से सिधु की स्वभाव-निर्मलता निष्कपटता स्वच्छलता मबुरता मुकुमारता शीतता लघुता का अर्थ लिया गया है । इन उपमानों में पदार्थ से सुध-स्वभाव सुध-स्वभाव से क्रिया सागर से निराकर, निराकर से भागर, अमाम्य से साम्य की व्यंजना पूरी सफलता से हुई है । साब ही ध्यान देने की बात यह भी है कि एक शब्द (बालक) किन्तु विभिन्न अर्थों का बोधक है ।

कवियत्री की अभिव्यंजना में भाव-विशेष^३ या स्थिति-विशेष की मूरमता^४ जिन

१ यामा पृष्ठ १२६ ।

२ यामा पृष्ठ १०५ ।

३ प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आना अपचार ।

मेरे निबिषों से भी नीरव है उसकी वरचाय ।

यामा पृष्ठ १०७

४ बोड़ा मेरे भावत-ते धीमे पन-सी निरटी है ।

यामा पृष्ठ २६

गुण-स्थापना ^१ विपरीत और विरोधी स्वभाव-समावेश ^२ विपरीत परिणाम ^३ विपरीत क्रिया ^४ उक्ति-बद्धता ^५ सत्ता, ^६ व्यक्तता भावि सभी प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं ।

अद्वैतवाद की भाष्यात्मक अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है । अद्वैतवाद के अनुसार आत्मा अंतः परमात्मा अंतः। माया के व्यवधान या विभाजक-कर्मों के द्वारा परमात्मा से आत्मा अलग हो गई है । ज्ञान या प्रेम-साधना से आत्मा फिर परमात्मा में मिल जाती है । दोनों का सम्बन्ध समुद्र और सहर के समान है ।^७ परमात्मा और आत्मा की एक-व्यवस्था को कश्मिनी ने बनेक उपमानों द्वारा व्यक्त किया है । इन्होंने सर्वाधिक सूर्य और शीपक को लिया गया है ।^८ परमात्मा को बिजु, जसउजि ऋतुराज निद्रा ज्योतिर्विस्तार, प्रकाश ज्वाला बाहल और आत्मा को रश्मि उजि, मधुभी स्वप्न ठारक उताप बिजली के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है ।^९ सूर्य और शीपक की सम्बन्ध-कल्पना को छोड़ कर शेष उपमेय-उपमानों में कोई नवीनता नहीं पुराने रहस्यवादी और भक्तों ने भी प्रायः मयवान् और भक्त साध्य-साधक और प्रियतम प्रेयसी का अक्षर सम्बन्ध इन्हीं प्रतीकों के

१ कय बनी धनु बतिका हर स्वर जला बन ली सजीली ।
कंसती आलोक-सी झंकार मेरी स्नेह-बीली ।

शीपसिखा गीत ५

२ ज्वाल का मोती लेंजाले मोम की यह लीप ।
सृजन के रात राग बामे प्रसन्न शीपापार ।

शीपसिखा, गीत ४

३ प्यास यह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष में
प्रसन्न बनकर शीप बन जाता निरा के शेष में ।

शीपसिखा, गीत १७

४ धर हुए, दुःख में मधु भरने
तपे प्यास का मातृच हरने
इससे बुलकर बूल भरे खने उजले निखरे ।

शीपसिखा, गीत १०

५ स्वजन स्वर्ण कंस न जो ज्वाल बोया
यह उड़ते लख बुलक मरे हूँ
सुखि से सुरमित स्नेह बूले
ज्वाला के बुम्बल से निखरे हूँ

शीपसिखा गीत १२

६ जीवन पावस रात बनाने सुखि बन जाया कौन ।

शामा पृ० १११

७. शामा पृ० १४ ।

८. शामा, पृ० १४१ १४६, शीपसिखा गीत ४२, ४५, ४६ ।

९. शामा, पृष्ठ १ ३-१०४ ।

द्वारा सिद्धाया है।

अप्रस्तुत-विधान में सर्वाधिक भावामिष्यक प्रतीक है। अय-मग्नता और अभिष्यन्ता की दृष्टि से इसकी समता की जा सकती है, तो अत्योक्ति से। प्रतीक म अय इसी प्रकार समया है जैसे बीज में। बूल की टहनियाँ पत्तों फूल और फल आदि। प्रतीक भी धर्मसाम्य को अभिष्यन्त देने में जितना अधिक समर्थ होगा उतना ही वह काम्य के लिए उपयोगी होगा—प्रतीक (प्रति + इक) का अर्थ है और झुका हुआ। अभिष्यन्त की सुबोधता-दुर्बोधता का ध्यान रखकर प्रतीक-कल्पना की जाती है। आत्मन और आत्म्य साकार होने पर भावन और विभावन-व्यापार को अभिष्यन्त करने के लिए प्रतीक-विधान की आवश्यकता कम पड़ती है। आत्मन मूहम पराग निराकार होने पर रहस्यमयी अनुभूति भी बन जाता है। तब तो प्रतीक एक अनिर्धार्य उपकरण हो जाता है। भावन और विभावन दोनों व्यापार सुदृष्ट—रहस्यमय बन जान पर उन्हें प्रतीकों द्वारा ही प्रकट किया जाता है। यही कारण है, निर्गुण माधुर्य भक्ति में जो प्रतीक-विधान मिलता है वह सन्तुण भक्ति या शौकिक वाक्य में नहीं।

महादेवी की काम्य-साधना का आत्मन है परोस या मूहम। उनकी साधना रहस्यात्मक है। तब रहस्यमयी अनुभूति या व्यापार को अभिष्यन्त देने के लिए प्रतीक पद्धति का आचार सेना ही पड़ेगा। मैं समझता हूँ कबीर के बाद हिन्दी में दो ही काम्य साधक प्रतीक-विधायक हुए—प्रसाद और महादेवी। कबीर ने प्रतीकों में जो अटपटापन बर्ष की दुकहटा अभिधा का बहिष्कार और बर्ष का बसात् समावेश है, वह प्रसाद और महादेवी में नहीं। महादेवी क प्रतीक तो और भी स्पष्ट है—अभिषाघ को धेयुली ने नहीं छोड़ते। साध ही वह एक प्रतीक प्रस्तुत करके उसके सभी धर्मों का उल्लेख करके सांग रूपक भी प्रकाश कर देती हैं। तब तो दुर्बोधता रहनी ही नहीं।

प्रतीक-रूप में महादेवी की न दीपक का सबसे अधिक प्रयोग किया है। जैसे तुलसी के प्रेम या भक्ति का आदर्श है चातक और कबीर के प्रेम का आदर्श मनी और मूरमा जैसे महादेवी की प्रेम-साधना का प्रतीक है दीपक। चातक विरहमग्न विधायक बनप्पाम के कवचा-वारि के लिए छापटाटा है, बर्षा ओसे तूछन की परबाहू नहीं करता, दीपक उस आलोक-विण्ड मूय की साधना करता है जिसका जड़न बाण चुभते ही कप-कप म मधु के निर्मूर-में मजल गान वह निकलते हैं।

दीपक अपने ही हृदय के अक्षुण्ण स्नेह में तिल-तिल जलकराग्न होता जाता है। ता भी प्रतीका-यच को अपने स्वचिम प्रकाश में अतिरिचित करता रहता है। मयन अम्बहार से पद अतीत और पुहासे के समान भुंयता भविष्य। पीछ मीटना अमग्नब और भाग बढ़ने में प्रकाश-वरीता तो भी उत्तान तर्रों में ठहरता बावियों के आधान मरुता अमीम की और अग्रसर है। तेमे बैपड़क प्रेमी से ही प्रेम की रीति सीरी जा सकती है।

सार होता जाना है गाल
 बैरनाओं का होता अमल
 किन्तु करते रहते हो धीन
 प्रतीका का आलोकित बंध

सिखा हो ना मेही की रीति
 बनोछे मेरे मेही बीप ।
 कुहरे-छा बुंपला मबिध्य है
 है बतीत तम घोर ।
 कौन बता देगा जाता यह
 किस बसीम की भीर ।^१

आरम्भ में दीपक का जो विकल्प हुआ है, देखने में यह आत्मभक्त-सा लगता है
 लेकिन यह है कुछ रूप में प्रेरक प्रकाश-वर्षक प्रेम और साधना का आदर्श या बुध ।
 इसलिए यह उदीपन-रूप में प्रस्तुत है । साधनामिमापी विज्ञानु बनकर कल्पितो उसके
 स्नेह की रीति सिखाने का अनुभव करती है—'सिखा हो ना' में एक प्रकार का ऐसा
 अनुरोध और विज्ञानु का विमु-मुमम मोसापन है जिसे व्यावहारिक बरेनु भाषा में
 'निहोरा' कहा जाता है । अपने आत्मभक्त का आमास पा जाने उसके बिच्छ की अनुभूति
 करत उसके प्रति अकम्पित विरक्तन प्रेम हो जाने पर साबिका स्वयं दीपक बन बुप-मुम
 तरु बनने और उसके हाथ से कुछ जाने की कामना करती है ।

बीप-सी मुम-मुप बनू

पर यह मुमग इतना बता दे ।

कूक से उठनी मुमू

तब जार ही मेरा पता दे ।^२

प्रेम-साधना के एकमात्र लोक में बिच्छ-बिप वचन के बीहड़ म सम्नाटे के निर्भ
 में मिच्छा के शून्य निमय में माव-बीप के कल में पहुँचकर छाबिका का हूषन (आत्मा,
 विरक्तन स्नेह-मुम बीपक बनकर बनने लगता है । प्रियतम के पक्ष को आठोंमाम आभोक्ति
 करते रहने के लिए साधना का बीपक बतायी रखती है—न जाने कब आ जाव ।
 निहुरते पुमकते मुसकराते मद-बिह्वल हो नूमते मोले-मासे बीपक को जतायी रखती
 है । उन्हें समझती है—

तारे बीतल कोमक नूतन

माप रहे तुम्हरी बबाला-कन

बिषक-गलम तिर बन कहूत, में

हाय न बन पाया तुम में मिल ।

सिहर सिहर मेरे बीपक बन ।

मेरी निहवाछी से इततर,

मुमब न तु मुमू का भय कर,

१ (नीहार) माया पृष्ठ ५३ ।

२ (रविम) याया पृष्ठ ७८ ।

३ (सात्म्यबीत) याया पृ० २३७ ।

मैं अंचल की ओट किये हूँ,
 अपनी मूढ़ पलकों से अंचल ।
 सहज सहज मेरे दीपक जल ।

तम असीम तेरा प्रकाश बिर,
 जेहमे नख जेल निरंतर
 तम के अणु-अणु में विद्युत-सा
 अमिट चिप अंकित करता बस ।
 सरस सरस मेरे दीपक जल ।

तू जल-जल कितना होता भय
 बह समीप आता उत्तनामय
 मधुर मिलने में मिट जाता तू
 उस ही उच्छ्वल स्थित में घुल जाता ।^१

साधिका की प्रेम-साधना की बिरह-ज्वाला से आलोकित जिस दीपक से प्रेम बिरह-साधना की चिनगातियाँ पड़-बेतन मधीम निर्बल साधक भाग रहे हैं। फिर पुन पुन तड़प-तड़कत बेनाह होकर मायामिच्छ प्राणी उस प्रेम की आग में न जल पाने के कारण—बिनी बिरह-साधना न कर पाने के कारण पछलाकर रह जाता है उस साधक दीपक का क्या कहना ! यह आश्वासन कि साधिका उसे कुमने न लगी—सबल समस्त अक्षय मिला अक्षय आस्था क अक्षय उस ओट किये है साध ही उसके टाप होने से ही अक्षयमय उससे आ मिलेगा तब कील-सा दीपक है जो हँसते-हँसते न जलता रहे ? आगे चलकर साधिका स्वयं दीपक बन जाती है ।

हालभ में साधमय बर हूँ
 किली का दीप निच्छुर हूँ ।
 ताम्र है अमती मिका
 चिनगातियाँ मूक़ार माता
 ज्वाल अक्षय कोव-तो
 अंगार मेरी रंगमाला
 आग में अोहित किली की साध सुन्दर हूँ ।^१

दीपशिखा में महादेवीजी विविध दीप-रूपों में उतरी है। 'दीपशिखा' उनकी अनगिन अक्षय साधना की प्रतीक है। 'दीपशिखा' से एक चौलाई पीठ दीप की साधना क विभिन्न रूप उपस्थित करते हैं। कभी उच्छ्वलित लुकायी समुद्र उमड़ती लगी। कभी दीपकी विभिन्नियों प्रकल्पित दिगार्थ उनके साधना-दीप क लिए अंगन-नाद गाता है। कभी आकाश पड़ित तारा के मुद्रित मयन मनसुमाने ध्वज उमलत आधी बद्धनी बिजली की दूर

१ (बीरबा) पामा पु० १४५, १४६ ।

२ पामा, पृष्ठ २१८ ।

३ दीपशिखा मीन १ ।

कम्पी पक्षियों में बुझे दीपक जसा कवयित्री दीपक रागिनी गाती है। कभी भारतीय-वेसा समाप्त होन सस पक्षियास बड़ी-बीणा के मन्त्र पढ़ जास प्रजन मिरां व विसर्जित हो जाने पर भयंकर भ्रंशभात में 'ज्योति का यह लघु प्रहरी पुकारी बनकर जागता है' कभी यह योबूमी को दीप बनाने के लिए कहती है 'रात किननी बीत चुकी किठनी दीप है इसके जानने की कामना नहीं वेजस जसना ही उसकी माधना है।'

में क्यों पूछूं यह विरह निरा
किठनी बीती क्या रोप रही
उर का दीपक फिर स्नेह अतल
मुझ लौ तल संभा में निश्चल
सुख से भीनी दुःख से गीसी
बार्सो सल अशेष रही ।'

साधक भारता का पूर्व स्वरूप जैसा दीपक के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त होता है वैसा सतत भातक बकोर कमल कुमुदिनी मछली आदि ऐनहीं। रहस्यवादी काम्य में तो और भी नहीं। दीपक स्नेह (तल) और साधक स्नेह (प्रेम) में अंधेरी रात (विरह-वेदना-तिमिर आवृत) भर जलता रहता है। बोना ही जलकर अन्धकार (अज्ञान मत्ता) को मष्ट कर पय भागोकिठ करते रहते हैं। दीपक में दीपक जलता है और साधक अन्य साधकों में विरह जितगारी जलता है। दोनों ही तिम-तल जलकर अघी सूर्य और परमात्मा के निकट पहुँचते हैं। दीपक की ज्योति अपने अंधी ज्योति के अगन्त सूर्य और पिच्छ में और साधक की आत्मा परमात्मा में मिलीत हो जाती है। दीपक ली जसाए रहता है साधक ली लयाए रहता है। स्नेह, भी और ज्वासा ने दसेप द्वारा भी दीपक को साधक का सच्चा प्रतीक बना दिया है।

दीपक क बाद ध्यान जाता है रात पर। बरुन्त रखनी 'रूपमि' 'मिन्न-यादिनी' 'दिमावनी' 'सुनेशिनी' 'सपने जगती आ' 'हल गीतों में रात को प्रतीक-रूप में रखा गया है। गीत संख्या १४ और ५ में प्रेयसी गीत संख्या २ में वास्तव्यमयी बननी गीत

- १ दीपशिखा पीत ५।
- २ दीपशिखा पीत १३।
- ३ दीपशिखा पीत १८।
- ४ दीपशिखा पीत ४२।
- ५ दीपशिखा पीत ३६।
- ६ (नीरजा) यामा पृ० १३।
- ७ (नीरजा) यामा नृ १४०-१४१।
- ८ (नीरजा) यामा पृ १३४।
- ९ (नीरजा) यामा नृ १६९।
- १० (ताम्यपीत) यामा पृष्ठ २४४।
- ११ दीपशिखा पीत ३२।

संख्या ३ में सुखी और गीत मन्था ६ में सूठी प्रेरक या पथशिक्षा बनकर प्रस्तुत हुई है।
गीत मन्था २ में कश्मिरी रात से अनुरोध करती है—

नत स्निग्ध लटों से छाये तन
पुस्तकित झुल्लों में भर बिदास
झुक सस्मित शीतल कुम्भन से
अंकित कर इसका मुहुस मास
दुहरा है ना यहला है ना,
यह तेरा शिशु अब है जबास ।

गीत मन्था ३ में कश्मिरी अनुनय करती है—रे मेरी चिरमिनन यामिनी मपन
विमिर बन फिर आ निनारे भी छिन जाएँ समीर को माँयों और हर्षिमार के मरन
फा भी रात्र म हा सहरे सो जायँ कमिशी न रोएँ आठक पी-पी न पुनरे कनोकि
भाज—

सीमित की असीम में चिर अब
एक हार में हों रात धन अब
सजनि! बिशब का कल-कम मुझ को
भाज कहेगा चिर मुहाविनी !

और गीत मन्था ६ में प्रातः के अभिषेक को 'हृदयुग सञ्जाली धा' का अनुरोध
है।

गीत मन्था १ और ५ में केन्द्रीय भाव एक ही है प्रथमी भावना को प्रिय
निगल क लिए प्रेरणा। १ और ६ में आत्मा को अभितार क लिए नैवार क्रिया आ रहा
है। ५ में अज्ञान की माया म मानी आत्मा की जगाया आ रहा है। सभी में प्रिय की प-
वास 'दुनाई' ली है।

गुणव्यभिचारिका मुग्धा बमलपत्रनी की शृंगार-मग्धा लिला—

हारकमय जब बैसी बरषद
दीप कूल कर दागि का मूतन
रसिम-वल्लय मित घन अर्गुटन
मुग्धाजल अभिराम बिठा है चिनहन स मयनी।
मनर की मुमपुर मूपुर ध्यनि
अनिमुञ्जित पद्यों की किकिनि
भर पद-गति में अन्त तरनिनि
तरन रजन की पार मग है मुहुस्मिन से सजनी।^१

१ मुन प्रिय की परचाप हो गई पुनक्ति यह मयनी।

प्रिय की परचाप मरिह या ममार रो।

दिवस की परचाप चकन आ रही है निवट प्रतिपद।

२ (मीरजा) यामा पृ० १३०।

पुनर्जित स्वप्नों की रोमाञ्चलि,
 कर में हो स्मृतियों की भञ्जलि
 मरुवाविल का चल कुकूल भ्रमि
 बिरछाया-सौ स्पाम बिजब को आ अभितार बनी
 सङ्कुचती या बसन्त-रञ्जनी।

उमर बसन्त-रञ्जनी का जो रमभोग रूप संपटित हुआ है उसमें अभिमार्तिका का कोई भी स्वरूप हमारी आँखों में चित्रित नहीं होता। फिरनों से बसय भीरों से समाविष्ट कमला से विदिपी तरनिनी से चरण स्वप्नों से रोमाञ्चली स्मृतियों से भञ्जलि का कोई आकार सामने नहीं आता। न फिरनों और न कमल हावों और कमर के चारों ओर निपटे रहते हैं। जिन उपमार्ता की कल्पना शृंगार-सज्जा के लिए की गई है वे सब विस्तृत अनन्त भ्रूक्षण्ड में बिखरे पड़े हैं। केवल आधिक धर्म-साध्य के कारण वे उपमेय-वर्म नहीं निभा सकते। बसन्त रञ्जनी की मारी-रूप कल्पना वैसी ही है जैसे केराब की पावस रञ्जनी की कामी या 'पंचवटी' की धिब या पार्वती के रूप की कल्पना। रञ्जनी का वैयक्तिककरण तो किसी सीमा तक घाटा हो सकता है पर सावयव रूप प्रस्तुत करना कल्पना का बहुत अच्छा उपबोग नहीं कहना सकता।

बीणा और तीर भी प्रतीक रूप में अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं। बीणा का प्रयोग कही कबिनिनी के निबो बीबन कहीं हृदय के अर्थ में किया है। 'जबेर बीन लेकर बिन्दरे तारों को जोड़कर पीड़ा का मार लेकर जगत् की ओर कैसे बाई ?' जब वह कहती है, 'तो उठी अर्थ को प्रकट करती है' जिसको प्रकट करने के लिए मूर न 'जबेर तरी' का प्रयोऽ किया। बीबन के बिन्दरे तारों को उठी ने एकम किया वही माने को कहता है।^१ साधिका के प्राणों का तार-तार ना उठता है।^२

बीणा श्राव बीबन (बिन्द-बीबन) को भी व्यक्त किया गया है। समस्त सृष्टि को बीणा की सखा ही गई है। वह जब कहती है 'इस बाहुपरनी बीणा पर खन भर या सेने हो गायक' तब साधिका के शरीर, हृदय और जगत का अर्थ व्यक्त होता है।^३ समस्त जगत सृष्टि या विद्यान भू-मण्डल का अर्थ व्यक्त करने के लिए नीचे की पक्षियां देखी जा सकती हैं —

तमिङ्गु निशीथ में से जाये
 गायक तुम बजनी जवर बीन
 प्राणों में भरने स्वर लीन।
 तममय तुपारमय कोने में
 छेड़ा तब बीपक राग एक।
 प्राणों-प्राणों के अन्दर में
 जल पडे तुम बीपक अनेक।

१ यामा पु० ४३, ७३।

२ यामा, पु० ६१।

३ यामा, पु० ६१।

४ यामा पु० १३२, १३३।

तेरे पीतों के वंशों पर
उड़ते बिन्दु के स्वप्न रीत ।^१

प्रलय की निस्तम्भ संज्ञाहीन बर्फीमी रात में नाद-बह्य का स्प्रेट हुआ। जड़ में जीवन का उदय हो गया। उसके दीपक-राग (चेतना-म्बर नाद-बिस्कोट) से अनेक बुझे दीपक जल उठे—प्रलय निद्रा में सुप्त आत्माएँ जाग उठीं। स्पष्ट है यहाँ नाद से सृष्टि के उदय का सिद्धान्त प्रतिपादित है। बीणा में स्वर है, भङ्कार है। स्वर ध्वज है भङ्कार कम्पन है। कम्पन ही क्रियाशीलता है अतना है, गति है। नाद भी गतिशील है। नाद अमर है। जीवन गतिशील है अमर भी है—अनादि है, अनन्त है। इतिहास भी नहीं जानता जीवन का आरम्भ कब हुआ। इसलिए बीणा को जीवन का प्रतीक मानना अत्यन्त उपयुक्त है।

प्रेम बिरह-बहना, प्रेमानुमूर्ति प्रेमबोध आदि को तीर के द्वारा अभिव्यंजित किया गया है।^२

तीर बुझने पर प्राणी पीड़ा से तड़पता है बिरह-वेदना (प्रेम-पीड़ा) से भी प्रेमी छटपटाता है। परिणाम या प्रतिक्रिया की समानता के कारण दोनों समान हैं। कबीर ने भी प्रेम को धर या हृषिकार इसीलिए माना है। इस कल्पना का मूल है मदन के पुष्पबाग।

दीपक के साथ ही दीपक-राग का सम्बन्ध है। कहा जाता है दीपक-राग गाने पर बुझे दीपक जल उठते हैं। तब दीपक-राग का साधकिक अर्थ होता है स्नेह और उन्मास स्नेह का प्रम चिन्ताई, भावना राग अनुराग और उन्मास का अर्थ है प्रकाश। प्रकाश का अर्थ है ज्ञान बोध चेतना आदि। दीपक राग को भी महादबीबी ने ज्ञान अतना और भावना का प्रतीक माना है। उस परम अतन पराग मत्ता में "तममय तुषारमय कोल में छड़ा तब दीपक-राग एक" तब "जल उठे बुझे दीपक अनेक"।^३ दीपक राग का उल्लेख दीपविद्या में कई बार हुआ है।^४ साधिका भीरतम को विहीण करने के लिए दीपक

१ (सांग्यगीत) पामा पृ० २४०।

२ बुझते ही तीरा बदल जाय। —पामा पृ० ६१

किस सुवि-बल्लत का सुमन-तीर ? —पामा पृ० ७०

रात के उर में दिवस को आहू का धर हूँ। —पामा पृ० २१८

बिप गया अज्ञान आब किसका मद् कठिन तीर ?

—दीपविद्या गीत २१

स्वप्नधर से साप के घन से लिया उर बेध।

दीपविद्या गीत ४।

३ (सांग्यगीत) पामा पृ० २४०।

४ जो ब प्रिय बहवान पानी ?

किस लिए हर लान में मैं सजल दीपक-राग पानी।

दीपविद्या गीत १६।

उत्तरवर्ती रचनाओं में इसकी अधिक अभिव्यक्ति हुई। कुछ के कथाबाह्य में उनके वैदना वचन को एक व्यापक वातावरण प्रदान किया। अपने आरंभिक काल में सम्भवतः बहु रज्ज्व-काव्य से और विदोप-उपनिषदों से प्रभावित रही। बहु संभव सांकेतिक व्यंग्यनाओं से भी काम लेती रही। उनके काव्य में सामाजिक अनुभूतियों की प्रायः अक्षयता हुई है। उन्हें एकांतिक और असामाजिक भाव-भूमि का कवि कहा जा सकता है। पर उनकी कृतिमा सूक्ष्म सत्य का इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण करती है कि सर्वथा उन्हे लोच-बाह्य हो जाने से बचाने रखता है। पर वे सब वैचारिक प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें मनन के द्वारा अपनाया गया जान पड़ता है। कठिनाई यह है कि महादेवीजी लोक-सामान्य भावभूमि की कवयित्री ही नहीं। कहीं भी मानवीय सामारज्यता अथवा स्वच्छन्दता को बहु प्रकट ही नहीं कर पाई। उन्होने माबोत्कर्ष और जीवनादर्श की ही बाणी थी। यह नारी की शाहीनता समय और सौपन प्रकृति का भी परिणाम है कि उनकी रचना की असामान्य भावभूमि सुस्थिर रही। अतः महादेवीजी की काव्य-प्रेरणा के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विकल्प हो सकते हैं, यथा—

१. बहु रज्ज्वबाह्य को न केवल व्यक्त करती है बल्कि वह उनकी जीवनानुभूति भी है।

२. रज्ज्वबाह्य उनके चिन्तन का विषय है और उनकी प्रतिभा न उसी का आरोप करते हुए उसे प्रकृत अनुभूति का स्वरूप दे दिया है।

३. कोई एक घटना जैसे सम्पूर्ण जीवन को आन्वोहित कर जाती है उसी सीति व्यक्तित्व जीवन का कोई प्रसंग या प्रभाव आन्वोलयन करता हुआ रज्ज्वानुभूति के रूप में स्थिरता पा गया है।

एक सीधा विकल्प भी हो सकता है पर मैं नहीं समझता कि महादेवीजी की विरह-वैदना को अवास्तविक कहा जा सकता है क्योंकि कृत्रिम अनुभूतियाँ महान् कला का निर्माण नहीं कर पाती। अस्तु, महादेवीजी को निरयथि विप्रसन्न का आवर्ष प्रत्य गीतिका कहना जा सकता है। निरयथ ही वह विरहावस्था आनेगमयी नहीं है। उसका वातावरण प्रशस्त है और अत्यन्त सूक्ष्म भी। बहु शान्त रस के आवेष्टनों में शृंगार का अभावित करती है। विदोपिनी की विविध मनोवधाओं का जहाँ-तहाँ चित्रण भी होता गया है। मैं कहूँगा कि सौन्दर्य और सात्विकता प्रथवा प्रेम और वैदुष्य को एक साथ प्रकट करने के कारण बहु न केवल प्रेमिका रह पाई है न केवल साध्वी। समय गुणोंको उन्होने स्वीकृत वस्तु बना लिया है। इसी कारण उनका रचना-कार्य एक पृथक् कोटिक्रम को निरिष्ट करता है।

इस विवेचन का क्या मह निष्कर्ष तो नहीं है कि महादेवीजी को रज्ज्वबाह्य कवि मान लिया जाय और प्रकृत अनुभूतियों के कवियों से उन्हें अलग रखा जाय ? बहु सत्य की चिन्तनता या अक्षयता का अर्थ भी अक्षय रखती है पर बहु जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा ही उसे अभिव्यक्त करना चाहती है। यहाँ बहु छायावादी मान-क्षय से पृथक् होते-होते भी बच ही जाती है। प्रकृति का सौन्दर्य जीवन का पु स और इनके प्रति आत्मीयता का भाव उनकी अनुभूति को अकाव्यात्मक परिच्छेद से पृथक् ही रखता है।

वह प्रेम की कवयित्री सौन्दर्य की उद्भासिका और करुणा की देवी बन जाती है। अबतक ही वह अपने रचना-कार्य में देवी अधिक है मानवी कम। आसय यह है कि उनका व्यक्तित्व समुन्नत और सुसंस्कृत ही नहीं है वह निष्कसुप अन्तर्बलि की बलाकार भी है। यह भी कहा जा सकता है कि मानवीय दुर्बलताएँ उनमें भी हैं पर वह अपने को प्रकृत रूप में कहीं उपस्थित नहीं करती। उनका व्यक्तित्व आचरणों से आच्छादित है अथवा अप्राकृत स्वरूप अपनाये हुए है। पर इस प्रकार के अनुमान के लिए कोई प्ररपक्ष आधार सुझा नहीं है।

उन्होंने अपनी बेदना को पाश्चि दुःख के अभाव से अनुस्यूत माना है। दुःख और अभाव का न होना क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के अनुसार क्या उनकी इस मानसिक स्थिति का कारण है? इसका सही उत्तर मनोविज्ञान के ही से मक्ये। मैं यही कहूँगा कि बेदना की मधुर अनुभूति महादेवीजी को स्वभावतः चाहे काव्य जान पड़ी हो पर दुःखवादी बौद्ध दर्शन के प्रभाव के रूप में उसे प्रह्वन अवश्य किया गया है। यही नहीं कवयित्री ने उस सोच-समझकर एक सिद्धान्तक परिपति भी दी है यथा—“दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा बाम्य है जो सारे संसार को एक मूक में बाँध रखने की क्षमता रखता है।” दुःख की यह तर्क-सम्मत परिपति मानसिक समक मान गयी है। उन्हें दुःख के दोनों रूप प्रिय हैं—यथा—“एक वह जा मनुष्य के संवेदनशील हृदय का सारे संसार से एक अविच्छिन्न रूप में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और नीमा के बन्धन में पड़े हुए मनीस बेतन का कन्दन है।” मैं समझता हूँ कि यहाँ ध्यायाभाव और रहस्यवाद के अन्तर को धन जाने ही मधित किया गया है। दुःख का पहला प्रकार महादेवीजी के गद्य में बाणी वा मद्रा है पर उनके गीतों में वह प्राकृतिक सौन्दर्य तक ही अधिक-से-अधिक अग्रसर हुआ पाया है। दुःख के दूसरे प्रकार की उनके आरंभिक गीतों में काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है पर उत्तरवर्ती रचनाओं में वह सर्वबादी दर्शन की व्याख्या या विवरण का आभास भी देता है। दुःख का दूसरा प्रकार ही महादेवीजी का मूल भाव कहा जा सकता है। उनके गीतों की यही स्थायी अन्तर्बलि जान पड़ती है।

अस्तु महादेवीजी की रचना प्ररणा है दुःख और वह भी वैयक्तिक यथाकि उनका काव्य प्रवीत शैली में रचा गया है त्रिमयी अन्तःप्रकृति ही स्वानुभूति की अभिव्यंजना है। स्वयं कवयित्री ने कहा है कि मेरे गीत धरा धारम-निवेदन मात्र हैं। अतएव दुःख के दूसरे रूप की ही व्याप्ति को प्रमाणित किया जा सकता है। यह विरयता अवश्य है कि इस दुःख को दार्शनिक पीठिका पर प्रतिष्ठित किया गया है और इस मद्दानिक परिपति ही गई है। दुःख के कारणों के सम्बन्ध में चाहे जो उद्घोष हो जाते हैं पर मानवीय दुर्बलता औचित्य आश्रित मानसिक स्पष्टता इत्यादि में यह बहरी भी संभव मान भी नहीं जा पाया यह तथ्य निर्विवाद है और दुःख-सम्मत भी।

महादेवीजी को अभी एक स्थान पर हम देवीजी कहेंगे। वह इस कारण कि उनका रचना-जान वहीं भी तौरिक आचरण-विकरण को सामान्य राग-रस के स्तर पर मही भा पाया। एका यह अप नहीं है कि उनका मन म जीवन की आरागा या नीरव्यं की गायता नहीं है। उनका दाम्य में तारीत्य या अरुं उभेय है। उनकी रचनाना न केवल आध्यात्मिक है वरन् मौखिक भी। उनका निरन्तर मानव की आचारणिक जागे

का पूर्णत्व और सत्य का माहात्म्यकार अथवा किन्तु मूढम भावों की चित्र-योजना ही है। निराशा पसामन भादि उनकी रचना के औपचारिक उपादान मात्र है। वास्तविक अध्यात्मवादी आस्थावान् होता है। अतएव वह आशा की स्वाम नहीं पाता। अथवा ही जीवन के संघर्षों को असार मान लेने के कारण कुछ अध्यात्मवेत्ता शाब्दात्मता की अक्षति में पसामन को काम्य मानते हैं। परन्तु ही आत्मोपलब्धि करने अथवा पर अपनी अमीय बरणा की अक्षय वर्षा भी करते देखे गए हैं। स्वयं महारेबीजी विज्ञातामयी हैं मुमुक्षु हैं दार्शनिक हैं या साधक इनसे हम कोई प्रयोजन नहीं है पर उनके काम्य में जीवन की चाह है और सीन्दर्य की लापता है तथा गद्य-साहित्य में उनकी कल्पना का व्यापक प्रसार हुआ है यह जानना ही पर्याप्त है। 'या मुमुक्षु ब्रूत जना 'रात व उर में रिक्त की चाह का शिर है' जैसे कथन उनकी जीवनावस्था का ही स्पष्ट करते हैं। स्वप्न में ही मूढम की उपलब्धि होती है शरीर शिर ही अध्यात्म का बोध होता है मूढ अथवा म हा अमूर्त चेतना आभासित होती है अतएव महारेबीजी को बुद्धवादी दार्शनिक या सर्वात्मवादी रहस्यवादी ही कहना कदाचित् अर्थसत्य का निर्बचन समझा जायगा। बस्तुतः वह जीवन के प्रत्यक्ष शोच्य और परोक्ष सत्य को एक साथ अग्रणी करे हैं। इन दोनों के साम्य का अक्षयय उन्हें काम्य है भय या विरोध का आक्षेपकार नहीं है मूढम अध्यात्मवादी या आध्यात्मवादी हैं पर वह अंधत मानववाद को भी अपना सही हैं। मानववाद की सीन्दर्य निष्प्र उन्हें प्रिय है पर उसका अक्षयवर्ती कर्तव्यवाद उनके गद्य-साहित्य में और विरोधत उनके जीवन में प्रत्यक्ष हुआ है।

महारेबीजी ने साहित्य की मूल चेतना और मुख्य प्रकृति को यहाँ स्पष्ट कर लेने का उपक्रम हुआ है। उन्हें छायावादी रहस्यवादी या मानववादी कह देना अथवा निराशावादी पसामनवादी या व्यक्तिवादी विरोध से संयुक्त कर लेना कदाचित् हमें साहित्यिक विरोध के क्षेत्र में अधिक दूर तक नहीं ले जा सकेगा। उन्हें सांस्कृतिक चेतना अथवा अज्ञानतत्वात् साधक-सुख-व्यापक साधक-अध्यात्मवादी दृष्टि-समन्वित तथा आत्मतत्वादी रचनाकार कहना कहीं उपयुक्त होगा। अथवा ही वह मीठ-कवि हैं रहस्यवादी विस्तार हैं और सीन्दर्य चेतना कलाकार हैं। न मानवीय अनुभूतियों का सतही स्वर्ग ही उनके काम्य में कहीं सुनाई पड़ा न ऐन्द्रिक आकर्षणों का अक्षयवर्ती लापता ही कहीं प्रकट हो पाया। वह उच्च मनोवस्था की गीतकार हैं। उन्होंने मानवीय अनुभूति को गरिमा और साहित्यिकता को बाणी भी है पर उसका आचार एकात्मता वैयक्तिक है।

२

हमारे सम्मुख यह प्रश्न समुपस्थित होता है कि वर्तन किस सीमा तक काम्य का उत्कर्ष-विधायक तत्त्व है और किस सीमा तक वह व्याप्य है? महारेबीजी का काम्य वर्तन से अनुमानित है। मैं समझता हूँ कि वर्तन कहीं तक आध्यात्मिकता का सहायक तत्त्व है कहीं तक वह उपारेय है पर जहाँ वह आध्यात्मिकता का स्थानात्मक तत्त्व बनने का उपक्रम करने लगता है कहीं वह अपनी सीमा को लाँच जाता है। महारेबीजी ने काम्य में अस्कारिता और मुक्ति दोनों हैं और मारी-सुखम भाव विह्वलि भी अतएव तत्त्व-वर्तन प्रायः काम्य को श्रीहृत नहीं कर पाया। वह इस अर्थ में उपारेय है कि उसके कारण

मानवीय अनुभूतियाँ संयत बनी रहती हैं। अव्यय ही दार्शनिक गाम्भीर्य के कारण यह काव्य यहन या गरिष्ठ हो गया है और एकान्त धारणों में ही भास्वामन करने की अपेक्षा रखने लगा है। कवयित्री इसे उपनिषदों का मर्म ठा दे मनी पर इसके काव्यत्व का सांस्कृतिक आशय नहीं निकार पाई।

महादेवीजी के काव्य की बढिनाई दूसरी ही है। वह लोक-सामान्य भाव-भेदनों के स्थान पर विविध मन-स्वित के वैयक्तिक भाव-विषय आसेलित करती हैं। उनके काव्य में मूर्धता सुकुमारता कल्पनामीन सजेतिवता आदि का प्राबाग्य है। वह अक्यात्मक रचना-कार्य है, जिसमें शोक-बीष में कल्पना-स्रवियाँ भूक जाती हैं। वह प्रतीक-बोधना के द्वारा ही प्रायः अपना काम चला करती हैं। पर अंततः यह कल्पनाही प्रवृत्ति है जो मर्मकृति को अवश्य बढाती है पर भावोन्मेष को बल नहीं देती। कथा-कथा रचना-स्यापार, मर्मकृतिपूर्ण छन्द-सिद्ध सांस्कृतिक पद-योजना और लक्ष्यविक्रि मृष्टि—ये सब मिसकर काव्य को क्लिष्ट ही बनाते हैं। भावों की सद्ब्र अभिव्यक्ति यही सम्भव ही नहीं रह पाती। इसी कारण महादेवीजी के रचना-कार्य को प्रायः आयास-भाष्य या अकाव्योचित माना गया है। मैं समझता हूँ कि परबर्ती काव्य में अहाँ सांगकपना की योजना हुई है अपवा एक ही कल्पना सम्पूर्ण गीत में मुक्तिवर रह मनी है अर्थात् जहाँ विषय असकार या भाव की अन्विति विद्यमान है वहाँ रचनाय काव्यात्मी के मा वान होने हैं। महादेवीजी का काव्य छायावादी काव्य-शैली की कृष्टि और सांस्कृतिक काव्य है पर जितना वह अमलारपुण है उतना सहज सबब नहीं। कवयित्री ने उच्च मनी प्रकार में असाधारण यहन-मग्नीर और सांस्कृतिक बनाया है। बुद्धि और भाषना दोनों के समाय से कला की मृष्टि हाती है और महादेवीजी ने इन्हीं के आचार पर अपने काव्य का पूर-स्रही कल्पन बना है। जो ही महादेवीजी का काव्य विविध है अरनी विमल आब है। उनमें उनकी बुद्धि की चारणा की प्रति रोनों तत्पर बर्तमान है—कथा बुद्धिवाद और कोमल मानवीय तत्व। पर वहीं-वहीं उनकी उक्तिमा अविषय मामिक हुई है।

आजक यह है कि महादेवीजी की काव्य-कला साभाव्य धेणी की नहीं है पर उनमें कतिपय शेष विद्यमान है। वह काव्य की बुद्धि ही नहीं अस्यान के अगतम तत् के जाती है और अपनी लयीला को जो वास्तव-अस्यन मनी स्वतंत्र चिन्तन है काव्यात्मक परात्म देनी बननी है अतः कविता तो यहन ही हो मनी है पर विवेचन भावना सबलिन जान पड़ता है। आशय बुद्धि और विवेचनय ह्यन सामान्य कवन के रूप में चार टिक जान बड़े पर इनका अन्वय निर्बाह लौकिक क्षेत्र में प्रायः कठिन ही होता है। महादेवीजी के तत् इसी कारण एकांगी व्याकरण या अल्प पूर्वता से संयुक्त जान परत है। उनके कवि-चन मानकर ही मन्त्रोय करना चाहिए। पूर मानवता या अर्थात् कवन की पारणा के से कदाचित् अधिक निवृत्त है। महादेवीजी की काव्य-अमीला और यौनि रचना का आनेतिक अहर है। उनके विचारों को निर्भ्रमि या पूर काव्य मान मने की का-

भावदयकता नहीं है पर वे इतन व्यापक है कि मतभेद की सम्भावना की एक सीमा तक विमुक्त है। अबस्य ही वह रहस्यात्मक गीति-काव्य छायावादी सौन्दर्य-सृष्टि और तद्गुमीन साहित्य-चिन्तन उपस्थित करने में विरोधता इतकार्य हुई है। वे अपने बुध की श्रेष्ठ और प्रतिनिधि कवि है। उनका चिन्तन का उस युग की बिभारपारा सं समीपी सम्भव है। उन्होंने न केवल साहित्य विज्ञा है पर में सम्भवता है कि उन्होंने उसे जिया भी है। वह एक व्यक्ति नहीं एक कवि नहीं एक युग है।

महादेवीजी की साहित्य तथा कला-सम्बन्धी विचारना का भावब विषय ही आदर्शवादी कौटि का है। उनका आत्मवादी दृष्टिकोण उनके समस्त रचना-कार्य में परिभ्याप्त है। यह रचना-कार्य न एकाग्रतः बौद्धिक है न पूर्वतः रागात्मक। मैं सम्भवता है कि विचारों के क्षेत्र में वह रागात्मक है और कविता के क्षेत्र में वह चिन्तक। मानवीय पूर्वता के लिए उन्हें हार्दिकता और बौद्धिकता का सामंजस्य अनिवार्य जान पड़ता है। उनके काव्य और समीक्षात्मक निबन्धों की यह सीमा हमें स्वीकार कर लेनी चाहिए। यह भी कह सकते कि कवि और विवेचक के रूप में उनका विस्तृत व्यक्तित्व ही प्रकट हुआ है। कुछ बौद्धिकता उगमें कम ही है अन्यथा उनकी रचना में शास्त्रीयता अधिक होती और प्रकृत रागात्मकता की उनमें स्पृणता है अन्यथा न स्वच्छन्द कवयित्री अधिक होती। उनका वच कवित्वपूर्ण है और काव्य संश्लेष कलाकारिता और बौद्धिक निष्ठा से भाँपूर्ण। अबस्य ही महादेवीजी की पूर्वत्व की यह कल्पना वैयक्तिक है और बहुत-कुछ निर्विकल्प भी। मैं सम्भवता है कि उन मन्त्रों के स्वानुमूल वर्धन का लक्ष्य निर्वर्धन नहीं कहा जा सकता। वहाँ स्वानुमूर्ति का स्वरूप विश्वास और निर्व्याज है पर महादेवीजी के यहाँ वह अतिरिचित है और बौद्धिक निबन्धनों से अपृषक। अतएव उन्हें चिन्तनशील कवि और भावुन समीक्षक सम्भवता चाहिए। अनुमूर्ति का आचार, कल्पना का वैभव जवका विचारों का प्रकाश उन्हें अभीष्ट अबस्य है पर मुख्य तो उनके चिन्तनशील कलाकार की उपर्युक्त पूर्वत्व-कल्पना ही है।

३

साहित्य और साहित्यकार एवं काव्य तथा कला-सम्बन्धी अपने विचारों में महादेवीजी ने सर्वत्र उत्कर्ष-विचारमित्री विचारपारा का परिचय दिया है। साहित्य सूत्रन व्यक्तियुक्त कवि भाव न होकर महत्त्वपूर्ण सामाजिक कर्म है” कहकर महादेवीजी साहित्य को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करती है तथा उसे बहुमुष्ठी दायित्व देने वाला रागात्मक कर्म भी मानती है। वह समझती है कि साहित्य व्यक्ति के लिए ही नहीं समष्टि के लिए भी सूत्रन निर्माण है जो सूत्रन की किसी बिच्छि श्चतु की परिधि में चलने वाली एक जीवन-श्चतु की ही श्रमा पा सकता है। मैं कहूँगा कि इस कघौटी पर उनका भाव्य निवेदनात्मक पीतिकाव्य किसी बड़ी सिद्धि को नहीं प्राप्त कर सकेगा। उन्होंने काव्य को चाहे श्चतु समझ हो पर वह किसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक दायित्व को धरिणाईता नहीं देगा। अबस्य ही उनका नाटीत्व शोच सर्वत्र विद्यमान है।

काव्य को महादेवीजी सर्वोच्च जना स्वीकार करती हैं। उल्य को उसका माध्य तथा सौन्दर्य को उसका साधन भी वह मानती है। उन्होंने सामाजिक दृष्टिकोण को अपेक्षा कृत बहुश्र बाव में ग्रहण किया है पर परवर्ती निबन्धों में एतद-विषयक उल्लेख मिसते हैं।

आरम्भ में बहु मानवतावाद के सन्निकट थीं इसीलिए यह कह सहीं कि "कविता सबसे बड़ा परिग्रह है क्योंकि वह विषय मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है। उनके ऐसे कथनों में अर्थवाद ही समझना चाहिए, क्योंकि उनका सम्पूर्ण कवि-व्यक्तित्व सूक्ष्म भाव चेतना में पठित है और उनके काव्य में व्यक्त जीवन के सन्तान प्रायः विरल हैं। उन्होंने सत्य के सम्मान-दीप्त लिखे हैं और प्राकृतिक वा सौकिक मौखिक को मात्र माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। माध्यम का भी महत्त्व है पर बहुसाध्य का समन्वय तत्त्व नहीं है। इसी कारण उन्हें काव्य-कला को हृदय तथा 'मस्तिष्क का सन्धि-पत्र' कहना पड़ा। उनकी दृष्टि में सत्य सुष्क है, पर अनुभूति मधुर जो सत्य को ज्ञानरूप से स्पष्टि कर देती है। सम्भवतः अनुभूति माध्यम और सत्य तीनों को इस प्रकार बाँटा नहीं जा सकता। अनुभूति मधुर क्यों है माध्यम सुन्दर क्यों है और सत्य सत्य क्यों है तथा इन तीनों में क्या सम्बन्ध है यह जानने के लिए एक ही मात्र प्रक्रिया को समझना होगा। कदाचिद् महादेवीजी के काव्य में दर्शन को अनुभूति पर आरोपित करने हुए उसे व्यापक सौन्दर्य में लभित करने का उपक्रम हुआ है। इसलिए जीव जगत् और परम तत्त्व का पृथक्करण कर लिया गया है। जगत् ही इस व्यापक सत्य का तत्त्वज्ञान उद्घाटित हुआ है। वह समझती हैं कि सुप्त प्रकृतक साहित्यकार तब वेदा होता है जब भावना ज्ञान और क्रम एक सम पर मिलने हैं। इस प्रकार के सुसंरचित मानसिक व्यक्तित्व की धारणा उन्मत्त है और कान्ही विश्व सुमनोराम और रवीन्द्रनाथ भी इस समय की मूर्धिका पर कदाचिद् पूर्णतः प्रतिष्ठित समझे जा सकें।

महादेवीजी जीवन की पूज्यतम अभिव्यक्ति के रूप में काव्य-कला को महत्त्वपूर्ण गणनीय हैं। उनका कथन है कि कलाकार का सत्य जीवन की कुलपता तथा सौन्दर्य दुर्बलता तथा क्षति पूर्वता और अगुमता सबकी सामंजस्यपूर्ण समात्मक अभिव्यक्ति है और उसकी अरुण मधुमता जीवन तथा विश्व में दिए हुए सत्य को सब ओर से स्पर्श कर लेने में निहित है। वह पारिवर्जक जगत् और अंतर्जगत् दोनों का समन्वय महत्त्व मानती हैं क्योंकि बाह्य जीवन की सीमा में बाधन-रैना लगने वाला भाव भी हमारे अंतर्जगत् की असीमता में पड़ने उड़ने बिना ही सकता है। अतः महादेवीजी काव्य-कला को सत्य की ही अभिव्यक्ति गणनीय हैं। पर सत्य बुद्धि और भावना के दो अद्भुतों से बिरा हुआ है। "भी कारण उन्हें 'काव्य-कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अर्थसमय' प्राप्त होता है। इन दृष्टि से वह अपनी स्थापनाओं का निर्वाह करती हैं कि उनके काव्य में पारिवर्जक सौन्दर्य के माध्यम में अगण्य सत्य की प्रतीति ध्वनित हुई है। कवि का वैयक्तिक सत्य यही है जिसे काव्य-कला का सत्य भी प्रतिबलित कहा जायगा। पर उनके काल में सत्य को स्पर्श करने की शक्ति ही है उस तब भारत में पर लेने का प्रयास नहीं। यहाँ सत्य ही पूज्य है अनुभूति नहीं और उसकी उदरस्थि के साधन भी नहीं। इसी कारण महादेवीजी के जीवन परिष्कारों का भी बाधा नहीं है और यदि है तो अल्प ही है। यहाँ जीवन की पूर्वता की नहीं पूज्यता का भी बाधना नहीं की गई। सत्य का बोध और ध्यान उनके प्रति अतन्त्र आक्रमण और अपना मोहित अभाव जो भावना का अभाव योप है अतन्त्र महादेवीजी के जीवन की व्याख्या है। निश्चय ही यहाँ जीवन की पूज्यता

नहीं है। वैदिक्य में तात्त्विक एकता की अनुभूति नहीं है। यहाँ केवल मृत्यु के पूर्वत्व में विद्यमान है और पार्थिव सौन्दर्य में उनका आश्रय पाने वाली अपनी अनुभूति पर नारी-सुजन अभिमान है।

महादेवीजी ने काव्य-कला की प्रतिभा और अनुकूल मानसिक घटन का परिणाम माना है। केवल अश्रमों को वह अनुपयोगी समझती हैं। साथ ही व पाक-हृदय की पहचान पर भी बल देती हैं। उनका काव्य उत्कृष्ट प्रतिभा और उपयुक्त मानसिक घटन का परिणाम भवस्य है पर उनकी कला में परिष्कृत-साध्य अस्तित्व मौजूद है। उनकी लोक-हृदय की पहचान अत्यन्त परिमित है। यही कारण है कि उनकी कला अतिशय व्यथित लिख है। वह लोक-सामान्य कविता की धेनी में नहीं जा पाती। वह एक विधेय मानसिक परतल पर काव्य-सृष्टि करती है अतएव उसका यथावत् आस्वादन भी उसी प्रकार की मन-स्थिति में सम्भव हो पाता है। उनकी कला सूक्ष्म और भास्वर है तथा उनकी चिन्तन-भूमि का आकार विशिष्ट और अपारिचित है। उन्होंने श्रेष्ठ और घातक काव्य के महत्त्व स्पष्ट करते हुए अपने काव्य की सोमाओं या विधेयताओं का स्वभाव कही निर्दिष्ट नहीं किया।

धर्म की साहित्यिक अभिव्यक्ति का वा काव्य-कला का क्या प्रयोजन है? महादेवीजी के अनुसार कविता हमारे व्यष्टि-सीमित जीवन को समष्टि-व्यापक जीवन तक फैलाने के लिए ही व्यापक मृत्यु को अपनी परिधि में बाँधती है। यह कथन एक ओर आध्यात्मिक काव्य की स्थिति स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर व्यापक कदम-भाव अथवा सहृदयता की आवश्यकता पर बल देता है। महादेवीजी की कविता निश्चय ही प्रथम कोटि की वस्तु है। इसी कोटि की संस्मृति उनके संस्मरणों में है। गीतों में नहीं। वह कवि के लिए यह आवश्यक समझती है कि 'वह सिद्धान्तों का पाषेय छोड़कर अपनी सम्पूर्ण संवेदन-शक्ति के साथ जीवन में भ्रम मिल जाय। इस कथन की शरितार्थता महादेवीजी के व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन में देखी जा सकती है, उनकी कविता में नहीं। और उनकी दृष्टि में मानव-जीवन की यह व्याख्या है कि वह अद और चेतन का ऐसा स्थायी सम्बन्ध है, जिससे पार्थिवता से बलवित चेतना ही को विरोधाधिकार प्राप्त है। धरती की वृत्ति चेतना के कारण है और चेतना का स्पन्दन धरती के कारण। उनका चिन्तन सर्वत्र एकरस है जिसकी गति आन्तरिक है बहिर्मुख नहीं।

काव्य-कला-विषयक इस विवेचन के अंतर्गत यह निर्दिष्ट करना होगा कि वह तात्त्विक और समन्वयकारी भूमिका पर ही स्थिर रही है। निस्सन्देह उन्होंने अपना विधेय मार्ग इसी के अन्तर्गत निर्मित किया है। बुद्धि और भावना स्वयं और यथार्थ वस्तु और अश्रम उपयोगिता और संस्कारिता धारि के मध्य एक व्यापक साम्य की स्थिति का उद्देश्य किया गया है। वह ऐसा उदात्त दृष्टिपथ स्थिर करती है कि जिसके अन्तर्गत कही वैषम्य विरोध या वैपरीत्य नहीं दिखाई पड़ता। यहाँ सब प्रकार के अन्तर तिरोहित हो जाते हैं। यह विचार-धरती अतिशय भावमयी और आदर्शनिष्ठ है। महादेवीजी ने विचारों का अन्तर्गत समन्वय है, वह उनसे इस आध्यात्मिक आदर्शवाद अथवा सर्वाधिकारी अश्रमपर्यन्त का विरोध किया जाय। मैं समझता हूँ कि महादेवीजी के दृष्टिकोण में श्री

सार है, पर उसकी अतिव्याप्ति ही उसका दोष है। उनको दृष्टि में सत्य काव्य का साध्य है और सौन्दर्य उसका साधन है। सत्य को वह उसकी एकता में असीम मानती है और सौन्दर्य को उसकी अनेकता में असीम। स्पष्टतः यह आत्मवादी धारणा है पर इसमें जगत् का निषेध नहीं है। यह समन्वयवादी दृष्टि कही जा सकेगी पर इसमें भी साधन की अनेका साध्य की प्रमुखता विद्यमान है। अतएव महादेवीजी अपने काव्य में प्रकृति अथवा दृश्य जगत् को माध्याम्य बना पाई है और यही उनके काव्य की प्रतीक योजना अलङ्कृति या सांकेतिक भाव-स्मरणा का कारण है। यही वह उस स्थिति को अपना लेती है जहाँ वह मानववाद की सीमाओं को अतिक्रमिष्ठ कर जाती है।

महादेवीजी के लिए आस्था वह मानभूमि है जो जीवन की सहजात चेतना के विकास क्रम में ही निर्मित होती है। उसे वह व्यक्ति के द्वारा समष्टि की स्वीकृति ही नहीं शून्य का रामायण स्वरूप भी मानती है। अतएव व्यक्तिगत आस्था वह व्यापक जीवन सत्य से सम्बन्ध कर लेती है जिसका सामाजिक विकास अथवा जगत् की परिवर्तन-गोमता से कोई विरोध नहीं है। वह समसामयिक और घातक का है और 'होना चाहिए' का रूप में निर्बन्धन करती है। उनकी दृष्टि में इन दोनों के बीच कोई तार्किक विभेद नहीं है क्योंकि वह इन्हें साधन और व्यापक सत्य समझती है। इसीलिए आज के साहित्यकार की आस्था के सम्बन्ध में उनका कथन है कि यही उसे समसामयिक परिस्थितियों में सपर्य कर्क उर्ध्वे सत्योन्मुख बना लेने की शक्ति दे सकती है। महादेवीजी आस्थावान रचनाकार हैं यह अविनाश है पर उनकी आस्था का स्वरूप भावनामय और आदसकारी है। काव्य का अन्तर्गत वह अपने इसी दृढ़ विश्वास के कारण असाधारण सत्ता के प्रति विश्व निषेधन कर सकती है पर यथावकाशियों के दृष्टिकोण से आस्था का प्रत्यक्ष रूप प्रकार हल नहीं हो पाता। परिस्थितियों की अतिमता के प्रति जीवन-आस्था को अक्षय रखने का काम आत्मवादी के लिए जितना महत्त्व है उतना पश्चात्वादी के लिए नहीं। आस्था को उर्ध्वेने मूल्य की दृष्टि से व्यक्तिगत पर प्रसार की दृष्टि से समष्टियुक्त माना है। यह तभी सम्भव है जब नशा का उम सीमा तक सापारम्भीकरण होना जसे कि जिन सीमा तक जीवन-दृष्टि का विवेक चौड़ा भी बाधक न बन पाए। अवरय ही यहाँ स्थायी या श्रेष्ठ कला-कृति-यों की बात करी गई है। महादेवीजी हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या को 'निकटता को दूरी समझती है। यही वह मानवता शिथिलता अथवा जीवन-आस्था की आकारयता अनुभव कर सकती है क्योंकि हमारा समाज 'न जीवन का स्वरूप नियम से प्राणवन्त है और न अपने दैगमन सरकार के समकक्ष। उर्ध्वे आज के भारत का मनोव्यवस्था उदर-प्रत्यक्ष निगार्द पड़ता है। यह प्रगल्भता की बात है कि महादेवीजी की सामाजिक चेतना प्रसिद्ध रूप से प्रकट हो पाई। हमारे अनेक जीवन के उनक अस्कार पर आपात किया है और वह उपाचार के लिए अपनी जीवन-दृष्टि का प्रसार चाहती है यह प्रकृति उनकी रचना में अभी अर्थात् अभी है पर मोद है कि वह अपने कवि तम से अब तक प्रायः बिलग ही जा गई है। 'अंगान का नाम' छोटा 'हिमालय' हीरेक काव्य-नवमनों के सम्पादन के रूप में यही लक्ष्य-वृत्त मुक्त-चेतना मन्त्रि हुई है।

नई काव्य-वारा के विषय में महारबीजी की धारणा है कि उसमें मर्मस्पर्शिता का समावेश है जो काव्य का बोध है मनीनता का अनिवाय परिणाम नहीं। काव्य में सत्य का सामाजिक रूप ही अपेक्षित है ताकिक नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि उसकी कोई प्रत्यक्ष उपयोगिता भी हो। महारबीजी समझती है कि यथार्थ का काव्यात्मक चित्रण एवम् कवि-कर्म नहीं है। उन्होंने बौद्धिक निरूपणों द्वारा कुछ प्रचलित सिद्धांतों का प्रतिपादन और आधीर्बाह की विरोध भावना का व्यक्तीकरण करते हुए क्लम-प्रतिपादन और प्रयोगवाद की अकाव्यात्मक स्थिति स्पष्ट की है। गीति-परम्परा में उन्हें कवि के अहंकार की अनुभूति नहीं कड़ि दिखाई पड़ी है। उन्होंने जस्मीनता के प्रश्न का एक विकृति रूप में देखा है और ऐसे साहित्य को पतनो-मुख माना है। यह विह्वित एक ओर समष्टिगत है और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक सिद्धांतवाद का परिणाम। यथार्थवाद प्रकृति और विकृति दोनों को ग्रहण कर सकता है पर उसने विकृति का ही संग्रहित करना रखा है। यह उसका निष्काण-विरोधी स्वरूप है। गारी-विषयक दृष्टिकोण की विवेचना करते हुए उन्होंने रहस्यवादी ध्यावादी और आरतवादी धारणा से यथार्थवादी विचारणा का पार्यन्त स्पष्ट किया है। महारबीजी का यह निरूपण अतिशय तलस्पर्शी है और इस मायगता पर आधारित कि 'कला और सौन्दर्य जीवन के परिष्करण और उससे उत्पन्न सामंजस्य के पर्याय है। 'कला चिरन्तन है' का प्रसिद्धांत है कि वह समापत है या ऐतिहासिक स्थिति रखती है 'सौन्दर्य सनातन है' का अर्थ है कि वह अस्तित्ववान् है तथा उत्पादन नहीं तथा 'सत्य शाश्वत है' का आशय है कि वह जीवन चेतना की अमर्यता है उसका विकलास-परिवर्धन स्पष्ट नहीं। महारबीजी इनी व्यापक बर्णन के आधार पर समझामयिक साहित्य की प्रकृतियों का पर्यवेक्षण करती है पर्यवेक्षण ही नहीं सम्पूर्ण विद्वान के साथ अपनी सीमाओं का निर्देश तथा विकृतियों का अन्वयन करती है। यहाँ उन्होंने प्रसंगत बुद्धिजीवियों की विसदृशियाँ दिखाई हैं जिनमें विचारों और शिक्षक बर्णन मुख्य हैं। उन्होंने नय कलाकारों और आलोचकों की स्थिति का परीक्षण भी किया है। 'मजदूर-कला तथा 'राज कला' आदि से सम्बन्धित समन्वयन से विचारों की व्यर्थता भी उन्होंने सिद्ध की है। अंततः उनका निष्कर्ष है कि इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी स्वप्न-अष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार अक्यात्म से बेबा हो या मौक्तिकता का अनुगत उसके निकट यही मार्ग छेप है कि वह अक्ययन में मिली चिन्तासासा से बाहर आकर, बहु सिद्धांतों का पार्यन्त छोड़कर, अपनी सम्पूर्ण संवेदना शक्ति के साथ जीवन में बुन-मिल जाय। यहाँ आलोचक महारबीजी का कला का श्रेय रूप कल्याणकारी पक्ष या चित्रण का प्रतिपादन करने की आवश्यकता अनुभव हुई है। मैं कहूँगा कि यह सब नई काव्य-रचना के सम्बन्ध में कहा गया है। कवि महारबीजी का इन समयसमाजों से गानका नहीं पड़ा। निरूपण ही यह विकेचन उनके छायावादी काव्य-चिन्तन पर आधारित है। यहाँ उनकी सैज्ञानिक मायगताएँ प्रायः वे ही हैं पर रहस्यवादी विचारों के स्थान पर यहाँ अत्यन्त अल्प और व्यक्त जीवन ही नहीं मानवीय सत्य और सामाजिक कल्याण का अन्तर्भाव भी कर लिया गया है। अन्ततः कला सौन्दर्य ही है या सौन्दर्य की संवेदना है,

समन्वित करती हुई आदर्श और यथार्थ भाव और वस्तु या आत्म दर्शन और पारम्य विज्ञान के एकीकरण पर बल देती हैं। महादेवीजी यहाँ स्वच्छन्द विचारक हैं किसी विषय शार्थनिक पद्धति की अनुगामी नहीं। इसीलिए उन्हें पूषत्य का उद्भावक ब्रह्मा संतुसम का आविष्कारक समझना चाहिए। उनकी विचारणा न एकांगी है न सत्य को शोषित करने की अभ्यासी। अतएव यथार्थ की घोषणा हीमाएँ खबना खंड्य और आदर्श का निरपेक्ष सत्य या अखंडत्व अभ्योभ्याथित समझे गए हैं। यह सम्बन्ध न सतही वस्तु है न उसकी खणिक सत्ता है। निरपेक्ष ही ये उद्गार आदर्शवादी विचारक ने हैं यथार्थवादी कर्माकार के नहीं। इसी कारण यह निष्कप कि 'आदर्श' को संकीर्ण अर्थ में न ग्रहण करके यदि हम उसे जीवन की एक व्यापक और सामन्वयपूर्ण स्थिति की मायना-मात्र मान लें तो वह हमारे एकांगी बुद्धिबाध और बितरे यथार्थ को मंगलन से सकता है — अनिर्वायं ज्ञात होता है। यहाँ 'सामन्वय' और 'संतुसम' शब्द विचारणीय हैं। इन्हीं के माध्यम से आदर्शवादी यथावत को स्वीकार कर पाता है। यही परिपूषता की कल्पना तो है ही इसे व्यावहारिक समझौता भी कहा जा सकता है। छायावादी काव्य-चिन्तन ने अत्यंत सामाजिक या यथार्थवादी तत्त्वों का आक्रमण बन्गुठ उसक ही मन्तव्यों को बस्तुमय आधार देना है और सापेक्षिक पूर्णता के सिद्धांत को चरित्रार्थ करना है। कतिपय आलोचकों ने छायावादी समीक्षा-पद्धति को बस्तुनिष्ठ आधार और सामाजिक आधार देने की समय खटा की है। वहना न होगा कि महादेवीजी के काव्य में इस प्रकार के संतुसम सामन्वय का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ा।

उपयोग की कला और मीन्वय की कला का उन्मेष करते हुए महादेवीजी ने उपयोगितावाद को सार्वभौम काव्य-मिडान्त बना है। उनका मन्तव्य है कि जब तक हमारे मूल्य अंतर्जगत् का बाह्य जीवन में पग-पग पर उपयोग होता रहेगा तब तक कला का उपयोग-उपभोगी विचार विवेक महत्त्व नहीं रखता। कला न खूब में निर्वासित हो सकती है न खूब में बरानि उसकी भी जीवन की भाँति समन्वयपरम स्थिति है। ये उपयोग की निम्नोन्मत्त भूमियों को स्पष्ट करती हुई डिबेनीपुगीय उपयोगितावाद तथा यथार्थवादी उपयोगिता के निडान्त की सीमाओं का निर्देश करती हैं। वह कलाओं को उपयोग की उस भूमि पर स्थायी रूप से स्थापित करती हैं जहाँ उपयोग सामान्य रह गया। बन्गुठ यह उपदान नहीं आस्वान है भाग्य उपदेश नहीं मोर्षर की संस्तरिणा है। महादेवीजी कला की उपयोगिता का जो अनिर्वाय पहलु करती हैं वह उपयोग के गुणो अर्थ को असाधित भूमि का देना है। यहाँ उपयोग संवेदना है और अन्तर्जगत् है। यह विधि-निर्वाय नहीं है बल्कि अन्तर्जगत् की स्वरुति है जिनसे कलाय जीवन की गति उत्पन्न होती है। महादेवीजी ने कलावादी विचारणा को जीवन की मंगलि अर्थय ही है पर वह उन आदर्शवादी या यथार्थवादी की रूपम उपयोगिता का पर्याय नहीं मान करती हैं।

उत्तरे छायावादी काव्य-चिन्तन के अन्तगत कला-अर्थ ही जीवन की अर्थय बड़ी उपदायिता बन पाता है। यद्यपि यह अर्थय का परिहार हो है जो मन्व ने अनुसंगित और मोर्षर के मायावाय का परिणाम है। भाग्य स्वरु है कि कला कला है जीवन का अर्थय मुख्य है जमे किनी आस्तरयता की माय या उपयोगिता को माय के

को सब व्यष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षा बन गई है। महादेवीजी के काव्य चिन्तन में सामाजिक तत्त्वों का प्रवेश सम्भव हुआ है और वह अधिक परिपूर्ण दृष्टिकोण उपस्था कर सकी है। उनके काव्य की एकात्मिकता यहाँ जाकर सोकाभिमुख दिखाई पड़ी। यह बात बलगत है कि उनके विचार इतने व्यापक हों कि वे परमात्मा की भाँति एकड़ के बाहर रह पर यहाँ उनूनि स्पष्टतापूर्वक अपनी धारणा को प्रकट किया है।

समस्याओं के प्रयोग में वह एक सारगमित बात कह गई है जो इस प्रकार है—

छायावाद एक प्रकार से अज्ञातकुमारीस बनकर रहा जिसे सामाजिकता का अधिकार ही न मिल सका। फलतः उसने आकाश तारे, फूल निर्भर आदि में आर्मीयता का सम्बन्ध जोड़ा और उसी सम्बन्ध को अपना परिचय बनाकर मनुष्य के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न किया। छात्र का यथार्थवाद बुद्धि और साम्यवाद का ऐसा पुत्र है जिसके आदिमार्ग के साथ ही आत्मोच्छेद का कृण्डीनी बना जाता और उसके अन्तर्गत ही धारणा में व्यस्त हो गए। इस अवतरण के दो पहलू हैं। छायावाद विपरीत निर्देश केवल महादेवीजी के काव्य पर अधरस चला हुआ पाता है अन्य किसी छायावादी कवि पर नहीं। प्रभाव निराशा और पन की स्वच्छन्द्य की बलानुभूतियों सामाजिक चेतना से रिक्त नहीं है। प्रकृति और कल्पना का विनियोग काव्य कवियों के काव्य में संघटित हुआ है और वह भी गौन्धर्व के उपाशान या विद्यान के द्वेषु। इसमें सत्य यही है कि छायावादी काव्य में अतीन्द्रियता के परमाणु अपेक्षया अधिक हैं। हमारा पक्ष यथार्थवाद की आशियों को मजबूत करता है। यह मध्यम ठीक उसी प्रकार की मन स्थिति को विज्ञापित करता है जैसी मन स्थिति नये प्रभावों को स्वीकार न करने वाले पुराने संस्कारों को प्रहल म करने वाली के प्रति प्रकट करते हैं। मैं यह नहीं कहूँगा कि महादेवीजी उत्तर छायावादी काव्य के प्रति असहृदय हैं पर यह तथ्य है कि वह उसे जीवन विकास की दृष्टि से विवर्तनकारी बस्तु मानती है। वह सूक्ष्म के एक अतिवाद पर स्थित हैं यह स्पष्ट है हमारा अतिवाद है। सम्भवतः अध्यात्म और यथार्थ या सूक्ष्म का समन्वित संतुलन ही मानवीय पूर्णता का लक्षण है। महादेवीजी भी सामाजिकता की बात कहती हुई इसी आचार को प्रहल करने के लिए सचेत है। उनकी अपनी पूर्णत्व की धारणा बहुत-कुछ काव्यनिक और अपारिण ही रही है। यह उसी का नया विकास है यथा— 'यदि पहले किसी शीतल्य दृष्टि और आत्र की शीतल्य-मृष्टि का सम्बन्ध कर सकें विद्युत् की सक्रिय मात्रा से बुद्धिवाद की पुष्कता को स्थापन बना सकें और विद्युत् की सूक्ष्म बलता की व्यापक मानवता में प्राण-प्रतिष्ठा कर सकें तो जीवन का सामंजस्यपूर्वक विन हो सकेंगे।

महादेवीजी ने आदर्श और यथार्थ-विषयक अपने चिन्तन को भी प्रकट किया है। वह उन्हें प्राण और शरीर की तरह समन्वित करनी हुई कहती है कि 'बहु यथार्थ जिसके पास आदर्श का स्पन्दन नहीं केवल शब्द-मात्र है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं प्रत-मात्र है। अतएव आदर्श और यथार्थ एक-दूसरे के पूरक रहकर ही जीवन को पुष्टता दे सकते हैं अत्र काव्य उन्हें विरोधियों की भूमिका देकर जीवन में एक नई विषयता उत्पन्न करता है सामंजस्य नहीं। स्पष्टतः महादेवीजी यही छायावादी समीक्षण रहस्यवादी कवि मानववादी निबन्धकार प्रभृति अपने कर्णों की

अनुभव न बढ़ा जा सकता है न उसकी उपयोगिताका भी परिष्करी तैयार हो सकती है। इसी कारण उनकी दृष्टि में जीवन में कविता का वही महत्त्व है जो क्लेश भित्तियों से बिके हुए कवियोंमण्डल को अनायास ही बाहर के उन्मुक्त वायुमण्डल से मिला देने वाले वातायन का मिला है। वह कविता और कथा को छायावादी शीष्ट में सम्मिलित और आदर्शवादी निष्ठा सम्बलित करता है। उन्होंने काव्य-कथा को जीवन का व्यापक अभिप्रेत ही नहीं किया उस स्वानुभूति की परिभाषा और सौन्दर्य-बोध का वैभव भी प्रदान किया।

महादेवीजी की काव्य-श्रुति और उनके काव्य चिन्तन में यही विषय प्रतिबिम्ब भाव सिद्धमान है। उन्होंने 'मन्त्रपर्वा' और 'हिमामय' की सुगठित और सुचिन्तित भवितव्यों के अन्तर्गत भारतीय जीवन के सामाजिक विकास के अमित चरण चिह्नों का विवर्धन किया है। मासिक हृदय का परिष्कार करता है और जीवन के सांस्कृतिक विकास का प्रयत्न किसी भी सांस्कृतिक मूल्य के वस्तुगत उपयोग की माँग का महत्त्व ही क्या है। वह महान् आकांक्षा का विषय मान है। महादेवीजी काव्य के सांस्कृतिक मूल्य को ही एकीकृत करती हैं अन्तुवादी उपयोगिता के सिद्धांत का नहीं।

५

अब हम गीतिकाव्य छायावाद और रहस्यवाद विषयक मन्त्रों की परीक्षा ही करनी है। महादेवीजी गीतको सुन्द-दुःख की भावावेगमयी अवस्था विधेय की अभिव्यक्ति मानती हैं और उस दिन बने वाद्यों में स्वर-भाषना का उपयोग विषय कहती हैं। गीत की समस्तगिता का कारण है वैयक्तिक सुन्द-दुःख की व्यथना। आगे यह है कि गीत का विषय सुन्द-व्यापक अनुभूति ही है। वह भावावेगमयी अवस्था का लिये हुए है और उग्रा गीता व्यक्तित्व विषय है। यैयता उसकी गीतगत विषयता है जो उपयोग स्वर भाषना ही नहीं है गीते खुद वाद-अनुभूति का विविध विन्यास भी है। यहाँ महादेवीजी वैयक्तिक अनुभूति को उपयोग वाद-भाषना और मार्मिक स्वर-भाषना में सम्मिलित करती हैं। उनकी गीतिकाव्य की यह परिभाषा सन्निहित और मार्मिक है कि भाषागत गीत व्यक्तित्व गीता में गीत सुन्द-दुःखमय अनुभूति का यह वाद रूप है जो अपनी व्यंग्यतामयता में गद्य हो सकता है। निरवयव ही उनका गीतिकाव्य अवधारण है बिरहानुभूति में अनुभूति है अपनी व्यंग्यतामयता में गद्य है पर वह गीत या भावावेगपूर्ण भी है यह नहीं कहा जा सकता।

वह भावावेगमयी गीतिकाव्य ही नहीं। वैयक्तिक साम्प्रदायिक और साम्प्रदायिक भाव संरक्षक भाव भाग का लेना बाँध है जो उनका प्रवाह को उन्मुक्त नहीं होने देता। गीत की आरम्भिक कला में कभी कभी आशय का स्वर अनुभूति होता है पर प्रतीक-संज्ञकता उक्त व्याख्या विचार में बाध निवृत्त होती है। गीत की छाया संज्ञक वाद गीत के भाव भाव की वाद-व्यंग्यता विषय गीत है। उसमें गीत साम्प्रदायिक भाव संरक्षक गीत ही होने का मत है। गीत का सम्बन्ध में निवृत्त गीत में गीतिकाव्य गीत है। गीत का गीतिकाव्य में रचना यह नहीं है। गीत गीत का गीत है अन्त में यह साम्प्रदायिक विन्यास गीत है। यहाँ सुन्द-दुःख है कवि का भावगत अन्त गीत का अन्त-व्यंग्यतामय है। यह सुन्द-दुःख गीतिकाव्य भी है अन्त में अन्त और गीतिकाव्य गीत और

सामंजस्य विद्यमान है।

गीतिकाम्य में तार्किक ज्ञान नहीं सहज ज्ञान की अवस्थिति को मधित करती हुई महादेवीजी कहती हैं कि तर्क से परे इन्द्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा ज्ञानायत्त ही जिस सरय का ज्ञान प्राप्त करती है उसकी अभिव्यक्ति में वयम्बर सामंजस्य का विद्येय महत्त्व रहा है। यहाँ वह सुदृढ़ ज्ञान से युक्त सहज बोध का निर्देश करती है। आत्मा को मन या अठवर्गम् मान लेने से इस वक्तव्य की बोधम्यता बढ़ जायगी। भाव-स्थिति स्वतः अमूर्त व्यापार है पर उसे सरय का संबोध या स्वाभाविक ज्ञान बोद्धिक आधार भी देता है। यह सहज ज्ञान एक ओर भावमय या सरस बना रहता है और दूसरी ओर वाणी का भाव प्रसाप भाव बनने नहीं देता। अतः गीतिकाम्य मानव-संस्कृति का उच्चारण हो जाता है। उसकी उच्चारण साहित्यिक स्थिति का यही रहस्य है। इसी कारण वह न ज्ञानाय भाव है न प्रसाप भाव। निश्चय ही महादेवीजी का गीतिकाम्य गम्भीर मनोरथा सुसंस्कृत व्यस्तित्व और समृद्ध एब्द-संवेदों तथा अर्थ-व्यक्तियों का व्यक्तीकरण है।

उन्होंने साहित्यिक पीठों का लोकोगीतों से भिन्न वस्तु अर्थवय माना है पर दोनों के मूल में एक-ही प्रवृत्ति की अवस्थिति स्वीकार की है। गीत प्रकृत्या मानवी सुख-सुख के उच्चारण हैं अतएव लोकोगीत और साहित्यिक पीठ में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। दोनों की भाषा भाव और छन्दों के भीतर साम्य के सूत्र मीजूर है। साहित्यिक पीठों में चिन्तन कल्पना या रचना-सम्बन्धी समृद्धि और तन्त्रमय सूत्रमय्यना-व्यापार सम्भव होता है पर लोकोगीतों में मानवीय अनुभूतियों अपने प्रकृत रूप में अभिव्यक्त होती हैं। महादेवीजी ने इन लोकोगीतों का आकषण अनुभव किया है और कहा है कि 'मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकोगीतों की परती पर पसे है। महादेवीजी का गीतिकाम्य लोकोगीतों से कदाचित् समुचित प्रेरणा नहीं से पाया। वह मात्र आकषण है, जिसका यहाँ उल्लेख हुआ है कोई सुनिश्चित प्रभाव नहीं।

वह रहस्य-गीतों के विषय में कहती हैं कि उनका 'मत्ताधार भी आत्मानुभूत अण्ड चतन है। आत्मानुभूत ज्ञान ही गीतिकाम्य की प्रकृति में अन्तर्भूत हो पाता है। रहस्य पीठों के अन्तर्गत ज्ञान इतना प्रत्यक्ष नहीं हो पाता कि वह बुद्धि की परिधि में जा पाय और भाव इतना सूक्ष्म और अभ्यक्त नहीं हो पाता कि वह हृदय की सीमा में न जा पाय। यही रहस्य और गीत के मूल तत्त्व एकात्मित होते हैं। "रहस्य-पीठों में ज्ञानत्व की अभिव्यक्ति के सहारे ही हम चित्त और चित्त पहुँचते हैं। महादेवीजी ने न केवल ज्ञान और भाव को चिन्तन की भूमि पर एकत्र किया है, बरन् सन्निवर्त के माध्यम की बात भी कही है। वस्तुतः रहस्य-पीठ आवात्मक परिपूर्णता के सोपान हैं। आवात्मक या आत्म्यन्तर पूर्णता का अनिप्राय यह है कि रहस्यानुभूति वस्तुतः एकात्मिक है लोको-संप्रदायी नहीं। निश्चय ही महादेवीजी के पीठों की भी यही विद्येयता है। उनके काम्य की आध्यात्मिकता पृष्ठभूमि है अथवा पर वह पामिक कर्तव्यों का गम्भीर दार्शनिक मनोवृत्ति का परिणाम है। यह दार्शनिक चित्त अन्ततः व्यक्तितगत चतना है जिसे अध्वयन मनन और निर्विघ्नायन के अतिरिक्त बाह्य प्रभावा ने भी संगठित किया है।

महादेवीजी का चिन्तन चिरन्तनता और समाप्तता तथा व्यापकता और पूनता को सिये हुए है अतएव प्रत्येक विषय भववा कविता की चारा प्रकृति या विधा के अन्तगत वे इसी का उल्लेख करती हैं। छायावाद को उन्होंने इसी व्यापक आधार पर निरूपित किया है। अबस्य ही उसे उदात्त पृष्ठभूमि दी जा सकी है। विचारकों ने छायावाद के सांस्कृतिक भाव-बोध का विवरण दिया है पर महादेवीजी ने उसे दार्शनिक चेतना का प्रधार ही माना है। वह समझती हैं कि छायावाद ने मूर्त और अमूर्त विषय को समन्वित करके उसे पूनता प्रदान की है। वह छायावाद के आविर्भाव का कारण कविता के बन्धनों से मुक्त होने की प्रकृति में खोजती हैं।

बिस स्वच्छन्दता की प्रकृति में उसका जन्म हुआ उसे कविवित्री ने न चिन्तन में न अपने काव्य में महत्त्वपूर्ण वस्तु माना है। कदाचित् वह उस प्रतिक्रिया का मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं कर पाईं। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि नारी की सामाजिक घीमाएँ तथा उसकी नैतिक मर्यादाएँ उसे इस प्रकार की स्वच्छन्दता का अवकाश ही नहीं देती। अतएव आत्मानुभूति की स्वतन्त्रता को मुख्य वस्तु मानती हुई वह स्वच्छन्द का 'स्वच्छन्द छन्द' में ही सीमित कर लेती है। व्यक्तिगत मुक्त-कुण ही छायावाद के उल्लेख को अभिव्यक्ति के लिए आकृष्ट रहे हैं। अतः छायावादी कविता स्वानुभूति प्रदान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास-विषाद की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनी। वह इसका दूसरा प्रमुख तत्त्व 'प्रकृति की सौन्दर्य चेतना' को मानती हैं जिसके कारण अनेक रूपों में प्रकट एककपता महाप्राण बन जाती है। फलतः 'मनुष्य के अन्तः में के अन्तः और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है।' यहाँ सर्वव्यापी मान्यता स्पष्ट हुई है। यह छायावाद का मूल दायन नहीं है। प्रकृति पर चेतना का माराय विमुक्त दार्शनिक वस्तु है यह नहीं कहा जा सकता। प्रकृति की सचेतनता मानवीय भाषाशेष या मानवीकरण की आत्मकारिक प्रकृति का परिणाम भी है। उसे चेतनता का आभास देना थाया रूपक कहा जा सकता है। अस्तुन प्रकृति अपने सौन्दर्य और मानव-सापेक्ष अस्तित्व में कारण छायावाद में महत्त्वपूर्ण स्थान पा सकी है। उसे परिष्कृत चेतना का प्रतिबिम्ब मानने की प्रायः आवश्यकता नहीं पड़ी। महादेवीजी के काव्य में प्रकृति को मन्त्र यही दार्शनिक आशय नहीं दिया गया। वह प्रतीक और अर्थकरण भी है दिव्य चेतना का व्यक्तीकरण ही नहीं।

महादेवीजी प्रकृति को अपने भावात्मक रसि कोण के कारण कल्पनातीत सौन्दर्य में स्थित करती रहीं हैं। उनका मतव्य है कि छायावाद का कवि न प्रकृति के किसी रूप को लपु या निरपेक्ष मानता है न अपने जीवन को क्याकि वे दोनों ही बिच्छु रूप-अमूर्ति में स्थिति रखते हैं और एक व्यापक जीवन में समाहित होते हैं।

प्रकृति जीवन का रूप-रसन है और जीवन प्रकृति का भावात्मक। यह द्विचरणा निराल्प वैयक्तिक और सामाजिक चर्चा आणवी। मनुष्य अन्तः में एक ही तत्ता की व्याप्ति अनुभव करता चिन्ता दार्शनिक अभिप्राय है उनका स्वानुभूत तत्त्व नहीं। छायावादी कविता में व्यक्ति और समाज का एक ही चरित्र सम्भव नहीं हुआ। इस उमका मध्य या

आदय बबलय कह सकते हैं जो उसकी कल्पनाशील प्रकृति का मतिव करता है। अतएव महादेवीजी छायावाद को प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीर्ण कहती हैं।

प्रकृति पर आधारित यह काव्य स्वभावतः कल्पनाओं की बहुंरूपी और विविध रूपी मूर्धम रेखाओं से निर्मित हुआ। निरन्तर ही महादेवीजी का काव्य कल्पनाशील है पर दार्शनिक निरूपणों के कारण यह स्वतंत्र वस्तु नहीं परीक्ष मय का अपरोक्ष माध्यम है। प्रकृत छायावादी अनुभूति प्रायः प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करती है पर महादेवीजी के लिए यह मात्र रहस्य का व्यक्तीकरण है।

महादेवीजी इस मत का विरोध करती हैं कि छायावाद अनर्पणम वपायं जीवन से परामर्श है क्योंकि उसके निर्माण-युग में मध्यमवर्गीय चेतना का भासिजात्य मुखरित था जिनमें सामाजिक शोभ और सांस्कृतिक असन्तोष के तत्त्व वस्तुतः सम्मिश्रित नहीं हो पाए थे। छायावाद भौतिक अस्तित्व की समस्याओं को अंतर्मुक्त नहीं करता। ये उन युग की अनिर्वायताएँ नहीं हैं। प्रभाव निरामा और पंथ में एक सीमा तक प्रत्यक्ष जीवन की चेतना आत्मसात् की थी पर महादेवी उसमें अंतर्पुष्ट रहीं। यह स्तुम के स्वान पर सूत्र की अभिव्यक्ति का निर्वेध करती हैं। यह समझती हैं कि छायावाद स्तुम की प्रति क्रिया से उत्पन्न हुआ था। वत स्तुम की उधी रूप में स्वीकार करना उसके लिए मध्यम न हो सका। परन्तु उसकी सौन्दर्य-दृष्टि स्वयं के आधार पर नहीं है यह कहना स्तुम की परिभाषा को घनीर्ण कर जना है।

महादेवीजी सूत्र या सांकेतिक चित्रों के अतिरिक्त स्तुम को सूत्र सौन्दर्य शोभ का आधार तक स्वीकार कर लेती हैं। इस दार्शनिक परिचय को महादेवीजी उस सीमा तक स्वीकार करती रहीं कि उनका काव्य रहस्यवाद के शत्रु की वस्तु बन गया। उन्होंने छायावाद को अपने प्रियदर्शन का माध सोपान बनाया। उनकी वैयक्तिक अनुभूति स्वाभाविक मनोमाधना न रहकर परिष्कृति और उदात्तीकृत रहस्य-विज्ञासामग्री प्रणय मानना बन गई।

मैं समझता हूँ कि स्वाभाविक मानवीय अनुभूतियों का काव्य अ-श्रेष्ठ नहीं होता। महादेवीजी का सूत्रतावादी दर्शन चरम कोटि की कला नहीं है। अनर्थ ही उनका काव्य अपने आंतरिक गुणों के कारण श्रेष्ठ है उपर्युक्त उल्लेख के कारण नहीं।

महादेवीजी के अनुसार छायावादी धम्मिष्यंभना की सांकेतिकता का कारण माध को वपायित करण की आवश्यकता है। यह स्तुम को भाषा के सौन्दर्य की सीमा कहती हैं और इसीलिए नई स्तुम-शोभना का समर्पण कर सकी हैं। शब्द-शोभन की कला उन्हें इसलिये आवश्यक जान पड़ी कि सूत्र माध-शोभ को अभिव्यक्ति देती थी। अतएव प्रत्येक शब्द को ध्वनि बर्ण और अर्ण की दृष्टि से माध-शोभ और काठ-छाँटकर तथा कुछ नये पदकर अपनी सूत्र माधनाओं को कोमलतम कसेवर दिया गया। यहाँ सड़ी बोली के पदावली-नस्कार, ध्रुव निर्माण और सकेत-मदति की काव्य-सीमा का अभिनव कीसम स्पष्ट किया गया है। महादेवीजी एक श्रेष्ठ कलाकार रहीं हैं और इन शोभों में उन्होंने मनीष काव्याधिष्यंभना को यत्नपूर्वक संवार है। उनकी सीमा में तरलता और मार्धन इसी कारण बा पाया है। छायावादी काव्य में उनकी सीमा धर्माधिक सांकेतिक है चित्रे

प्रतीक-पद्धति का नया रूप समझना चाहिए ।

छायावाद के परामर्श के कारणों पर महादेवीजी ने टिप्पणी की है। वह कहती है कि छायावाद सौन्दर्य-शोक की वस्तु है, प्रत्यक्ष जीवन की नहीं। इसीलिए वह अपूर्ण है। वह एक भावार्थक दृष्टिकोण है बौद्धिक दृष्टिकोण नहीं। परन्तु बौद्धिक दृष्टिकोण भी अपूर्ण है क्योंकि वह बौद्धिक है। जीवनानुभूति की स्पष्टता से संयुक्त कल्पनातिरिचयी प्रकृति को उन्होंने छायावाद के ह्रास का कारण माना है। यही उनके काव्य की सीमा का निर्धारण है। वह भावार्थक पूर्णता की बात कहती भी आई है। वस्तु और भाव सौन्दर्य और जीवन तथा बुद्धि और हृदय का एकीकरण ही संभवतः पूर्णता है। छायावाद को यथायं रूप में ग्रहण ही नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सुनिश्चित आध्यात्मिक कर्मों अथवा वर्गीकृत सिद्धान्तों का संघर्ष नहीं है बल्कि व्यक्तिगत और स्वच्छन्द विचारों का निरूपण है। महादेवीजी ने इन सीमामों या ह्रास के कारणों का वस्तुनिष्ठ विवेचन किया है। यह अत्यन्त साहस का कार्य है क्योंकि अंततः यह अपने रचना-कार्य का ही सीमोस्तेलन है। यह कल्प्य सारवाम् और तथ्यपूर्ण है।

अन्तु, प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप कल्पनाओं की समृद्धि स्वानुभूत सुगन्धुओं की अभिव्यक्ति की परस्पर सापेक्ष कहा गया है। य ही छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। महादेवीजी छायावाद को कल्पना की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होनेवाला भावार्थक सर्ववाद कहकर उसकी उपयोगिता को सिद्ध करती हैं। वह प्रकृत अनुभूति को अपरोक्ष अनुभूति की रहस्यमयता से मद्धित करती हैं यथा—छायावाद का कवियम के अध्यात्म से 'आधुनिक दर्शन के ब्रह्म का शब्दी है जो मूल और अमूल' विषय को मिलाकर पूषता पाता है।" वह अपने इसी चिन्तन-क्रम के कारण छायावाद को प्रतिष्ठापित करती हुईं उन्हे रहस्यवाद की समकक्षाता प्रदान करती हैं यथा 'बुद्धि क सूक्ष्म बराबर पर कवि ने जीवन की अलंङ्कता का भावत किया हृदय की भावभूमि पर उन्हे प्रकृति में बिखरी हुई सौन्दर्य-मत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुगन्धुओं को मिलाकर ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर ही जा प्रकृतिवाद हृदयवाद अध्यात्मवाद रहस्यवाद छायावाद और अनेक नामों का भार मँजाम मरी। यहाँ छायावाद सुगन्ध-विषय की काव्य प्रकृतियों का परिचायक धर्म-मकेत-भात है। वस्तुतः छायावाद के अन्तर्गत अध्यात्म की प्रकृति अवस्थित रही है पर वह यथ-नम ही प्रान्त हुई है। उन्हे मूल प्रकृति नहीं कहा जा सकता। महादेवीजी ने अपने काव्य की विवेचना के रूप में ही कदाचिन् छायावाद और रहस्यवाद को एक-दूसरे का पूरक माना है। एक सौन्दर्य का ह्रास है दूसरा भाव का अध्यात्म। वास्तविक यह नहीं है।

महादेवीजी रहस्यवादी कवियत्री हैं पर उनका काव्य में छायावादी काव्य प्रकृतियाँ भी हैं। यथा—प्रकृति-श्रम सौन्दर्य कल्पना महानुभूति आदि सुबिख्यात हैं। मैं लक्षणा हूँ कि महादेवीजी का माध्य रहस्यवाद है और माध्य छायावाद। य रंगे पूर्ण या निरपेक्ष साथ और उन्हे सौन्दर्य कर्ण माध्यम के वर्णन ही है अथवा य अभिव्यक्त या स्वाधी भाव और उसकी अभिव्यक्ति के प्रतिफल है। इस प्रक्रिया के कारण ध्यान को बाह्य चिन्तनी रमणीयता प्राप्त हो जाय पर बेचारे वाक्यार्थ का सौन्दर्य सुरङ्गिन मरी रह

पाठा । महादेवीजी ने काव्य में छायावाद का मूल चारित्र्य नहीं है, क्योंकि उन काव्य पद्धति का रूप में अपनाया गया है स्वतंत्र सौन्दर्य-बोध या भाव-भक्तता का रूप में नहीं ।

७

महादेवीजी ने रहस्यवाद का भी स्वरूप-निर्देशन किया है । वे महापुरुषों का बीज छायावाद और रहस्यवाद एक-दूसरे पर आधित चाह रहे हों पर उनमें पात्रत्व भी है । उनके अनुसार जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने एक ऐसा आरतम्य जीवन का प्रयास किया जिसका एक छार किमी असीम जीवन और दूसरा उसका समीन हृदय में समाया हुआ या तब प्रकृति का एक-एक अंश एक असीमिक व्यक्तित्व अक्षर बाग उठा । परन्तु इस सम्बन्ध में मानव-हृदय की सारी प्यास न कुछ सही क्योंकि मानव-सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्मविश्रम का भाव नहीं चल जाता तब तक वे सरल नहीं हो पाते और जब तक यह अनुराग सीमातीत नहीं हो जाती हृदय का अभाव दूर नहीं होता । इसीसे इस अनकरूपता के कारण पर एक महत्त्वम व्यक्तित्व का आरोपण करके उसका निकट आत्म-निर्बन्धन कर देना काव्य का दूसरा सोपान था जिसे रहस्यवाद रूप का कारण ही रहस्यवाद का मान दिया गया । महादेवीजी का प्रथममूलक आत्मनिर्देशनात्मक गीतिकाव्य का यह उचित स्पष्टीकरण है । वह रहस्यवाद के शाश्वतिक या शैक्षिक अथवा साधनात्मक रूप का आध्यात्मिक समझती है । रहस्यवाद और आत्मिक स्वरूप ही उनका असीम है । उनका कथन है कि अक्षर्य केतन से तादात्म्य का रूप रहस्यानुभूति में हृदय का प्रम हो जाता है यह बुद्धि का रूप ही नहीं रहता । अतएव रहस्यवादी का आत्म-समर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सीतल की प्रयत्न विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है अतः उसमें मत् और चित् की एकता में आत्म सहज सम्मिल रहेगा । मत् चित् और आनन्द की पूर्णता ही नहीं स्वयं रहस्यवादी की परिपूर्णता भी सम्मिल है क्योंकि मूर्त जगत् का यथासंशर्षी अमूर्त जगत् का रहस्यवादी बनकर ही पूर्णता प्राप्त करता है । महादेवीजी रहस्यवाद को जीवन का पूर्णत्व मानती हैं । अक्षर्य और व्यापक चेतन से प्रति आत्म-समर्पण अक्षर्य सम्मिल है क्योंकि रहस्यात्मक कृतिया उतका प्रमाण है । रहस्यानुभूति अतीन्द्र होती है पर उसकी अविश्विक अतीन्द्र ही रहेगी यथा—“अक्षर्य की अविश्विक शैक्षिक रूपों में ही तो सम्मिल होगी । यह अक्षर्यमय जीवन के परिष्कार और विकास पर निर्भर है कि अक्षर्यजगत् का समष्टिमय जीवन से साध साधनत्व स्थापित हो जाय ।

क्या कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है ? महादेवीजी के अनुसार इसका निश्चय व्यक्तिगत चेतना ही करेगी । वह समझती है कि न वही काव्य है जो अपनी साकारता के लिए केवल स्पृह और व्यक्त जगत् पर आधित है और न वही जो अपनी मराजता के लिए रहस्यानुभूति पर । उन्हें रहस्य-काव्य की संवेदनीयता के सम्बन्ध में कोई संका नहीं है । हिन्दी के आधुनिक रहस्य-काव्य के सम्बन्ध में उनकी टिप्पणी है कि “उसने परा विद्या की अपाविधता भी वेदान्त के अर्थ की छाया मात्र ब्रह्म की शैक्षिक प्रेम की हीमता उचार की और इन सबको सांकेतिक वास्तव्य भाव-सूत्र में बाँधकर एक निरामे स्नेह-सम्बन्ध की मृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्बन

द सका उस पापिब प्रेम में ऊपर उठानवा तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका ।" स्पष्टतः यह महादेवीजी की रक्ष्य कविता के सूत्रों का ही चिन्तनपथ है। यह यह स्वीकार करती है कि यह बाह काव्य की कविबना और अपनी अपापिब पापिबता तथा सामना की मूर्धता के कारण सहज ही सबको आकृष्ट कर सका। अतएव यह विद्वत् हाता गया। अत्यन्त स्पष्ट रूप में यह कहती है कि 'रक्ष्यवाद भाषा का गुण है, काव्य का नहीं। यह रक्ष्यवादको मन-स्थिति और छायावाद को काव्य-कला समझती है। और यही कला स्वतन्त्र नहीं रह पाती। यह उस आध्यात्मिकता का मूल जीवन-वेतना के उपयोग की वस्तु मानती आई है। इस उद्योग काय क्षेत्र में उद्वृत्त किया है। अतः महादेवीजी के रक्ष्य विषयक विवेचन का विचार और प्रामाणिक बनना चाहिए। यह उनकी काव्य-कला की केन्द्रीय मन-स्थिति का निरूपण है। इसे आत्मवचन माना जा सकता है।

८

महादेवीजी का काव्य चिन्तन न केवल उनके सुमरुद्ध स्फुरित और प्रबुद्ध विचारक का स्पष्ट निवेदन है बल्कि उनके काव्य का समझने में बड़ी दूर तक हमारा सहायक है। स्वयं महादेवीजी छायावाद-सुमकी प्रमुख प्रतिष्ठित और प्रतिनिधि कवयित्री हैं अतएव उनके विचार निश्चायक के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। छायावादियों की प्रवृत्तियों में कतिपय साम्य के सूत्र उपलब्ध हुए हैं और उन्हीं के आधार पर उन युग की विवेचना की जाती रही है। अतएव ही उनमें पर्याप्त अंतर मौजूद रहा है परन्तु उनके वैयक्तिक विवेचनों का परिचायक समझा गया है। महादेवीजी मूलतः आध्यात्मवादी या रक्ष्यवादी हैं परन्तु सभी छायावादियों की यही केन्द्रीय मन-स्थिति नहीं है। अतएव महादेवीजी की कतिपय साम्यताओं की भीमार्थ यह है कि वे भी-सहजानी हैं। यह छायावाद को वैयक्तिक ही नहीं आत्मवादी अभिप्रेत ही प्रदान करता है। स्पष्टतः यही मनोवैकल्य का कारण है। छायावाद के अन्तर्गत मीरस की स्वाभाविक अनुवृत्ति ही प्रत्यक्ष हुई है। महादेवीजी जैसे अमृत मत्स्य का आध्यात्म मात्र मान लेती हैं। बरचित इन समुद्र युग के परिपान्थ में प्रभावित नहीं किया जा सकता।

महादेवीजी का आत्मवचन विचार है मूलतः प्रविद्या समुत्पन्न है और चिन्तन कम एकदेशीय नहीं है। रक्ष्यवाद और छायावाद के विचार-क्रम का उद्गार परिष्कृत और प्रामाणिक निरूपण किया है। उनका दृष्टिकोण अनिश्चय स्थापक है और वह सबके आंतरिक या बिरहजन्य मत्स्य का अनुभव करने के लिए हृत्संवेदन है। पूर्वतः ही अपनी पारंगत उन्हें अनिश्चय प्रिय है जिसे स्तुति और सूत्रम स्फुटि और मर्मस्फुटि मूल और समुद्र हृदय और मस्तिष्क मत्स्य और मीरस आदि के रूप में निश्चित किया गया है। आत्म यह है कि उन्हें मूलतः का भी आत्मवचनी और अमर्षीय इच्छा तथा आत्मवादा विचार समझना चाहिए। उनका आत्म-वर्णन मत्स्य सर्ववाद के रूप में उद्घोषित हुआ है वह आत्मवादी इच्छा है और आध्यात्मवादी कवि। वस्तुवादी जीवन-वर्णन और उपासना काव्य के प्रति उनके मन में स्वभावतः मत्स्य का प्रादुर्भाव है परन्तु उनका अपनी स्फुरित विचार-मार्गों में मर्म वचन बनना चाहती है। अन्ततः वह आत्मवचनी दृष्टिकोण

को अपना सेटी है। यह उनके अपने ही विद्यालय का विस्तार या पस्मन है। संक्षेप में महादेवीजी का काव्य-निष्पन्न प्रौढ़ और सुनबत है सुचिन्तित और कवित्वपूर्ण है। यह महादेवीजी के काव्य की अन्तर्गम्यपरीक्षा का विशिष्ट प्रतिमान है। स्पष्ट उसकी सीमाएँ ये ही हैं जो छायावादी काव्य-समीक्षा की हैं। यह वैयक्तिक साहित्य विद्यालय है और उसमें बस्तु-निष्ठा का अभाव है।

और महादेवीजी का काव्य आत्मनिर्भरक कृतिकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है जिसका मूल तत्त्व रहस्यवाद है और जिसकी काव्य-रूपा छायावादी की उन्मुख उपलब्धियों से सुनम्पन्न है। यह वैयक्तिक और अलङ्कित-पूर्ण गीति-काव्य होने के कारण सहज सचेत नहीं है जयने क्रम संक्रामक तो नहीं ही है। पर यह गीति कथा विशिष्ट है और समृद्ध भी। महादेवीजी के गीति-काव्य का विशिष्ट व्यक्तित्व है जो अपने पृथक सीमार्थके कारण महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बन गया है।

उनकी गीति-रचना का परिचय प्रायः 'मैं भीर मरी कुँड की बहती उक्ति से दिया जाता है। पर यह युक्तिमुक्त नहीं है। यह 'तुम हो बिन्दु के बिन्दु और मैं गुणा रस्मि अज्ञान' से चल कर 'भीर भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' की स्थिति को प्राप्त करती है। 'है तुझे अमारगव्या पर मुकुल कसिदा विद्याना' कालान्तर में ही यह कह पाती है। उनकी 'पथ होने को अपरिचित प्राण उन्हे को अकेला' की हठ न केवल 'सब आँसों का आँसू उन्हे सबके सपनों में सत्य पसा' का अनुभव करती है बल्कि समझती है कि 'अस्ति मैं कण-कण को खान चली सबका कन्दन पहुँचान चली। महादेवीजी के भाव-विकास के ये कतिपय इतिहास हैं। यह केवल अयुमुखी विमोचिनी नहीं है, यह रहस्यवादी भी है अतएव यह रात के उर में दिवस की चाह का घर है। जिन्हें महादेवीजी की रहस्यानुभूति पर मन्त्रेह है वे उसे आलोचित बस्तु मान सकते हैं पर विपत्त आशीष बर्ष की गीति रचना और चिन्तन-सृष्टि में एकनिष्ठ रह पाने की उनही चर्चित की प्रशंसा उन्हें भी करनी चाहिए। जो आसौचक सन्त-काव्य की गई आवृत्ति न देखकर निरास हुए हैं और महादेवीजी के रहस्यवाद को मूलधर्म समझते रहे हैं उन्हें किसी उत्तर की अपेक्षा ही नहीं है।

यह सामान्य नियम है कि प्रतिभा लक्षणबोधमेपदीन होती है यह आवर्तन नहीं करती निर्माण करती है और यह लम्पता प्रत्येक युग की काव्य-रूपाको गई अंग-सञ्चति और मनीन भाव-अंगिमा से मङ्कित करती है। महादेवीजी का मध्य सुस्पष्ट है और पत्र सुनिश्चित। यह कहीं भटकी नहीं उन्होंने कही अपना मार्ग नहीं बदला और वह निरन्तर राग तुम्हो डूर जाना का अनुसरण करती रहीं।

बस्तु महादेवीजी छायावाद-युग की रहस्योगुखी छुटी कवि और अंतर्मुखी सुखी काव्य चिन्तक है और उनके ये दोनों रूप मकरोपी हैं। गीति-सीमा के अन्तर्गत जो कुछ वह स्पष्ट नहीं कर पाई उसे वह समीक्षारमक दिग्दर्शकों में निरूपित कर सती है। इन्हें मन्त्रय ही लक्षण और उदाहरण नहीं कह सकते। यहाँ गीति रचना कवि-कर्म है और काव्य-चिन्तन मध्यमन मनन का परिणाम। यह भूमिकाया स्पष्टीकरण है लक्षण निरूपण नहीं। यह आसौचकों द्वारा किये गए आलोचकों के उत्तर भी नहीं है।

महादेवीजी की यह महान् उपलब्धि है कि उनके काव्य उत्तम-चिन्तन और

साहित्य-समीक्षण में कोई बाह्य या आन्तरिक विरोध नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका व्यक्तित्व टूटा हुआ अस्त-म्यस्त अथवा मुञ्जीटा-भारी नहीं है। वह अतिशय सज्जत और सुगठित है। प्रसादजी के शब्द उच्चारण तो मैं कहूँगा कि 'उसमें इच्छा किन्ना ज्ञान मिल गये थे। कबली करनी और छुनी की यह एकता जो अपना विचार और जीवन के रूप में अविरोधी जान पड़े कोई सामान्य विद्ययता नहीं है। महादेबीजी के लेखन की सजाई और उसके स्थायित्व के सम्बन्ध में इसी कारण हमें निश्चिन्त होना चाहिए।

सौन्दर्यानुभूति

आनन्दप्रकाश दीक्षित

सौन्दर्य का प्रथम मायाकार वस्तु विषय के आकार अथवा उसके रूप-रस के साथ सम्बन्ध होता है और उसकी अन्तिम परिणति गहरीता की खोज के सम्पर्क में अनुभूति के रूप में होती है। जगत् के साथ पहला सम्पर्क-सम्बन्ध मनुष्य को उसके वैभिन्य और वैचित्र्य के प्रति मौल्यपूर्ण कौतूहल से विचलित कर देता है और उसके अन्तर में आनन्द की तरंगवर्ती भाव प्रवाहित कर देता है। अतः वैचित्र्य को ही सौन्दर्य का आधार स्वीकार कर ल तो उसकी अन्तिमिति वस्तुगत भावनी होती। आरम्भिक स्थिति में व्यक्ति का मन सौन्दर्य का भोगता है और उसकी खोजता सौन्दर्य का निरन्तर करने में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है। ऐसा ज्ञान नहीं रहता। इस बात का बोध नहीं रहता कि सौन्दर्य की प्रतिष्ठा वस्तु में नहीं अपितु उसकी वृत्ति में ही अधिक सम्भव होती है। मनुष्य में इस खोजता का विकास होने से होता है कि वस्तु का सौन्दर्य व्यक्ति-मापेक्ष अथवा बहुत-कुछ व्यक्ति-मापेक्ष भी होता है।

अनुभवपूर्ण कौतूहल की आरम्भिक मात्रता व्यक्तिगत मन के प्रसादन से हेतु प्रायः मुख्य-शोभन को ही अपना आशय-स्थान बनाती है और प्रायः बुद्ध-जगत् के बीच ही प्रसार पाती रहती है। खोजता के विकास और जगत् के नाना रूप-स्वरूपों की परिचिति और अनुभूति के साथ-साथ हमारा मन केवल अनेक वस्तुओं के वैचित्र्य के बीच से संवर्धित होता हुआ भी जब एक ही वस्तु के अनेक रूपों का भी परिचय प्राप्त करने लगता है तब गहरीता की वृत्ति अपनी खोजता के सहारे सौन्दर्य का ऐसा पट बुनने लगती है जो उसकी कल्पना पर निर्भर और जीवन्त के उप-विद्यमान माया और उन्हें उभारने वाली वस्तुओं के सामन्त पर आश्रित रहता है।

स्वयं में आन्तरिक सूक्ष्म की ओर आश्रित होने का यह क्रम वैचित्र्य और अनेकता से एकता की ओर आश्रित होने का क्रम बन जाता है। जगत् के नाना रूप-रसों के बीच अनेकता में भी एकता की खोज करने वाला मन बुद्धि और हृदय में से कभी एक का और कभी दूसरे का सहारा लेता हुआ मार्ग ढूँढ़ने लगता है। बुद्धि की प्रेरणा उच्च ज्ञान के क्षेत्र में आती है और हृदय की प्रेरणा उसकी रागात्मकता को खेदकर बगा देती है और व्यक्ति-मापेक्ष के रूप में मनवाह्य माध्यम के सहारे बुद्ध-जगत् के साथ-साथ अन्तर्जगत्

क वृत्त भी उपस्थित करने लगता है। बाह्य कलाकारों में आन्तरिक उत्कृष्टता का रूप बनने लगता है। एसी वृत्त में प्रायः उसका मन का बाह्य या कौशोर प्रीत्युत्तरपूर्व बुद्धिमान किन्ही अनुभव मत्ता क प्रति निष्प्रभाव बन जाता है जिसके परिणामस्वरूप जगत् का सारा प्रसार ही कलाकार का उस मत्ता में परिणामित-सा प्रतीत होना लगता है और उसकी निष्ठा जगत् क सारे रूपों क प्रति एक विषय साधारणक सम्बन्ध में आइ देती है। "सका एक नीचा परिणाम यह होता है कि कलाकार की आँखों के सामने धं मुरुप और वृत्त का भेद हो जाता है और उस सारे प्रकृति ही सुन्दर जान पड़ने लगती है। वह सारा रूपों का उपस्थित करना लगता है और सब रूपों में एक ही मत्ता का सामान्य पाकर उसका चित्त सबक प्रति मुग्धता और आह्लास में भर जाता है। इस रूप में वह मौल्यवन् क माध्यम में ज्ञान की सम्प्राप्ति ला करता ही है अतएव एकता क सत्य को भी साथ ही ग्रहण करना लगता है। उत्कृष्टता और सर्वज्ञानात्मक की भूमिका यही है।

अनुभूति की इस स्थिति की कलाकार में दो दिशाएँ सम्भव हैं जिनके द्वारा वह इस अनुभूति का अभिव्यक्ति देना या दे सकता है। एक वह सबक एक ही मत्ता का दधान या अनुभव करता हुआ कबल उस क्षीम और अनन्त की कल्पना में भी सीन रह जाता है और दूसरे जगत् के सारा रूपों में उसी की छवि का प्रसार करके व्यावहारिक परात्म पर अनुभव की एकता और जीवन की अस्पष्टता का बोध कराने में प्रयत्न हो सकता है। एसा कलाकार जीवन के सारा रूपों क चित्रण क माध्यम में उस चिराद् शक्ति की ही मुग्धता देना है किन्तु पहल प्रकार क कलाकार क मरण आत्मनिष्ठा या अन्तर्मुग्ध में आकर वह समावृत्ति और बहिर्मुख हो जाता है। पहला समावृत्ति महारथी क समावृत्ति होता है और दूसरा अनुभूति क।

जो कलाकार मौल्यवन् के इस सार-संपादनक मुक्त-सुखात्मक रूप का समर्थन करने लगता रहता नहीं बन पाते वे अन्तर्दृष्टियों के सहज उत्पीडन प्रतिन मौल्यवन् के स्थान पर बन्तु क बाह्यी आसार प्रकाश में ही उसकी शोच करने लगते हैं और साक्षात्कार की अज्ञेता महारथी की आधुनाभूति को प्रपय देने और कला को कला क निष्ठा स्वीकार करने हैं।

महादेवीजी कला का लक्ष्य कला महा मानती। कला क वाच्य का भा सत्य है अतएव सत्य की प्राप्ति। यह प्राप्ति जीवन में दूर रहना नहीं बनिपु उसी क दीन क सत्ता निवासकर हा हा पानी है और इस प्राप्ति में शीघ्र एक माध्यम बन जाता है। इस सत्य सत्य लक्ष्य जीवन के माध्यम में पर्यटन हुआ कलाकार और गहीना का ज्ञान का अनुभव होता रहता है। अतः मौल्यवन् यही जीवन की अस्पष्टता और लक्ष्य का प्रतिष्ठाता है यही ज्ञान का प्रभावकर्ता भी है। इस निष्ठा को प्रयुक्त करने हुए, एमानिष्ठा, महादेवीजी ने कहा है "कला का सत्य जीवन की परिधि में मौल्यवन् क माध्यम द्वारा व्यक्त सत्य है।" अथवा "सत्य वाच्य का माध्यम और मौल्यवन् सत्य है। एक अपनी लक्ष्य में अर्पण रहता है और दूसरा अपनी अज्ञेता में अज्ञान इसी में साधन क परिष्कृत

स्विकृत खण्ड रूप से साम्य की विस्मयमयी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम जानकर की सहर पर उल्लास हुआ बसता है ।^१

'जीवन की परिधि' और 'अनेकता में एकता' की बर्षा इसलिए आवश्यक हुई कि केवल व्यक्ति-सम्बन्ध से सौन्दर्य का विचार करें तो देश भेद से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच इतना अधिक रश्मि-वैचित्र्य बिखार देगा कि न तो सौन्दर्य का ही कोई एक रूप निरिच्छत किया जा सकेगा न ही सामंजस्य का । इस वैचित्र्य के कारण उपस्थित अव्यवस्था में बचने का एकमात्र रास्ता है सम्पूर्ण जीवन को स्वीकार करना । वस्तुतः कमानत सौन्दर्य जीवन की पूर्वतम अभिव्यक्ति पर आधारित है केवल बाह्य रूपरेखा पर नहीं ।^२ जन्म की सुदृढतम वस्तु भी इस दृष्टि से महारूपपूर्ण है और प्राणि-जगत् की अनेकार्थक वृत्तिसीमा से भेकर अन्तर्गत की रहस्यमयी विविधता तक सब स्थितियाँ सौन्दर्य के अन्तर्गत वृद्धित होती हैं । यहाँ तक कि 'छोटा बड़ा सब कुछ सुन्दर, बिस्वप व्यापक ममानक कुछ भी कसा-जगत् से बहिष्कृत नहीं किया जाता ।'^३

कसा-जगत् में सुन्दर और बिस्वप दोनों का एक-साप स्थान है । "व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्म-शोक आशा-निराशा सुख-दुःख आदि की संख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने ही के लिए कसा-मूजन होता है ।"^४ किन्तु उसार में सुन्दर और बिस्वप जीवन-सापसता में घट या बढ़कर भी बिखार दे सकते हैं । "संसार में प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसी सीमा तक सुन्दर है जिस सीमा तक वह जीवन की विविधता के साथ सामंजस्य की स्थिति बनाय हुए है और प्रत्येक बिस्वप वस्तु उसी अंश तक बिस्वप है जिस अंश तक वह जीवन-व्यापी सामंजस्य को चिन्न-भिन्न करती है ।"^५ किन्तु सुन्दर की हमारे जीवन में वही स्वाभाविक स्थिति है वही बिस्वप की नहीं है । सौन्दर्य से हमारा परिचय अभिव्यक्ति का है और बिस्वप से औपचारिक । दोनों एक ही सामंजस्य की ओर इवित करते हुए भी परस्पर भिन्न हैं । 'सौन्दर्य अपने समर्थन के लिए त्रिध सामंजस्य की ओर इंगित करता है बिस्वपता भी अपने विरोध के लिए उसी की ओर उकित करती है पर दोनों के संकेत में अन्तर है । प्रत्येक सौन्दर्य-खण्ड अखण्ड सौन्दर्य से जुड़ा है और इस तरह हमारे हृदयगत सौन्दर्यबोध से भी जुड़ा है पर बिस्वप व्यापक सामंजस्य का विरोधी होने के कारण हमारे भीतर कोई स्वभावगत स्थिति नहीं रखता । सौन्दर्य से हमारा वह परिचय है जो अनन्त अन्तरासि में एक सहर का दूसरी सहर से होता है पर बिस्वपता से हमारा वसा ही भिन्न है वसा पानी में फँके हुए पत्थर और उससे उठी सहर में सहक है ।^६ इतना ही नहीं सौन्दर्य की चिर-नवीनता उसे काव्य के लिए प्राण बना देती है और बिस्वपता साधारण होकर उस सीमा में स्थान नहीं पाती । 'सौन्दर्य चिर-परिचय में भी नवीन है पर बिस्वपता अति परिचय में नितास्त साधारण बन जाती है । इसी से सौन्दर्य की रूस्मानुभूति ही अन्तर्हीन काव्य-कला में नये परिच्छेद बाढ़ती रहती है ।'^७

१ बीपशिखा मूत्रिका पृ १ ।

२ वही पृ ६ ।

३ वही, पृ ७ ।

४ वही पृ० १८ ।

५ वही, पृ २० ।

६-७ वही पृष्ठ २८ ।

मीन्द्र्य की अनुभूति एक प्रकार से रहस्यानुभूति ही है। बाह्य जगत् ही नहीं अन्तर्जगत् में होने वाले व्यापार भी हमारे लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। स्मृत और मूढ्य के सामंजस्य में ही जीवन है कबल स्मृत या केवल मूढ्य की जपनी चाहे बीबी स्थिति हो जीवन के लिए उनका महत्त्व नहीं है। कर्म का चितना महत्त्व है उससे कम भाव का नहीं है। "हमारे जीवन में मूढ्य और स्मृत की जैसी समन्वयारमक स्थिति है वही जसा को, केवल स्मृत या केवल मूढ्य में निर्वासित न होने देगी। जब हम एक व्यक्ति के कार्य का स्वीकार करेंगे तब उसकी पट भूमिका पर बने हुए बायबी स्वप्न मूढ्य आदय रहस्यामयी भावना आदि का भी मूल्य अंकना आक्षेपक हो जायगा।"^१ अन्तर्जगत् की यह स्थिति रहस्यानुभूति में आनन्द की प्रतिष्ठा करती है अतः सोन्द्र्यानुभूति को रहस्यानुभूति मान सत पर उसमें आनन्द को स्वीकार करना महत्त्व हो जाता है। इसी से महादबीबी का कथन है "व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सोन्द्र्य या प्रत्येक सामंजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सोन्द्र्य-अर्थ या सामंजस्य-अर्थ हमारे सामने किसी व्यापक सोन्द्र्य या अर्थ-सामंजस्य का द्वार नहीं खोल देता तो हमारे अन्तर्जगत् का उन्मत्त में आश्रोतित हो उठना सम्भव नहीं। इतना ही नहीं किमी कर्म के सोन्द्र्य और सामंजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति हो सकती है इसी से मनुष्य ऐम कर्मों का आशोक-स्तम्भ बना-बनाकर जीवन-पथ में स्थापित करता रहा है।"^२

मीन्द्र्यानुभूति में अतीतिक रहस्यानुभूति तक का यह यात्रा-पथ जीवन की विविधता को उनके मध्य एवं अलग-अलग रूप में ग्रहण करने के कारण ही आनन्दमय बन जाता है। बुद्धि जिस रहस्य को जय के रूप में ग्रहण करती है हृदय का व्यापार उस ही प्रय बनकर उपस्थित करता रहता है। प्रय का यह व्यापार चाहे चितना ही अतीतिक रूपों का हो जसा के अन्त में अतीतिक भूमि पर ही संवरण करता है। उगात्मकता माधुर्य भाव का पन्ना पकड़कर ही जाये बहती है। रहस्य की हम भूमि पर अन्तर्जगत् की अनुभूति भी बाह्य जगत् के समान ही महत्त्व हो उठती है। हमारे पथों में अलग-अलग क्षेत्र में तात्काल्य का रूप केवल बोद्धिक भी हो सकता है पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का जय ही हृदय का प्रय हो जाता है। हम प्रकार रहस्यकारी का आत्म-समय बुद्धि की मूढ्य व्यापकता में सोन्द्र्य का प्रयत्न विविधता तब पैम जाने की समता रहता है अतः सममें सन्धीर बिन् की एकता में आनन्द महत्त्व सम्भव रहेगा।^३ तथा रहस्यानुभूति जब महत्त्वपूर्ण में बनकर अलग-अलग और अलग-अलग तब पहुँचना है तब उनसे लिए सपन अन्तर्जगत् के बीजक की अनुभूति भी महत्त्व हो जाती है और बाह्य जगत् की सीमा भी भी। अथवा अथवा अथवा का अध्ययन पूराता में सिता दत्त की दृष्टात्त जे पूरा आत्मन्त की प्ररत्त देनी है। यदि हम तात्काल्य के साथ माधुर्य भाव न होना तो यह आना और जय की एकता बन जाता भावभूमि पर आचार आधय की एकता करी ।

१ शोचिता, भूमिका, प० ६।

२ बही पृ० २७-८।

३ बही प० २६।

४ बही पृ० ३१।

सौन्दर्य और रहस्यानुभूति सम्बन्धी इन मायतामा के विरह १९५८ का १० वीं वर्ष का बचपन इस लिए हुई कि महादेवी का काव्य का सम्बन्ध में विचार की सही विद्या अपनाई जा सके । महादेवीजी की इन मायतामा का अनु रूप ही उका काव्य भी है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उाहोंने मायतामा को व्यावहारिक रूप देने के लिए ही काव्य की रचना की है । इसका विपरीत घायद यह कहना ठीक होगा कि अनुभूति के बस पर उपस्थित काव्य को जब चिन्तन का सहारा मिला तब उन्होंने अपनी भूदिकामा में उस अनुभूत राज्य को ही वाणी देने का प्रयास किया है । अस्तु

महादेवीजी का काव्य में अपने रूप की सुगन्ध-सुखारमक विविधता भी है और अलक्ष्य राज्य की अनुभूति भी उनमें सौन्दर्य के प्रति और सुव्यपुष विज्ञाना भी है और भाष्यपूर्ण तरह भावुकता भी मान्द्र अनुभूति को उपस्थित करने की शक्ति भी है और चिन्तनमय अकन की सहज कसाकारिता भी । फिर भी महादेवीजी का काव्य की प्रसार भूमि घट्टि बीजन और अगन्ध भने ही हो तयापि बीजन के प्रति उका दृष्टिकाप जितना आन्तरिक अनुभूतिपरक है उतना बाह्य अनुभवपरक नहीं । परम ही कहा जा चुका है कि इस दृष्टि में महादेवी तुमसीदासजी से भिन्न स्थिति रखती हैं । बीजन और परिस्थितियों का सामाजिक सम्बन्ध में बीसा रूप अंकित होना चाहिए या हा उकता है, महादेवीजी या तो उनमें परिचित होकर भी उासे अपरिचित ही बनी रहना चाहती हैं या उनमें पहचानती ही नहीं हैं । अतः उनका काव्य में अनुभूति की गीतात्मक सम्पत्ता तो है किन्तु विराट् सामाजिकता नहीं है । सुख-सुख से उका परिचय है अथवा किन्तु उाके विविध रूपों के उद्वेगन में अनेक घटनाओं के बीच उाके प्रकाशन में उनकी बुद्धि नहीं रमती । परिणामतः उका काव्य बाह्य प्रकृति में ही अभिव्यक्ति का उन्तोप ग्रहण करता है । उाका भी कवच प्राप्त सभ्या और राज् के चिन्त ही उाके रचिकर प्रतीत होते हैं अतुओं में बलन और बर्षा ही उाके विद्येप उन्तोक्तनीय ज्ञात होती है । मानवीय रूपों में गारी-रूप ही उाके माहता है ।

'मौहार' से 'बीपशिखा' तक के पुर पौष भरगों में महादेवी सहज अतीसुष्य के रहस्य से अवर उठती हुई अन्तत ऐसे स्वल पर पहुँच गई है जहाँ वह दृढता के साथ कह पाती है— हुए शून्य असात मुझे भूमि अन्त' अथवा अनु-हास की समान महता स्वीकार करती है ।

एक ही पर में पलै पलै एक से दोनों बने हूँ
पलक पुलितों पर, अचर-उपकृत पर दोनों लिखे हूँ ।
एक ही संकार में मुझ अन्तु, हास बुला चुकी हूँ ।

और 'बुद्ध से आबिल मुझ से पकित बीजन को वह मनी भाँति समक चुकी है किन्तु 'मौहार' और 'रश्मि' में गूँजने वाला उका उन्मास आज भी पूर्वतया खोया नहीं है । 'रश्मि' में महादेवी ने बिज 'कनक-ने दिन माती-सी रात मुनह्नी शीघ्र, मुनाबी प्राण को बेखकर जब के विचाधार की ओर विज्ञानु भाव से बंधा था उसका आकर्षण पट्ट नहीं हुआ है कवच आन्तरिक अनुभूति में अनेकानुकृत अचिक स्वर्य के लक्षण प्रकट हो आये हैं । बीजन-बीज की 'कम-कम को बाल सेने की जितनी तीव्र यन्त्र बीपशिखा' में

है उतनी हा उससे पूर्व की कृतियों में प्रकृति-बोध की मादकता भी है। न दीपदिग्दा में प्रकृति-बोध समाप्त हुआ है न उसमें पूर्व की कृतियों में जीवन-बोध। फिर नी महात्मी की रचनाओं का मूल सौन्दर्याधार ता प्रकृति ही है—बाह्य प्रकृति। प्रकृति का चित्रण करण हुए महात्मी बर्ण ध्वनि मध्य स्पष्ट और रंग आदि क ऐसे सूक्ष्म ऐन्द्रियबोध प्राण्य करना है कि पाठक का सबदनातुण हृदय कहीं भी उत्सास मिथिल नहीं होता। सौन्दर्य क मूल भिन्नवर्णी चित्र महात्मी न आंके हैं कि यहाँ सबका उत्पन्न मही किया जा सकता। कुछ दो-चार चित्र भी सामन रन जा सके तो बहुत है।

महात्मी न मुखरता उपा सध्या और रात्रि के ही चित्र अंकित किए हैं। किन्तु इन चित्रों में भिन्नता इतनी है कि कोई भी एक-दूसरे में मिलता जुलता नहीं है अथ भावार्थ में दूसरे में कम नहीं है। उपा क पाँच भिन्न चित्र देखें। रसिक की पट्टी कविता 'बुल्ल हा तेरा अकन बात 'मीरजा मे 'मन अरुण घुँघट तोल री' 'साग्यमीठ में भा अरुण-बमता' तथा 'आज मुनहमी बसा और 'दीपदिग्दा की सजग है जितना सबरा' कविताओं में पहला न प्राप्त कालीन स्वाकषी मृपमा जायरण की मति-मंगिमा और बातावरण की मादकता का रूप अंकित है ता दूसरी में तारक-कृमुम बुल्ले वाली मनउज नबाडा का सौन्दर्य उपर रखा है। मयउज अरुणवर्णी उपा अम्यर क तारक-कृमुम नम की हा म मज रजनी-रूपी मायिका क मोती का रूप और नव इन्द्रधनुषी मेघ-सहूरियों में विद्रमणी-इठपानी यौवनमल उपा का मल्लिमल मानवीकृत रूप उयवी मलिन चष्माओं के माध्यम म बहो महुदयता और मावबासी के अकन किया गया है। ओ अरुण-बमता म मय-बघू का रूप सामने आता है ता आज मुनहमी बसा' में माका परिवहन के मकता म किन्तु चित्त की वर्तमान सौन्दर्य को पकड़ मने की मयक है और गजम है चितता गवेरा मे रात्रि क घन कुहासे का शीरकर उपरिचन हात बासी उरुममिन उपा का स्वानन है। गरुड म मज चित्र बकन उपा क ही नहीं है निगा की मायेगता मे उपा के चित्र है अथ पद-परिचयन का-मा परिणामकारक मोह-आम र्चयान है।

उपा क समान ही मरणा के भी कई चित्र हैं रसिक में मरणा का भावमय 'मयक मुपमा का मूजन विनाय का मुखक बनता है आजकाल मे साग्यमीठ मज बमने आकाणी रग-रुजा पर रात्रि का अरुणवर्ण फिर आता है ता कहे बिना मही रजा जाना—

मलाओं से रवि का रूप लीप
जना परिचय में कहुना होय
बिगेमनी मध्या भरी मुजाग
दुनों के उरता इकल-वरगा
उमे तन की बड़ एक इच्छोर
उडा कर ले जानी विल और ?
अबह मयमा मजम विनाय
परी बना अय का स्वाभोवा-बाग ?

'साग्यमीठ की मरणा भी अने अरुणवर्ण में माजक है।' —

भात्र सुनहनी रेनु मसी सस्मित घोमुनी मे ।
 रजनीगम्पा भात्र रही है नयनों में सोना ।
 हुई बिद्रुम बेला नीमी ।

। रोगाचक चित्र है और अन्त में पूर्वकथित सिद्धान्त भी 'मृष्टि भरने पर वीसी' शब्दा में पुहुरा दिया गया है किन्तु 'बीपशिक्षा' में 'गायत्री अब बीप जसा सं' बिठा म केवल साम्य-शौच्य के बीच उभरती रजनी का स्वागत ही है परिवर्तन का केत देकर किनी सिद्धान्त से उसका सिरा बोझने का प्रयत्न नहीं है। साम्य रया को छकर महादेवी इतना ही कहती है—

कुमकुम से लीमन्त लजीसा
 केशर का आलेपन पीसा
 किरसों की मंजन-रेखा
 लीके नयनों में आज लगा से ।

अपना यह कि

किरण-नास पर चल के छतरल
 कलरच-लहर दिहक-बुद-अर चल ।
 सिस्तिब-सिग्मु को चली अपन
 आभा-सरि अपना उर उमया के ।

उपा-बर्चन की भांति न तो सम्प्या-बर्चन की बहुलता ही है और न वीसी विविधता ही किन्तु रजनी के कई रूप महादेवीजी की कविताओं में अक्षर्य मिलते हैं। महादेवीजी की 'प्रिय साम्यपयन मेरा जीवन कहती अवश्य है किन्तु सम्प्या के उतने चित्र नहीं उरहती। सबसे अधिक इनका मन रमा है रात्रि-बर्चन में। रात्रि के प्रति उनका आकर्षण 'नीहार' और 'रस्मि में पुसक मरा है नीरबा में आबेधमय और 'साम्यगीठ' तथा 'बीपशिक्षा' में निर्वाणोग्मुख 'नीहार' की निम्नांकित वंकिठयाँ सम्पूर्ण कविता के ह्य बिपादमय पाठावरण में मुहुस सबेहन और अन्तर्मर्षिों को ही आगुठ नहीं करती बल्कि पाठक को मिसल के मादक व्यापार में जिमोर भी करती हैं। शब्दों का ऐसा अर्धमय प्रयोग कम ही देखनेको मिसा करता है—

रजनी जोड़े जाती थी
 मिलमिल तारों की जाली ।
 उसके बिजरे बीज पर
 अब रोती थी उदियामी ॥
 धनि को छूमे मचनी सी
 लहरों का कर कर चुम्बल ।
 बेनुष तम की छाया का
 लटिनी करती आनिपन ॥

शौच्य की अखड प्रतिमा की तरह रजनी महादेवीजी भावार्जन का लव्य बधती रही है। बसन्त में शरीर और प्रकृति को जिध मनीन वेठना की पाँठ खोलकर अकस्मात् ही

हय निमर बना दिया है उसी में रजनी रानी के अंगों को भी सहैज दिया है। धरद्व-ज्योत्स्ना में भाई हुई रजनी नहीं बनन्त रजनी ही महादेवीजी का ध्यान भावपित करती है। उनकी रूप-मन्त्रा के लिए उनका उपक्रम देखने योग्य है। पुनः हाम सकोष और मिहरन का एसा धम है कि प्रिया का प्रिय में मिलन के पूर्व से लेकर उनके अन्त तक का चित्र भागों के सामन भावन लगता है। प्रकृति पर नारी भाव का आरोप तो महादेवीजी ने बार बार किया है किन्तु 'भीर-भीरे उठर सितिल से आ बनन्त रजनी कबिता में प्रसाधन-शील्य और भावपरिह उपनाम का जैसा विश्व अंकित किया है वह स्थायी प्रभाव डालता है। यदि हम कबिता में नबीका का लक्ष्य-समीक्षापन है तो भीरजा की ही प्रथम कबिता 'रूपमि तेरा पन बेम-नाद' में मद्य स्नाता का उद्दीपक शीघ्र्य अंकित है। उच्छ्वसित वध मलयक बयाज बन जाने वाली निरवाम म्निव सटें और पाम ही कहीं कूजने वाली मसुरी—सारा दुःख ही एसा है कि अनजाने ही मन कूने के लिए बेकस हो उठ लेकिन यह बेकसी रूप व मुन्दे की बकनी नहीं है उदास जग सिंगु की माँ के आँचल में यह छिरा मन की बेकसी है। प्यार का एसा रूप भीतसता का एसा स्वर्ण भी चितना सुख होता है चितना सुखर। इन्ही कबिताओं की तुलना में 'नीरजा' की हू 'ओ बिभावरी कबिता रखकर दलें चिननी मोपी और कैसी संकितात्मक है। 'साग्यपीन' की 'जाग-जाग मुन्देचिनी पी में महादेवी का स्वर बरन गया है। उन्नाम और भावेव की तीव्रता से स्थिरता माने सगी है विरवन बरबिल है। एक अस-सा भाव उन्निता-नी और चिनो का पप देगती प्रमिका की भाव-गमयता-नी ही इन कबिता में ध्यात दीसती है और 'दीगणिका की 'मपन जगाती आ पीपक कबिता में उपस्थित रजनी साधारिक मुक्त-दुःख के मन्त्र में वचन मृदुम सप के लिए उपयानी बन गई है।

उया मध्या और रजनी के रूपचित्र ता केवन उदाहरण के लिए ले गिये। दसम महादेवीजी की कबिताओं का भीष्य ही इन बात में है कि उनही कबिता की रचना में प्रकृति और मानव भाव को अलग-अलग करना मरन नहीं है। प्राकृतिक दृश्यों में उनकी बरनना को देखकर जना दिया है उनही साग्यकता को रूग्ण का पप प्रकियत किया है। प्रकृति के भाव भाव-तरंग के विषय के कारण ही उन्हें 'तारिका'एँ कविन भी अनजान-सी' जल बरनी है और एक कृपुणम जाग उन्ना है कि 'दूक व मंगीन सा बर बीन है ? महादेवीजी के सामने कभी प्रकृति चालिका बन कर उन्निपन नहीं होता गदैक बर बेमिनी ही बनकर आनी है। उन्हें 'अबदि अरहर की गहरी भीन में तरन मोनी-मा जगपि ही करिना' नहीं दियाई देना अविनु बारि' में विपन की मुगानन भी दियाई रनी है गिन मर बीररों में जुगनू और केनय मुस्ताबनी में नारकों को देगहर उन्ना उन्नाम कई मुना हो जागा है। बर मधुमान और नीर बरी बन्सी भी उन्नी है तो भी इनके उन्नाम में कोई मृदुता नरो आनी। उन्हें ता यही लयता है—

आर बपर बिहार की पिर कबला आई यामिनी ।

बरन-मुपि के इन्नु में उठवा वलक की खँदनी ।

दीगणिका में अरहर उठ उन विरवा मयो रना और जनी निरर्ग-मृगण का देगा लान हो जागा है कि उन्हें बरना बहा—

यम यया मन्दिर विलास सुख का वह शीघ्र हास,
दूटे सब बलय हार, व्यस्त और अलक-यास
बिध यया अज्ञान आज किसका मूढ-कठिन तोर ?

किन्तु प्राकृतिक मौन्दर्य के प्रति उनका अत्यल्प रहस्यवाद की ऊँचाइयों में बरसा सा भसे ही सगता हो मृग्य नहीं हुआ है। जो बात महादेवी पहले चिन्तों के माध्यम से कहती थी उस 'दीपसिखा' में वह प्रतीकों और विरोधाभासों के माध्यम से कहती रहती है। अन्तर दृष्टना ही है कि जो महादेवी किसी समय भरहुड़ बनी कभी निरबरोध कहती थी—
'मैं मत्तबानी इधर उधर प्रिय मेरा अलबेसा-सा है वह अब ६५ अलबेसा की पार करके स्वैय-स्वैय की ऐसी भूमि पर पहुँच चुकी है जहाँ वह कहती है—

आज तार गिला चुकी हूँ ।
सुमन में सकेल-गिरि
बंभल बिरुप स्वर-प्राम जिसके
जात पठता किरण के
निझर झुके लय-नार जिसके,
वह अमाना रागिनी अब साँस में ठहरा चुकी हूँ ।
सिन्धु बल्ला मेघ पर,
स्फटा लङ्कित का कण्ठ गीता
कंठकित सुख से बरा
जिसकी व्यथा से व्योम लोका
एक स्वर में बिह्व की बोहरी कला कह चुकी हूँ ।

किन्तु, प्रकृति का उनका साम आज भी घूटा नहीं है। अब वह प्रकृति की सवि के बिना नहीं आँकती मानव की ध्वनि में ही प्रकृति का रूप अंकित करती है फिर चाहे वह कवण रूप ही क्यों न हो। कवण को भी इस प्रकार की अनिष्टमता से देना भी इसीलिए सम्भव हुआ है कि वह सुख-सुख के सामंभन्ध नहीं विश्वास रखती है। अतः कहती है—

तरल मोती से नयन भरे ।
मानस से के उठे स्नेह धन
कसक-विद्युत् पुलकों के क्षिप्रक

सुखि-नवासी की छाँह पलक की सीपी में उतरे ।

तब वस्तुतः महादेवीजी की समस्त शौन्दर्य-निधि उसी एक की आराधना में अविष्ट है हृदय के समस्त भाव उसी को समर्पित हैं। और जो उसे समर्पित है वह सुन्दर ही हो सकता है या सुन्दर ही बनाकर दिया जा सकता है। अतएव महादेवीजी की जितनी भी अनुभूति का भेद चाहे बीसा हो शून्य में अन्तर कभी नहीं जाता। उसी के ऐश्वर्य से प्रकृति भी ऐश्वर्यमयी ही होसती है अतएव नीलम के बावत प्रभास-सी उपा मोनी-नी गार्ध मोती-से तारे, मोती-सी आँसू की बूँदें सोने के बिल और सम्प्या में स्वर्ण पद्म ही उन्हें विचार देता है बादलों में बिजली मोमम के मन्दिर में हीरक प्रतिमा बन

जानी है मन-पुनर स्वयं कुंडुम में बसाकर रेंबी जाती है और तिमि-वाम कनक भाग मोमय क यार्नों पर बौड़ने जान पड़ते हैं । प्रहृति के य रंग कही उमकी बबिता म रंगीना कोमयना स्तूनि और आत्मा क चित्र भक्ति कर्त है कहीं मौन्दय की छपिकना का परिषद देल है । इतना ही नहीं महादेबीजी का प्रहृति यदि उम्पाम स मुदमुगानी है ता बिग्र क क्षत्रों में कम्प रामोच भादि मारिकका की अभिव्यक्ति का महारा मी बन जाना है । यह पर प्रहृति का आरज बन हूण महाराबीजी उन स्थितियों का भी मुषर चित्र अंकित करन में अत्यन्त कुशासता प्रदर्शित करती है । मुकुमारता म य चित्र अन्त है और अनूपन में ही मुम्पना का अभिवाय है ।

महादेबीजी की मौन्दर्पानुमति क सम्बन्ध में यही भाग्यत सीम्प का बिचार करना उचित न हाया । उमक माध न्याय करन क लिए पुषक सेक की आबधयता है अतएव उमक द्वारा व्यक्त किये गए मौन्दय-सम्बन्धी बिचारों क सुन्दर तय ही इस मय की मीमा मानना उचित है ।



अतीत के चलचित्र

आशा गुप्त

मेरे हँसते बच्चे नहीं बच की आँसू लड़ियाँ बनें ।

मेरे गीते पलक झुंझो मत मुझमें कलियाँ बनें ॥

—महादेवी

महादेवी बर्मा आधुनिक युग की प्रमुख कवयित्री के रूप में अधिक ख्यात हैं । परन्तु जब साहित्य-बध्येता उनके गद्य-साहित्य से बीड़ा भी परिचय प्राप्त करता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कवयित्री का कथकार रूप कम महत्वसाली नहीं है । कतिपय बालोपक ठी उन्हें अपेक्षाकृत सफल कथकार मानते हैं । उनकी अल्पसंख्यक कथ-रचनाओं में वे अधिकोद्योग स्मृति की रक्षाएँ 'अतीत के चलचित्र' में संगृहीत हैं । महादेवीजी ने इन अतीतचित्रों को लिपिबद्ध करके प्रकाश में आने के दो कारण स्पष्ट किये हैं । एक तो इस रूप में उन अतीत चित्रों की चमक समय के साथ बुझती नहीं पड़ेगी बिनके सम्पर्क में लेखिका के चिन्तन की दिशा बरती और संवेदना को गति दी है । दूसरे, उन्हें यह भी आशा है कि इन अपूर्ण रचनाओं और भूषण रत्नों की समष्टि में किसी सहृदय पाठक को अपनी छाया की एक रेखा मिल जायगी । ये लघुकथित अकिञ्चन व्यक्ति अपने अत-विस्तृत जीवन में निगटे किसी क्षिप्ताने की हाट या प्रदर्शनी का उपकरण नहीं जो साहित्य-बन्धु उनसे अपना मनोरञ्जन करना चाहे । उस दृष्टि में उन्हें अपनी स्मृति-निधि से इन रत्नों को प्रकाश में आना बेहजनक ही प्रतीत होगा । एक बात और । इन संस्मरणों के भूषण बालोपक में जो लेखिका का व्यक्तिगत जीवन झँक रहा है वह भी उस रास से अधिक महत्व नहीं रखता जो बहुत समय तक सजीव रखने के लिए ही बंगारों को बेरे रखती है ।

'अतीत के चलचित्र' में कुछ मिलाकर प्यारह संस्मरण-कथाएँ हैं । इनके अतिरिक्त करना से भीगी और बेचना से विभक्त एक अपूर्ण कथा स्नेह में समूह उस बूडे की है बिसे इन संस्मरणों की प्रेरणा का श्रेय मिला है । महादेवीजी ने उसका परिचय एक सम्बद्ध बटनाएँ संन्या गोपन रखी है । फिर भी उस अपरिचित बूडे में कुछ ऐसा भीवापन है कि नेत्र सहसा आर्द्र हो जाते हैं और शेष संस्मरणों का हीन पीड़ापरक और निपाकन जीवन मानस-जलु के समस्त उमर-उमर आता है । अठ' अपूर्ण होकर भी उस कथा में पूर्णता का बल है । लेखिका ने इन अतीत चित्रों में अपनी सम्पूर्ण भावना और

बीषण व माय समाज क घोषित दीन-दुःखी पीड़ित घोर दलित बग का अपारंपारी रूप प्रस्तुत किया है। ये पात्र न ता कोई पौराणिक या ऐतिहासिक महापुरुष हैं और न समाज के प्रतिष्ठित उच्चवर्ग के समूह-भग। ब्रह्म जन जीवन के एम कृष्ण चिह्न हैं जो मा तो अनिता और घोषण क कारण दीन एवं मरम हैं या निर्धारित नियमों के अपवाद बनकर समाज की घोर उद्देशा क पात्र हुए हैं। महादेवीजी की कोमल करम स्मृतियों का बिना एक मोर समाज क चमत्कारी बग रामायण मेरहीन असोपीवीन कुम्हरे बरतु कुम्हार और कमठ पहाड़िन-अछमा पर तना है और दूमरी ओर उनके हृदयत भातनाद का बान-बिचवा मारवाड़िन मानुहीना किन्ना परित्यक्ता भगिन सबिया बान-बिचवा माँ और बरया-मुषी की सिपकिया मुन्कर कर रही हैं। कन्नाचिन् भीमा-जैमे कतम्य-रत विज्ञामु दीन विप्यों का दृष्टि में रतकर ही महादेवी ने कहा है कि "किन्ने अन्धे अन्धे माण हैं जा जीवन में भाव बड़न का अकमर नहीं पाठ और माँ ही मर जात हैं।" बेडीत यहाँ क निर्माता बरतु कुम्हार को ममुचित प्रोत्साहन द्वारा प्रतिष्ठित कमाकारों की कोटि में लाकर महादेवी ने माना मध्यमाग्य कमाकारों को िखा दिया कि 'बना उम्हीं का पैतृक अधिकाय नहीं कल्पना उम्हीं की शीतनामी नहीं।' मेरहोन असोपीवीन का मकल कमठ बीषण उम मुक्क बग के लिए कुनीती है जा निचला और अममपत्ता का मतिपा याकर मकमल्य जीवन को म्गुय मानता है। कुन्दलकण्ड के कुम्हण रामायण ने बर्मा-परिवार क बर्षों को मोहित करक जीवन क इस बिरमन सत्य पर पुन प्रजात डाला है कि "बानर केमन जीवन को पहचानता है। जहाँ जीवन से स्नेह-अदुमाव को किरणें पूरती बान पढ़ती हैं बहाँ तक बानर बिषय रेगाओं की उद्देशा कर जानता है और जहाँ डिय-पया बारि के घूम से जीवन डँका रहता है बहाँ बह बाह्य कामरस्य को भी पढ़न नहीं करता।"

इसी प्रकार महादेवी के आत्मरत कमाकार की छापटाण मृग-मृग से समाज हाग पीड़ित निरमृत और परम उद्देशित मारी के लिए है, बह मारी जो उनके अनुज्ञा माता भगिनी पत्नी पुत्री मादि के उनके सम्बन्धों से बालस्य ममता स्नेह बारि अयंक-भायताओं में तथा कोमल कगेर आयताओं की बिबिचता म पूर्य को मूमिष्ठ होने क बिमारोहन तक घेर रहती है और मृगु के उतराल भी उमे स्मृति में पीबिन रखने क लिए उपमम मरग्या म मरी हिरकनी जो आदिम बान से बाह तक बिबान-पय पर पूर्य का माय रेकर उमकी पाया को करम बनकर उनके अविगातों को म्बत अककर और अपने बरदानों से जीवन में अतय दलित करती रही है।^१ पर पूर्य ने उमे कपी मणिग मे अधिक मरुव मरी दिया। सबसे अधिक मागतीय मारी दम म्बत बँदल्य में जैमी अरमानित प्रगाड़िन अधिकाओं में बंदिन और म्बकितावरीन प्रापी है बह बाह रक्यमिष्ठ है। हिन्दू समाज के उमी अर्द्धाव की दयनीय दणा परिपक्वा मदिन पुनरिवाहिता बिहू अधिकाहिता माँ बेग्या-पुत्री बान-बिचवा माग्वाड़िन तथा पगादिन मत्तया से प्रतिबिम्बत है।

काव्य-श्रृंगार की भावुक तथा सामयिक प्रणयिनी महादेवी यहाँ बरती की बेटी माँ और बहन के रूप में अवतरित हुई हैं। लेखिका के जन्मस् का कोना कोना मानो हिन्दू जाति की इस रुढ़िग्रस्त एवं अभिघृष्ट नारी क अछूते बचपन असमय में इतल यौवन और तिरस्कृत बुढ़ापे के साथ हाहाकार कर उठा है।

यथार्थ और आदर्श तथा सामयिक समस्या से विषया नारी के विपादमय जीवन का स्वल्पत उवाहरण किछोरी बीबती है जो समाधि जैसे घर में लोड़े के प्राचीर से बिदे फूस के समान बिना संघी-घाभी और आभोद प्रभोद के निरन्तर बुढ़ा होने की छावना में लीन थी। यौवा संस्मरण रंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ बच-बलित समाज की नारी सभिया का है जो अविधित होते हुए भी उत्सर्ग की महान् भावना से अनुप्राणित है। सभिया की उस एकान्त स्थिति एवं अतोसे व्यक्तित्व में महादेवीजी ने पौराणिक नारी की मूलक देखी है जिसने यौवन की घीमा रेखा किसी अज्ञात भोक तक फैला दी थी। क्योंकि सभिया उन महिमाओं में नहीं है जो पति क हरेकपन को उसके बँसल कार, बैसल आदि क पासग पर रखकर मारी कर सक्ती है। उसकी गलना न उनमें हो सक्ती है जिनके याचना-अधिर के द्वार पर स्वयं भर्म के कडोर और सजग पहरेदार हैं, और न उनमें बिनय उद्भ्रान्त मस्तकों पर समाज की नंगी ललवार कटकी रहती है। वह तो उस प्रकार से स्वल्पत एवं स्वतः नारी है। यदि उसे जीवन के लिए मृत्यु से लड़ना पड़ा तो वह न मरने के लिए जीवन से संघर्ष करती रही परन्तु समाज की नृचंघटा बैलिए कि अपनी पति भक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा के लिए न ही प्रतिच्छिन्न मध्यमय में उसकी पजना हो सकी और न निम्नवर्ग के बन्धु-बान्धुओं की सहाजुभूति उपलब्ध हुई। ऐसे समाज पर बिबुम्भ महादेवी अपने जन्त में तीघ आक्षेप संभोये मानो समस्त पुश्य-जाति को अपनी कोबाभि में भस्मघात् कर डालना चाहती हैं। आप कहती हैं "पुश्य भी बिबिध है वह अपने छोटे-से-छोटे सुल के लिए बड़े-से-बड़ा बुजबे डालता है और ऐसी निबिधता से मानो वह स्त्री को उसका प्राप्य दे रहा है। उसी कर्तव्यों को वह भीनी से डँकी कुनैन के समान भीठे-भीठे रूप में चाहता है।" लेखिका को समाज के मनोविज्ञान का वैया परिचय समतल में मिखा बैसा ही पर्वत की बिपम भूमि पर उपलब्ध हुआ। पर्वत से बिठी हुई उन जाटियों में यही निष्कर्ष मानो सूक्ति-रूप में सूबता है कि "एक पुश्य के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुश्य-समाज उघ स्त्री से प्रतिघोष लेने को उताक हो जाता है और एक स्त्री के साथ कूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब त्रिवाँ उसके अकारण रूप को अधिक मारी बनाए बिना नहीं रहती।" स्त्री-पुश्य के सम्बन्धों को लेकर महादेवीजी का कफलम्ब किती किताबी ज्ञान पर आकारित नहीं है अपितु वह इस बिरन्तन सत्य तक मौलिक जीवन के तथ्यों के सहारे पहुँची है। यही कारण है कि उनके संस्मरण अधिकोघत नारी की अभिसप्तानरत्ना और परलघटा का चित्र उपस्थित करते हैं। और बिबवा परित्यक्ता नारी के जीवन-चित्रों की यह तलसी प्रकारान्तर से उनकी आत्मा का बिडोही स्वर प्रतिष्पनित करती है।

इसके अतिरिक्त महादेवीजी ने बहया समस्या पर भी सम्जीर चिन्तन किया है जिसका प्रथम सोपात छोटे संस्मरण की अभागिन बाल बिबवा माँ है। सम्भवत समाज

की ओर से सहानुभूति का समाज ही बेधवा-भूति के प्रादुर्भाव का कारण रहा है। अपन अकाल बचप्य के लिए जो होपी नहीं टहलाई जा सकती उसी बेधवा-बिह्वस माँ की बकामत करते हुए वह पुत्र्य-जाति से कह उठी है— बर्बरो! तुमने हमारा मारीत्व परतीत्व सब से लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी। यों तो बेधवा-भूति को बचप्य समझने वाले आदर्श पुरय-समुदाय की समाज में कमी नहीं है परन्तु माता पत्नी पुत्री आदि त्रिगुणात्मक उपाधियों से रहित जीवमुक्त नारी के इस रूप से पुदय-समाज का सम्बन्ध भी है। अतः स्वार्थबद्ध पुदय नारी-वर्ग के इस उपेक्षित अंग को न पत्नी रूप में स्वीकार करना चाहता है और न माता या भविनी रूप में। अन्तर के बिस्त्रोम को महारथीजी प्रकट होने नहीं देना चाहती किन्तु व्यय्य और सीमापन उसकी उचित में आ ही गया है। आप कहती हैं— 'बहु पतिव कही जाने वाली माँ की पुत्री है और बिना समाज के प्रवेक्षण के ही छाप्पी स्थियों के मन्दिर में प्रवेश करना चाहती है। उसे पता नहीं कि समाज के पास वह आहुती छड़ी है जिसे छूकर वह जिस स्त्री को सती कह देता है बचस बही सती होन का सौभाग्य प्राप्त कर सकती है।'

इसमें जानना चाहिए कि यदि पाताल का सब जीव-जन्तु स्वर्ग की ओर लौड़ पड़ें तो सृष्टि एक दिन भी न बसे। यदि वह अपने गुह बन्धव्य से च्युत होकर पत्नीत्व मातृत्व आदि सम्बन्धों को चुराती किंरें तो समाज चुराई हुई बस्तु पर इनका स्वत्व स्वीकार करके क्या अपना विद्याल ही मिथ्या कर दे ?

बिट्टे के अमाये जीवन का स्मरण अन्तमेत विवाह-वैभे उन्नत प्रश्न पर चिन्तना करने को बाध्य करता है। व्यय्य से बोद्धि और करणा से भीया हुआ तर्क उपस्थित किया गया है कि समाज में २४ बप का विपुत्र पुत्र्य भी १६ वर्षीया पत्नी की माफासा करता है। जत नियमानुसार ३२ वर्षीय बिट्टे को १२० वर्ष का पति मिलना चाहिए पर। परोपकारी सम्बन्धियों न यदि कम आयु का बर सोज दिया तो बिट्टे को कुनस होना चाहिए। नारी की इन दयनीय स्थिति ने मूल में बस्तुन उसकी आपित परबधता है। बही उसे दतता अकिपन एवं मयप्य बनाए है। इन सामाजिक संकीर्णता धार्मिक बग्यन और आर्थिक परबधता में समाज ने अपन सबस अर्जाग महीपणी नारी में उन कुशों को नहीं पीग्या को उन इन विपमताओं में भी स्वतन्त्र एवं मुक्त बनाए है। उन पुत्रों की ओर संवेत करते हुए महारथीजी कहती हैं—'एनी जब किसी सायना को अपना स्वभाव ओर किसी मरय को अपनी आत्मा बना सेती है तब पुत्र्य उसने लिए न महारथ का विगय रह पाता है न मय का कारण।'

समाज ने महारथी बर्बो ने अपन अनीत जीवन की मीक्रियों में अमावस्य भगनाओं के विचार कुम्हार, बुजड़ मूयबयें आदि तथा पुत्र्य की कामुकता की गिरार और सामाजिक बाधनों में अकरी नारी को आशा-निराशा एवं उनके अन्तर-बाल्य के अज्ञानता का मन्मथुर्ण विचन किया है। हममें बही उनका हृदय बग्यन में निरस सहानुभूति में मग्ग एवं बचना में बराह रहा है ता नही आशोग साम एवं टीम में तडन उठा है। हाँ समाज की घमनिमी में प्रभाटिन दन विरिथा एवं अर्थकर विगमताओं का नही समापान प्रस्तुत नहीं दिया गया है। बनेकि दे सम्मरस मन्त्र जहाँ 'पय न

साधियों को कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की मूर्ति का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था। दूसरे इस घटाघात के बीच अन्न कण्ट और बाली में ऐसा सत्य का बस सेवर था कि मैं हम उनकी जेसा कर पाते हैं न उन्हें अनदेखा या मनसुता। इस आचार-मिति पर जीवन की कुंठा देखकर हमारा हृदय काँपता तो है पर चह नहीं पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवी का 'श्रुतमा की कविता' में व्यक्त आशोक संस्मरण में संविदना का रूप पारण कर गया है—आशोक समाज के प्रति और संविदना उन कल्पानुर्ध मानव मूर्तियाँ के प्रति है। इन पाशों का व्यक्तित्व और अस्तित्व महादेवी के कारण कर्षों से अभिविभक्त हो गानो समाज के लिए एक चुनौती बन गया है। धर्म-विशेषों में लक्षित वे व्यक्ति महादेवी की अनुपम कर्माकृतियाँ हैं जिनमें हमारी सामाजिक विपमता की प्रत्यक्ष रूप में आ जड़ी हुई है। हाँ ऐलिया के विचारों में किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ता की छाया भी नहीं मिलती। उदाहरण के तौर पर अरब संस्कार की समस्या पर उनका दृष्टिकोण निर्भीक सत्यपूर्ण एवं सदा है। संसार की पीड़ा से सर्वथा अस्पृश्य आत्ममीत एवं आत्मकेन्द्रित कवयित्री की मध्य में इस यथार्थवादी शैलिक एवं सहानुभूतिपूर्ण विचार धारा की अभिव्यक्ति देखकर बहुधा यह आरोप लगाया जाता है कि पद्य-यम दोनों को ही महादेवी का अलग व्यक्तित्वों का परिचय देती हैं। किन्तु स्मरण रहे कि उनके इन विरोधी व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँध कर लेना बमर भाव-विन्दु 'युक्त' है। यह दुःख वाच्य में अतीतिक प्रियतम को लेकर अभिव्यक्त हुआ है और यही शैलिक तत्त्व में समाज के इन छोपित एवं अभिसप्त बनों के प्रति समानुभूति तथा सहानुभूति का रूप पारण कर गया है। यह संविदना ही उनके सम्पूर्ण साहित्य की सुगुणलक्षण किय है।

जैसा कि महादेवीजी ने भूमिका में स्पष्ट कर दिया है अतीत के 'व्यक्ति' का प्रायः संस्मरण स्मृति-विशेष है। क्योंकि इनमें उनका अपना जीवन भी सम्मिलित है इसलिए विश्वों में कल्पना को कड़ी अवकाश नहीं है। स्वयं उनका विचार भी है कि जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पाशों को वास्तविकता से अलग कर निकालता है उसी परिचय के लिए मैं अपने पद्य के साधियों की कल्पना का परिधान पहनाकर दूरी की मूर्ति क्यों करती? कहानी-कला के आद्यकाल में कल्पना-तत्त्व के अभाव में डॉ. रामदेवचरण तथा पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रभृति आमाशकों ने इन्हें संस्मरण ही माना है। हाँ रामदेवचरण सभी स्मृति-विशेषों को कहानी की संज्ञा देते हैं। पं. शान्तिप्रिय द्विवेदी और डॉ. रामदेवचरण भी महादेवीजी को कहानीकारों में परिगणित करते हैं। इसका मूल कारण सम्भवतः यह है कि संस्मरण पापचाल संपर्क की रंग है। यह गद्य-शैली का वह अमिषक रूप है जो जीवन के सत्य और वास्तविकता की अनुभूतिमय अभिव्यक्ति करता है। संस्मरण में कल्पना का स्थान पाप या चपटा के प्रति अनुभूत प्रतिचिन्ना पर लेखक की टिप्पणी के रूप में रहता है। जो तो कला की दृष्टि से कहानी संस्मरण की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है परन्तु संस्मरण का जितना प्रत्यक्ष प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है, उतना कहानी का नहीं। इसका कारण मुख्यतः संस्मरण का सम्पूर्ण व्यापार ही कल्पित चिन्ना का सकारण है। अतीत के भूमित विषयों की सकारण अभिव्यक्ति

ही सस्मरण है और इस कसौटी पर आसोध्य चित्र उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जैसा कि कह जाय है सच्चिका को इस सफ़सता का सबसे बड़ा कारण उनकी हृदय की सवेदनशीलता है जो उनके पारिवारिक जीवन तथा वातावरण का सुपरिणाम है। माता में उन्होंने आस्तिकता और भावुकता तथा पिता से असाधारणता तथा कर्मनिष्ठा की भावना ली है। निर्धनों की सहायता की प्रवृत्ति भी उन्हें माँ से ही मिली थी जिसका परिणाम हमें रामा जैसे सस्मरण में मिलता है। उनकी माता ने ही रामा की कुरूपता का काबारभ भेजकर उसके आन्तरिक अक्षय सौन्दर्य को परखा था। इस प्रकार साधना सक्रम्य और भोक्तृ-कर्म्याण की भावना से संपुक्त महादेवी ने ये सस्मरण रेखाचित्र-रूप में सफ़सता से प्रस्तुत किये हैं।

रेखाचित्र की यह शैली माहिर्य-शैल में चित्रकला से आई है। सबको द्वारा जीवन के बिबिध रूपों का आकार दल की बिबि को रेखाचित्र कहा जाता है। जिस प्रकार कैमरापैन व्यक्ति का फागो सेते समय उसकी पृष्ठभूमि का भी दृष्टि में रगता है उगी प्रकार महादेवी के समस्त रेखाचित्र गमात्र की मुमुक्षु पीठिका पर खिच है। ये गहरचित्र हिन्दी में अपन बन के गर्भप्रथम और साकत हैं। उदाहरणार्थ रामा का चित्र देखिए—

‘जिसी एक र्थभ्रमाए गिम्पी की अन्धिम भूम जैसी बनगड़ मोटी नाक मौन कम्प प्रवाह से फैन हुए-स मयन मुक्त हेंसी से भरकर पून हुए होंठ तथा काम परपर की प्याली में बही की माद दिमान बामी सपन और मज्जेद इत्तवक्ति के सम्बन्ध में भी दही मरम है। और बसिए महादेवी की वास्यसलो बिम्बा का आकार प्रकार मामो कृपिता की मोटी-नतली रेखाओं में उमर आया हा “दो पैसो में आन बानी लजड़ी के ऊपर मज्जे क्रिस्ती के समान पतले चम में मड़ और भीतर की हरी-हरी लगी की भ्रुक दन बाए उसके दुबसे हाथ-वर में जाने किस अशाठ भव से अबसलन रहते थे। इस प्रकार के सकारातीत उदाहरण इन चमचित्रों में उदून किय जा सक्ते हैं जिनमें बरमू मरिया पीमा और बलासीरीम की रेखाएँ स्पष्टतर और अधिक गहरी बन पड़ी हैं। बरमू का रेखाचित्र भी इत्थम है—“उमकी मुयाठनि साबसी और सौम्य थी पर किये गामा से बित्राह करन नाक के दानां धोर उमरी हुई हृदियां उसे कंचान सहीरर बनाय बिना नभा रहनी। मग्बा इबइरा तरीर भी कभी मुशोय रजा हाया पर निचिआ आकार-बलि के कारण जनमय बडापरवा के भाग में मुन आया था। उरमी छाटी आँवें स्त्री का आंग। प गमान ममरु भी पर एकरम उल्लाहीनता में भरी हाने के कारण बिचनी कानी निट्टी में मदी मूर्ति में जोड़िया में बनी आँवों का स्मरण दिमाकी रहनी थी। कौरुठ होना में म निकमनां हुई गम को परमराहट मुनन बाने को बैन ही चौका देती थी जग बाँदुरी में म निरमता गम का स्वर।” विनेया के चित्र के समान ऐत और काम दिग्गुओं में विनिज यह गहरचित्र नीच पनि में कैना के मयन बनता-दियदता बनता है। मयना और करणापूग गहानुमृति के बाइ के बिटावर सेगिता के जा पात्र प्रमन किय है के मयं मुन रहा है। अत गहरमना में मकार कम है स्वय महरवी उनक बिपय में प्रविच बामनी है। हा! कितना बह बहनी है और जो कुछ पात्र स्वय बह पाता है उही में चरित दोम उरन है।

इन रेखाचित्रों को ममस्पर्शी और प्रमादोत्पादक बनाने के लिए महादेवी ने उपमार्गों का चयन इस प्रकार किया है कि रेखाएँ सहृदय के मन को विरोधी भावना से भर देती हैं और उन वस्तु में हँसना निष्कुरता और मौन रहना सहानुभूतिहीन जान पड़ता है। सबिया की बचिया को देखिए जिसके—“सूखे छरीर में नये पत्ते की खंचलता न होकर पास से खिल न सकने वाले बँबे किसलय कोरक का अवस्र हिलना दुसना था। कोने में बुबके हुए 'भीषा पर वृष्टि' चाटी है 'जिसकी उमरी हड्डियों वाली परंत को मँभाज हुए नुके कन्धों से रक्तहीन मटमँती हबेलियाँ टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नालुनों से पुकन हाथों वाली पतली बाँहें ऐसी भूमती थीं जैसे झामा में बिन्दु बनने वाले की हो लक्ष्मी भुजाएँ।” रामा की कुम्भता और कामेपन को उपमार्गों ने सहार अभिव्यक्त करने में मेखिका ने अपनी कुसम सेकनी का परिचय दिया है— ‘साँप के पेट जैसी सफ़ेद हबेली और पेड़ की टेढ़ी-मेढ़ी गाँठवार टहनी जैसी बंगुनियाँ।” कहीं-कहीं मुहाबरेदार भाषा का उपयोग भी मिलता है जिससे कवन में प्रमत्तचित्तता एवं संश्लेषिता था गई है। रामा की कोठरी में महामारत क अंकुर जमना कान को सूजा हीप बनने से बचाना खेत के संसार में सूखा पड़ने की सम्भावना अंगारों से बाँधक का भर खाना दूध-से सफ़ेद बाल और हूपफेनी-सी सफ़ेद बाबी काँच की गोमियाँ-जैसी निष्प्रम माँखें सूनी जाँघों में बाड़ माना खेत में लकड़ी पर लीबाई हुई मन्की-जैसा छिर बाँधि बोल-खाल की खन्नावसी से संयुक्त छोटे-छोटे बाक्यों में गँबी भाषा में प्रवाह और बुटीभाषण दोनों हैं। अनेक स्थलों पर काव्यमय उरमाओं से असक्त वाक्य-योजना उसके कवि-हृदय का परिचय भी देनी चली है यथा—

१ रामा के कुम्हलाएँ मुख पर ओस के बिन्दु जैसे जानन्ध के जाँसू दुसक पड़े।

२ सवेरे के पुलक पक्षी वैतालिक एक लयवती उड़ान में अपने-अपने लीड़ों की ओर लौट रहे थे। बिरल बादलों के अन्तराल से उन पर चलाते हुए सूर्य के सोन के लम्बे मेड़ी बाण उनकी उरमा गति में ही उलझकर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।

३ अपने हलो पर मोटी-सा बल भी न ठहरते देने वाली कमल की सीमासीत स्वच्छता ही उसे पंक में जमने की सक्ति देती है।

४ मलय के मँके के समान मुझे कष्टक बन में लीँच लाकर उन्होने जो हो फूलों की बरोहर सौपी थी उससे मुझे स्नेह की सुरभि ही मिली है।

५ पुष्पी के उच्छ्वास के समान उठते हुए अँधसेपन में वे घर आकष्ट-मग्न हो गए थे।

६ वैशाख नये वाक्य के समान अपनी अग्निबीषा पर एक से एक मन्दा बलाप लेकर मद्यार को विस्मित कर देता चाहता था।

७ लक्ष्मी का पहाड़ के हृदय पर पड़े जाने वैसा जोटा भास-मूस का घर है।

इनके अतिरिक्त इस वर्ष का जीवन 'सूनी पुस्तक' जैसा अवकाश कुछ जीवन के कम-से-कम १४ बसन्त और पतझड़ देख चुके हँबि जैसे वाक्य-पाश्चात्य अभिव्यक्तता के अलक्ष्य प्रभाव का सकेत करते हैं। इसी प्रकार विषय-मेद के साथ भाषा का साहित्यिक रूप भी उन स्थलों पर उपलब्ध है जहाँ जीवन का गम्भीर एवं दार्शनिक विवेचन हुआ

है। यहाँ सम्बन्ध-सम्बन्ध वाक्य उत्पन्न शब्दों में गुंथे जैसे आते हैं। उदाहरणार्थ—“सैद्यक की स्मृतियों में विविधता है। जब हमारी भाव प्रकृति गम्भीर और प्रधान होती है तब बौद्ध की रेखाएँ कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्टतर होने लगती हैं।” अथवा ‘वास्तव में जीवन सौन्दर्य की आत्मा है वह सामंजस्य की रेखाओं में मिलती मूर्तिमत्ता पाता है उतनी विषमता में नहीं।”

संश्लेष में मानव और संसार की क्रिया—प्रतिक्रिया से उत्पन्न ज्ञानबृत्ति और अनुभूति सम्कारों का ताना-बाना-सा बुनती बसती है और महादेवीजी के शब्दों में हम प्रतीत होता है कि संसार-यात्रा में हमने ऐसे अनेक विरूप लक्ष्य देखे हैं जिस निकट ठहरने की हमारे व्यस्त जीवन को इच्छा ही नहीं हुई परन्तु उस मूर्ति से साक्षात् होने ही हमारा जीवन अपने सम्पूर्ण बेग से उसे बरकर उसी प्रकार भार्य करने लगता है जिस प्रकार तीव्र गति वाला जल-प्रवाह अपने पथ में पड़ हुए सितालक्ष्य की प्रवर्तिता कर-करक उस अपने लीकरों में अभिविकल करन समता है। हमारा हृदय कहता है—‘यह मेरा है हमारी सौन पूछनी है—’इतना अन्तर किसलिए। ‘हमारी बुद्धि प्रश्न करती है—‘ऐसा ईन्य क्यों। मनन चिन्तन के उपरान्त इस अन्तर का कारण स्पष्ट उभर जाता है—कलाकार महादबी ने अपनी प्रतिभा से उस लक्ष्य-विशेष को जीवन की बसन्त पीठिका पर प्रतिष्ठित और सामंजस्य की व्यापक आचार-मिति पर अंकित करके हमारे समान उपरिष्ठ किया है और उस रूप में हमारे जीवन का सत्य उसकी उपेक्षा नहीं कर सका।

देवीजी छयाबाब-युग की विधिष्ट यत्कर्त्री हैं। 'शृंगलाजी कड़ियाँ' 'साहित्यकार की आस्था' तथा अन्य निबन्ध श्रुति के चलचित्र 'स्मृति की रेखाएँ' पद्य के साथी और 'कलशा' आदि गद्य कृतियाँ इस युग की अशुभ-निधि हैं। उनके काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाएँ उस युग-मात्र की भूमिकाएँ हैं। देवीजी यहाँ भावुक भावक की स्थिति पर आती हैं। उनकी कारयत्री और भावयत्री प्रतिभा का सम्मिलन अस्तुत आसौचक एवं आसौच्य वस्तु का सम्मिलन है। कवि के स्पष्ट सिद्धान्त पृथक काव्यशास्त्र लिखित करते हैं जो आत्म प्रतीति के साथ-साथ पद्यारम्भता का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। ग्रन्थ की आशायों में कवियों (कवि-कर्म) की शमीटी (?) कहा है। पद्य की एक मामिक उक्ति रचना में अमरकार नाबन्ध एक सरसता ही सृष्टि कर सकती है, पर पद्य को सांगोपांग उत्कृष्ट होना आवश्यक होता है। अभावों का प्रकटीकरण पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक सरसता से उपलब्ध है। अस्तु, गद्यकार को आद्यत बड़ी सतर्कता संयम और अनुसन्धान का निर्वाह करना होता है। महादेवीजी के सम्बन्ध में एक और भी बिलक्षणता है वह मूलतः कवि हैं जो तीव्र संवेदनशीलता के आगे में अपने भीम मार्गों द्वारा हृदयवाद की प्रतिष्ठा करती हैं। कवि की भावुकता रसात्मक व उगारमक होकर आत्मस्फुरित अजल प्रवाह (Spontaneous overflow) में परिवर्त हो जाती है अथ वहाँ वैचारिक पक्ष का आग्रह अधिक तीव्र नहीं होता है। काव्य बुध्दयत्न के निष्पत्ति है और मूर्खों तथा से किञ्चित् पृथक। गद्य उसके विपरीत वैचारिकता का अधिक आश्रय लेकर हार्दिकता की जपेला करता है। महादेवीजी की सफलता का यही मूल रहस्य है कि वह एक साथ भाव और विचार का सम्पर्क निर्वाह कर लेती हैं कवित्व के भावुक क्षणों में वह संवेग से प्रेरित होकर हृदय की अतिसवर्ती परिधिओं का सस्पर्श करती हैं तो गद्य-लेखन के समय वह चिन्तन के क्षणों में आरमनीय होकर वैचारिक समस्याओं के अनेक विकल्प विस्लेषण और विवेचन प्रस्तुत करती हैं। उनकी इस साधना का निश्चित परिणाम है कि उनका साथ साहित्य (पद्य एवं गद्य) भाव और विचार, बुद्धि और हृदय संक्रम्य और विकस्य आदि एक ही प्रक्रिया से परिष्कृत और आन्दोलित है।

विद्वान् का गद्य प्रायः परिष्ठ होता है किन्तु देवीजी पर यह उक्ति पूर्वतः चरितार्थ

महीं हो पाती। उनकी गद्यात्मकता कहीं भी गरिष्ठता निरिष्ठता और अरोचकता का कारण नहीं हो पाती। मघ-लेखन में उनकी सम्पन्न अनुभूतियाँ वैचारिक निष्कर्ष का स्वरूप धारण करके प्रकट हुई हैं परिष्कृत कहीं भी वीर्यकता का आर्तक नहीं है प्रयुक्त हृदय की सुकुमार पृष्ठियों का अन्तःप्रकाशन भी है काव्य और कला छायावादी रहस्यवाद प्रगतिवाद आदि मृगीन समस्याओं पर गम्भीर विवेचन करती हुई भी वह अपनी अभिव्यक्ति को इतना सरस-सम्प्रवणीय और प्रभावोत्पादक बना देती है कि उक्त स्पष्ट ही एक पृथक गद्यकाव्य का नाम बना पड़ता है। अपने लेखाभिन्नों में वह स्मृत और सूक्ष्म दोनों अक्षयों को सतर्क निरीक्षण द्वारा संघटित करके अपनी मूक अनुभूतियाँ को भी सहाय्य कर देती हैं हृदय पात्र का अन्तर्बोध्य निरूपण उसका सामग्री स्थापन और उसकी मानसिक प्रगियों का उद्घाटन इतनी सरसता और सुपक्वता के साथ कर सकना नामात्म्य कार्य नहीं है। अध्ययन के मनन के बाद चिन्तन की जो स्थिति होती है उस पर अचिच्छित होकर यह बाह्य जीवन की स्मृतता और अन्तर्जीवन की सुदमता का मिश्रित प्रतिपादित करती है। जीवन के सत्य दिग्दर्शन एवं सौन्दर्य पर जो समुपस्थित करन के लिए वह अपने कृतित्व का नया मापदण्ड निर्धारित करती है जो परम्परा भोषित न हास्य निदान्त अभिनव है महादेवी का मघ आद्यन्त केवल वैचारिक ही नहीं है उसमें मानसिक प्रगियों के साथ ही हृदयवादी आस्था भी प्रमाणित हुई है। काव्य की वैयक्तिक भावभूमि यहाँ निर्बन्धित कला के आचल पर प्रकाशित हो उठी है। चिन्तन की मौन अनुभूतियाँ मघ में सक्रिय हो रही हैं इसलिये वह यहाँ विचारक की अपेक्षा सुधारक अधिक है। भारी आशंका उनकी गद्य-कृतियों में कुछ अर्थ भाग और बह गया है। उनकी मुक्त निम्नूह और उदासीन बेदना स्तुत लक्ष्य और कर्मनीति प्रस्था के रूप में परिणत हो गई है। वह यहाँ तत्स्य तथा असंपृक्त नहीं है। उन अमंथव निरीह प्राणियों की घोर संकल्पना के बाद वह अपनी जीवन की अगह्यता से अपना मौन बत भंग करके मघ-रोध में उतर पड़ी है और उन वर्गों की अपनी सामाजिक व बोद्धि महात्तुमूर्ति देती है।

देवीजी के प्राक्कथनों के पीछे उम युग की अभिवायता का एकाग्रही स्वर है। कविता के क्षेत्र में अधिक प्रसन्न नहीं है। काव्य की भावधारा अ-उत्पत्ती होकर वैयक्तिक संवेदना में लोप है। यहाँ चिन्तन और विविध समस्याओं के निकटता के लिए अक्षय नहीं है। छायावादी काव्य स्वतः एक अस्पष्ट ध्वजता है और रहस्य का आचरण जान देने पर वह और भी कुछ गोपनीय और विम्वयनात्मक बन गया है यद्यपि यह उन कवियों का अभिचार्य शक्ति या कि वह प्रतीकों को रहस्यात्मकता अनुभूतियों की सहाय्य और आनन्दन की अनात्मकता को अर्थ नगदर करने मघ के माध्यम में प्रकट करे। प्रत्येक छायावादी कवि इनीलिए व्याचरणा बन गया है। इस काव्य के मूल में एक सरस प्रतिबिम्ब भी रही है। अन्तःसाहित्यिक प्रतिबिम्ब मिश्रितों तथा अभिनव भाव भूतियाँ की स्पष्ट पोषना करने के लिए प्राक्कथनों में उन्हें सुगम होना पड़ा है। देवीजी के काव्य में एक नया अनुभूति की तीव्रता दर्शन की सामिप्यता और चिन्तन की बोद्धिना सहाय्य हो जाती है अन्तः उद्घाटन करने के लिए पृथक रूप में एक पूर्वनाम की अपेक्षा नहीं है। इन सूचितियों में मघ की भाँति न वह अपना स्वच्छन्दवादी मूर्तवादन

करना चाहती है और न निरुत्साही की भाँति अपने गर्वोद्धत अहं प्रतिभाही विपत्तियों पर प्रहार करना चाहती है। उनका कवि स्वयं बड़ा सहिष्णु है और वह ज्ञान के प्रति यौन है। पर युग की मिटटी हुई आस्थाओं के रखनाई देवोत्री अत्यन्त पूर्वाश्रिता के साथ सत्यन हो उठी है मिरते हुए विस्वातों को बहु पुनः प्रतिष्ठित करना चाहती है और इस पामिक सम्मता में साहित्य की उपयोगिता को निरुद्ध करने का उपक्रम सोचती है।

महादेवीकी प्रारम्भिक रूप से कवि है और सन-सन कमल प्रौढ़ता के विकास के साथ गद्य-गद्य पर उतरती जाती है। भाव से विचार, हार्दिकता से बौद्धिकता और उम से यद्यन की दृष्टि के साथ गद्य-लेखन में बहु अधिकारिक प्रभुत्व होती है। काव्य-प्रयोगों की मूर्तिकारों के पीछे उनकी बुद्धि विचाराएँ हैं। ध्यायाचार के प्रकृत-रूप में अनुकूल समीक्षकों के अभाव के कारण उन कृतिकारों को स्वयं निर्णायक बनना पड़ा है बलुद्ध गद्य इनकी आत्मरक्षा का साधन है और उनकी सुजन प्रक्रिया का स्वानुभूत साध्य है। देवीकी के संयम का यह विविध परिणाम है कि उनकी मूर्तिकारों में न आत्म-विज्ञान का मन्त्र है और न प्रतिष्ठा की शक्ति। वह विद्युत् आत्मचित्तन और स्वयं मग-वर्धन है। प्राचीन धार्य वैज्ञानिक सम्मता और उपयोगितावाद का यह नया नमनोत्था है जिसे भारतीय संस्कृति के परिपार्य में रखकर परखा गया है। देवीकी अपने चिन्तन के अन्तर्गत में लोक-नहानुभूति से उत्प्रेरित हैं जिसे आचार में रखकर वह समामाजिक विचारधाराओं में उलझती है। भारतीय आत्मन की सम्मर्ष में रखकर तत्प्राप्त्य की परीक्षा केवल बहुजना प्रवर्धन के लिए नहीं है अपितु यह लेखिका के अभिमतों की पुष्टि का साधन है। उनका उद्देश्य प्रामाणिक है इसलिए औपनिषदिक भावधारा और पुरातन संस्कृति का उल्लेख समानुपातिक रूप में ध्यायात उत्पन्न नहीं कर पाता।

आत्मोच्च गद्य-लेखन भाव-सम्पदा की दृष्टि से तो महत् है ही पर चिन्तन और रचनात्मक की दृष्टि से अपनी विषेय उपयोगिता रखता है। यह महादेवीकी की प्रायोगिक सिद्धि है कि वह एक साथ अपने निष्कर्षों को बौद्धिक विचारधारा और काव्यात्मक रक्षात्मकता के परिपार्य से अनुप्राणित करके प्रस्तुत करती है। उनके वैज्ञानिक केवल अभिधेय ही नहीं हैं उनमें विषेय बस्तुओं के बहुरूपी चित्र हैं जो विषय-सिद्धि की लोकी अनुभूति उत्पन्न करते हैं धार्य ही अपनी अभिव्यक्ति-कीटन और धार्यप्रिया द्वारा गुण चिन्तन की दृष्टि करते हैं। इन विषेयों में आचारमकता का समुचित उपयोग हिन्दी गद्य के लिए एक नवीन आदिष्कार है। और में समझता है इसका यौवन प्रथम बार देवीकी को ही प्राप्त होता है। यही उनकी विशिष्ट गद्य-परिणाम है जिसका युगगत विकास और उसकी गतिविधि का संकेत प्रबोधनीय है, प्रत्येक पात्र उसकी तीव्र खिचन का फल है किन्तु दृष्टि सैलिका ने अपने हृदय-रस से अभिव्यक्त करके की है। इस अन्तर्जाता में तपकर एक-एक भाव्य निरुद्ध पठा है इसलिए आत्म-संस्मरण के सम्पर्ष में वह महता पूर्वक पात्रों के चटकीले रूप-रंग-वर्धन की सूक्ष्म रसाओं और चटनीकी की कमबडता का उत्पन्न निर्वाह हो सका है।

महादेवी का गद्य उरव-चिन्तन और शीघ्रपेन्द्रवाटन का सम्मक निर्वाह करता

है। वह जीवन की मार्मिक अनुभूति के कारण संवेदना और रसात्मक अभिव्यञ्जना द्वारा अपने कुछ-ही विषय को भी प्रपञ्चीय बना देती हैं। गद्य-कला में केवल बौद्धिक विमलमण्डिता ही नहीं सतिका की आत्मा का ग्रंथ भी है। सर्वत्र अप्यारम और मनुष्य की स्वच्छ मनोवृत्ति का संयम उनके गद्य में भवसाक्षीय है। जस पृथ्वी पर ठट वगाता है उँके-नीसे कगारों में बाँपता है पर घट्टी क नीच जस-जस से ज्वाला म शिलाज्वालों से और अनेक पानुओं स अनाजाम ही मिल जाता है इनके बीच ठट रेतगलों का प्रदन नहीं उठ्ठा। प्रस्तुत उगाहरण उनकी विवचना-प्रक्ति दार्शनिक महत्ता और सूक्ष्म निरीक्षण की तस्तीमता का प्रमाण उपस्थित करता है। चिन्तन के पन्चात् निष्कप निर्वारित करते समय उमका विषय बढ़ा उगात् और उसकी अभिव्यक्ति प्रणामी बढ़ी उत्प्रेरक सिद्ध होती है। वैज्ञानिक युग के कवि-कर्म क प्रति उनका निर्देश इम बोज मुन का स्मरण करता है।

आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिए गृही अपने प्रति पीयरण हाकर भी सबके प्रति मनुतापी अपन लिए संन्यासी होकर भी सबक लिए कमयोगी हाता होगा ?" इन विमनों में रसमिठता की परिख्याति विषय उस्तेजनीय है।

महारेवीत्री का गद्य काव्य की भाँति गापनीय रहस्यानुप्रासित और अप्रयत्न नहीं है। वह मोन्दरं चमत्कार की मृत्ति म हुमागी जिज्ञासा-वृत्ति को दिग्भ्रमित नहीं करता अगितु अपनी प्रौढ वैचारिक अक्षिति से हवारी मानसिक वृत्ति को प्रघात करता है। गद्य में वह किमी महन मन्देय का आकुस माग्रह सेकर प्रकट होती है। काव्य की रीति यहाँ वह आमानन्द या स्वागत मुन की आत्मप्रतीति या वैयक्तिक कारमरोदन की एकदो अभिव्यक्ति नहीं रनती अपितु किमी विषय समन्या क अन्वयन म उद्भूत अपन चिन्तन का निष्कप प्रतिपादित करती है। गद्य के क्षेत्र में रीचीची मुन के प्रति एक अन्वय बनना एक न्यायक प्रतिक्रिया और विराम मानसिक अघान्ति सेकर अदतरित होनी है। काव्य के मौमिष्ठ कनेकर म जीवन की विविधतानुभव जिन विडम्बना का पर्ययाप वह नहीं करना चाहती उसकी पुत्रि गद्य में करती है। गद्य में उबाल अनुदात्त सांखिक अत्रिदात्त अथवा चिन्होद्गायक म्यरों का कोई निषय नहीं है। वह अपने स्वाधीन विचार के लिए ही गद्य की परिधि में बैठती है। छनों की जिस स्थिति को साहित्यिक कनेकर नहीं है पाना उसे वह गद्य के अध्ययन स सजाकर, सेवारकर प्रस्तुत करती है। आज उनके गद्य की विवेच्य सामपी कथ को अयेगा बढ़ी विरुट और उनकी परिधि बढ़ी प्रयत्न है। मयाज की कर्तमान काय प्रणामी के प्रति सतिका प्रमहिण है। नारी जीवन के प्रति वरर वर्ग का जो सामाजिक अत्याचार युग-युग म निरन्तर हाता आ रहा है उनके प्रति वह अमहिणु हो उगी है और माय ही आज के अति आपुनिकता के अमर्षादित एवम बीमम लक्षणों क प्रति आगतित है। "म द्विविधा का एरुटीकरल पद्य में मन्मय और मन्वय नहीं है। पद्य का आघय ऐम का वह प्रमुय काव्य है। हमने अत्रिक्ता एगाबाद की रहस्यामर वृत्तियों का जो मण्डन और दिग्भ्रमेय ममगामयिक युग म सुष्यन् आचादों द्वारा दिया जाता रहा है उसकी पुत्रि और अपने अतिवर्तों का वह पुनर्घातन इसी पद्य के क्षेत्र में मुक्तिवेष रहा है। काव्य-रन्ती 'पीपथिया' 'पामा' आनुविक कवि आदि के प्राकट्यन इरी मनों के विरचन हेतु प्रयत्न हुए है। साहित्य

की सामाजिक प्रवृत्तियों भवर्ण प्रगतिशीलता यथावत् वादीतिकाम्य छायावाद और विविध धार्मिक समस्याओं यथा काव्य और कला तथा अन्य भाष्यारिभक्त व दार्शनिक चिन्तना जैसे विज्ञान जीवन मरण मानव प्रत्यक्ष परोक्ष आदि सब सम्बन्ध प्रस्ता पर विचार-विमर्श करने का उपयुक्त परात्म उन्हें मनु की भूमि पर मिसता है यहाँ उनकी तथ्यान्वेषी प्रवृत्ति कवि की अन्तः प्रतीति के सार्वभौम-सहित लोक जीवन का स्पर्श करती है। भाव से विचार की ओर प्रथम स विराट् की ओर, प्राकृत-भूति से वास्तविकता की ओर उनका संस्करण प्राकृतिक विकास की दृष्टि से बड़ा सामानुपातिक और सर्व-सापेक्ष है। हिन्दी-भाषा के विकास में देवीजी की यह बिलजलता है कि वह आशेष म विवेचन वा समय नहीं ला देती और विवेचन को तहो में आकर भाव की सरसता भुला नहीं पाती। उनके प्रतिपाद्य तथ्या में जहाँ गूढ अर्थ और कुछ अर्थ का समावेश है, वही उनकी प्रतिभावन पद्धति बड़ी सुगुहलपूष रमणीय तथा मर्मित है। उपयोयिता के परिष्कार म साहित्य का यह स्याग—मै समझता हूँ महादेवीजी के यद्य-साहित्य का मेरुबन्ध है।

महादशी के पद्य म आरमपीठन के कारण परस्पर अस्वच्छिदारमकता और असामयान परिमसित है किन्तु यद्य साहित्य इसके प्रतिकूल विचारों की स्वतन्त्रता एष्वस्वरता और सामानुपातिकता के लिए प्रख्यात है। काव्य-राय में उनकी आस्था अस्तमूर्ती है। यद्य म वह बहिर्मुखी और भाष्यारिभक्त रागात्मक तथा कवित्वपूष अम्यास स निताम्ब पूषक यहाँ लोक मनेष विषमताओं से सम्प्ररित होकर मूढ चिन्तन में तन्मूर्ति होती है। यद्य में उनका जीवन और संघट मम कल्पित समाजायन के साथ प्रतिष्ठित हुआ है अस्तु यद्य के स्वरो में उनकी आरम-मत्यता अधिक-से-अधिक ममस्मिन्म ड़ा उठी है। उनकी समुभूतियां यहाँ कल्पना की मानी सजानी है जिनम यथार्थ का सक्ता निरूपण है। दार्शनिक सीमांसा के अन्तर पर वह एक विराट् रूपको का आयोजन करती है। जीवन की ऐत वृक्ष से समामता देता ओ कही यद्य में अम्यवत् है कही पत्रो म सहकहाता है कही फूसो में सुन्दर है कही कला म उपयोयी है और कही बीज में सुखनपील यह उनकी अमिम्यकित की अरम सिद्धि है।

रैषाविनो में देवीजी की यद्य-कला का उत्कृष्ट प्रभाव सुरक्षित है। उनका एक एक स्पष्ट साहित्य म पसन्दकता आरम कर लेता है कही-कही चिन्तन की गहनता के कारण कमकडता अवश्य कविगत हो जाती है। पर जो विवेचन भाव उनकी सचेता का सत्य बना है वह इन चिन्तों की रक्षीनी से साकार हो उठा है। पात्रों की एकत्रय जीवन बटना दिनचर्या परिवेश और साहित्यपूष मात्कीयत्वा गतिधीमता और यमान सचेता के साथ ममिम्यकत हुई है। इनके कारण कुछ-कुछ कल्पन-ककता अत्यन्त ही कर पाती। सम्प्ररकों और अनेक मिस्रो का प्रयोग तथा प्रवर्तन करती है। मुषपत कल्पनात्मक विवेचनारमक कथारमक मासोबनात्मक ध्यम्मात्मक और उद्धरणारमक रैषिया यहाँ प्रस्तुत है। उनके मुखर कवन वृन्द का भाव्य की अंशता रखने है। आर्य भाष्यों की भाँति वह मूषक्य विचार प्रकृत करती है जिसकी स्पष्ट व्याख्या के लिए पर्याप्त अक्षरकाय चाहिए। छायावाद की व्याख्या में उन उरगत कृति के बीच म जीवन का उदगीय कहता इसी प्रकार की यन्गीर उक्ति है ममता अडामय आत्मवान है कला पिरलान है, चीन्म सनातन है

मघ गान्धर्व है और 'काम्ति स्वयं एक साधना है' आदि इसी प्रकार के मुक्त-वचन हैं।

भाषा क शत्रु में दवीजी का मघ अमिनब है। वह भावानुकूल भाषा का निर्माण करने में मगर्भ है। हाम्मरमयुष प्रसंगा में उनका प्रत्येक शब्द कीड़ा करता है। मन्दिन के कमकाण्ड और दिनचर्या क वर्णन में उनकी घण्टाबसी सरम हो उठती है। मवेदना की सृष्टि करन हुए बही शब्द मन्त्र-रुम्दन करने हैं और व्यग्यात्मक प्रसर्गों में हम मर्माहत करत हैं। चिन्तन की तह में डूबकर प्रत्येक शब्द अर्थ-गौरव से भिन्न होकर व्याख्येय हो जाता है और धारममीमासा का रम बिकोण करता है। कुछ शब्दों की सृष्टि उनको विनयन मूढ की परिचायक है। घृतपल्लता आदि एसे ही शब्द हैं। शीर्ष काम्यारमक एवं गनित वचनों की सृष्टि में मत्तिका का रचना-कौशल निबिबान प्रमायित है। 'पय के शायी में उनके मसम कबित्मयुष उद्भावनाओं क साथ सघम्य होकर निमर उठे हैं। वर्धन का माकार करक महादेवी मे उसक चित्रण की परम्परा निर्माई है। 'कण्ठे की मिकन खेमी भीनी को नाठ वचन के बम वर्धन ही नहीं बल्कि चित्र समदा रत वेता है। प्राङ्गनिक शून्यों काङ्ग पदापों और परिस्थितियों को उच्छोने अपन रचना-कौशल द्वारा और भी अविट गजीब और मग्म कर दिया है।

अस्तु यह महत्त्व स्वीकार्य है कि महादेवीजी मघ के शत्रु में अमापारम तिष्ठि सम्पन्न मद्रिका हैं। पघ की अपेक्षा मघ कहीं अधिक भावप्रबल विचारविगम्य और विविधतायुष है। कहीं-कहीं आसंकारितता रूपकारमकता थीर हुनिमता का मोह रणतात्मक और भावबोध का अमाध्य दुग्ध और बक बना वेता है। फिर भी उनका उक्ति-वैचित्र्य उनका विवेचनतात्मक अन्तर्बोध और उनकी साक्षात्क प्रतीति बड़ी सरम तथा प्रदगीय है। 'आत्म' में पगे 'पग' की और अविगमन करक बहू यहाँ अधिक व्यापक मूमि पर प्रतिगिन होती है और विश्व की अनेककरना क अनुकूल अपनी अमि-वक्ति को विविधा बनाकर हृदयम्यर्गों क देनी है। उनके निष्कर्ष जहाँ मगसिन मुग-नापेण्य और मग्म्य हैं कहीं उनका गिप्त मुषवि-अम्यन बनात्मक तथा विमग्म है। उनकी मघ गरिमा मे हिन्दी के मज युग को अपनी जनमाल वाग्मिपुत्रि से परिपूर्ण किया है और स्वयं उनसे जगर्बोह्य रश्मियों का विश्वमन उद्घाटन करके पात्रक को समुचित गति रिगा और प्रभा प्रदान की है।

स्वप्न संयोग एक मनोविश्लेषण

केवल धीर

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि विचार एक मनन किया जाय तो प्राय हीय कि हम प्राय किन दृष्टान्तों को अपने मानस म संजोते हैं तथा उनकी पूर्ति की मांगा करते हैं उगम से अधिकोस पूर्ण नहीं हो पाती तथा वे अतृप्त भी रह जाती हैं, किन्तु यही दृष्टान्त एवं कामनाएँ हमारे स्वप्नों में साकार रूप प्राप्त कर लेती हैं तथा हम तृप्ति अनुभव करते हैं। एक साधारण व्यक्ति के लिए जैसे ही इन स्वप्नों का कोई विद्येय महत्व न हो किन्तु एक कवि की कल्पना की परिधि में ये स्वप्न या ही जाते हैं तथा उसकी कविताओं में उल्लेखित हो उठते हैं। उस कवि का मानसिक वातावरण कैसा है उसे अपने जीवन में यह तृप्ति किसे सीमा तक उपलब्ध हुई है तथा संतुष्टत्वित उसका मनस्तत्त्व दृष्टिकोण क्या है—कवि की कविताओं में ये सभी तरह उजागर होते हैं, किन्तु महादेवी का काव्य ऐसे स्वप्नों में लया पड़ा है।

यदि स्वप्न-संयोग एवं इसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर हम विचार करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि महादेवी के काव्य में इसका अत्यधिक समावेश है। स्वप्न-संयोग के अनेक मात्रा-भेद एवं स्थिति भेद हैं तथा भिन्न साहित्यिक मनोविद्-विश्लेषकों ने भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं किन्तु भीमरूप गोस्वामीजी की इस व्याख्या के विषय में प्राय सभी एकमत हैं कि इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक स्वप्न-संयोग को मात्रा-भेद एवं स्थिति भेद के आधार पर चार प्रकार में विभाजित किया जा सकता है—(क) सक्रिय स्वप्न संयोग (ख) संकीर्ण स्वप्न-संयोग (ग) सम्पन्न स्वप्न-संयोग तथा (घ) मनुष्यमय स्वप्न-संयोग। यदि हम उपर्युक्त चारों प्रकार के मात्रा एवं स्थिति भेदों के आधार पर महादेवी के काव्य को परसें तो इसे स्वप्न-संयोग की किसी एक मात्रा अथवा स्थिति भेद के बावरे में मानी न जा सकती क्योंकि इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी विशेष भेद की पूर्णता हमें उनके काव्य में उपलब्ध नहीं होती—अर्थात् इनके पाठों में हम यह कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में स्वप्न-संयोग के भिन्न मात्राओं एवं स्थितियों का सम्मिश्रण तो है किन्तु किसी विशेष भेद की पूर्णता नहीं। महादेवी के अतृप्त स्वप्न एवं कामनाएँ उगम हैं तथा कल्पना के पक्ष समाकर वे बहुत ऊँची उड़ानें भी मचोते हैं किन्तु इन स्वप्नों में कवि के हृदय को किसी एक भेद तक सीमित न रहकर समस्त मानसिक क्षेत्र एवं अव्यक्त को अपनी

सीमा में ले लिया है। यही कारण है कि कवि का हृदय कभी कल्पना से भर जाता है और कभी व्यवस्थित की सुखद प्रत्यात्मक अनुभूति उस पुनर्कृत कर देती है। किन्ती न महादबी के काव्य का विशेषण इन दोड़ में क्षणों में कितना ठीक किया है—“महादबी का काव्य जामुओं का देश है जहाँ केवल बिच्छू की बजार ही चलती रहती है किन्तु मरसप्तक के विरस 'ओनसिस' की भाँति अयुधों के उस विरही देश में भी यवा-जवा कल्पित मलय सपीर की सहर मिस जाती है।” समीर की इस लहर की अनुभूति महादबी को कबल स्वप्नों के संसार में ही हो सकी है आश्रयस्थान में नहीं। उनके काव्य में 'बिच्छू की बजार' की अनुभूति तो प्रायः हाती है किन्तु पुनर्कृत कर देने वाली समीर की सहर का स्पष्ट कभी-कभार हो पाता है और वह भी स्वप्नों के संसार में। यही उनके मानसिक बाधाकरण में 'स्वप्न-संयोग' का स्वातंत्र्य ग्रहण करता है। यही कारण है कि स्वप्न-संयोग के आभास पर ही महादबी के स्वप्न इतिम स्वप्न-चरिता के बाह्य न होकर विचार-बोधक है तथा इनीतिव्य इतमें छप-बसिता भी अत्यधिक है क्योंकि यदि हम उनके व्यक्तित्व पर नजर डोड़ाएँ तो हमें उनके व्यक्तित्व की विचित्रता का भी भास होगा। उनके जीवन में एक पक्ष सामाजिकता आदि सभी प्रकार विचित्रता स्पष्ट एवं पृथक रूप में देखी जा सकती है। यह निम्नता यद्यपि एक-दूसरे से अत्यधिक नहीं है तथापि इसे हम अन्विष्ट एवं अमृत विद्यालय भी नहीं कह सकते।

उपर्युक्त चित्रण में हम इसी निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि महादबी के साहित्य में—विशेष रूप से पद्य-साहित्य में स्वप्न-संयोग का अत्यधिक समावेश है। 'साम्प्रगीत' की ये पंक्तियाँ—

अधु मेरे माँपने जब नींद में वह बात आया।

स्वप्न-सा हँस पात आया!!

हो यवा विषय की हँसी से

शून्य में तुर चाप अंकित

रश्मि रोमों में हुमा निस्वय

तब भी तिरुह पुनर्कृत

अनुकरण करता जमा का

बाँरनी का हाम आया।

नींद में वह बात आया!!

अनुभूति पंक्तियों से जहाँ हमें स्वप्न-संयोग की अनुभूति हाती है वहाँ हमें प्रिय विद्यार्थ के विभाव (स्वप्न य ही) का महानुभव भी है। महादबी के काव्य में स्वप्नों की अन्विष्टता का एक दृश्या उदाहरण है—

बिदाती थी सपनों के जाल।

मुग्धारी वह कल्पना की कोर ॥

हिन्दी आत्मचरितों का कहना है कि महादबी के काव्य में अतिवृत्त कुटिल एवं अचरित्य भावनाओं की ही अतिव्यक्त किया गया है। यदि हम स्वप्न-संयोग सम्बन्धी कवि के विद्वानों पर विचार करें तो हम आसानी से यह कह सकते हैं कि उन्होंने अपने

काव्य में 'वैतन' पर बस नहीं दिया, बल्कि अधिकतर 'अववैतन' का ही आशय लिया है। काव्य के मतानुसार भावनाएँ वैतन के प्रभाव से ही नहीं दबती, बल्कि जब वे स्वप्नों में आती हैं तो भी वैतन द्वारा प्रभावित रहती हैं। इन भावनाओं को हम वासना का नाम भी दे सकते हैं तथा वे भावनाएँ अथवा भावनाएँ स्वतन्त्र न रहकर परतन्त्र हो जाती हैं एवं उपवेश धारण कर लेती हैं। परतन्त्रता के अर्थ में जब वे भावनाएँ स्वप्न का रूप धारण कर लेती हैं तो इनका रूप परिवर्तित हो जाता है—अर्थात् वे इसी रूप वृत्तिपीथर होती हैं जो व्यक्ति के 'सेल्फ' का रूप होता है। इस परिवर्तन के पीछे व्यक्ति का मानस ही क्रियाशील होता है। इस प्रकार की विचलनता एवं परिवर्तन के कारण ऐसे उपवेशी स्वप्न कुरुर नहीं रहते तथा बर्हिषाम यह होता है कि इनकी माह पाने के लिए अनेक बन्ध साधनों का आशय लेना पड़ता है। वे लाभन विस्थापन एवं संवदन हो सकत हैं। इस प्रकार के विस्थापन को स्पष्ट ऋक महादेवी के काव्य में मिसती है जैसे—

मैं बलकों में पाल रही हूँ
यह सपना सुकुमार किसी का ।
सोप्यगीत की ये पंक्तियाँ भी इसी विस्थापन को स्पष्ट करती हैं —
कील जाया था न जाने
स्वप्न में मुझको आपने !
याद में उन भवुतियों के
हैं बुझे पर बुप बिताने !!

विस्थापन का अर्थ है—मूलमूल भावना को उपवेश का रूप देने के लिए अनुभूति को किसी असीमित आसम्भन की ओर विस्थापित करना। महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में इस विस्थापन का तास स्पष्ट है। संवदन का अर्थ है संश्लिष्ट करना—अर्थात् जो बात हूयें पाँच सौ व्यक्तिओं में कही है इन पाँच व्यक्तियों में कही जा सके। इसका उदाहरण 'वीनमिबा' की इन पंक्तियों से मिलता है—

पल-भर का यह स्वप्न तुम्हारी
सुप-सुप की बहुधात बन गया ।

स्वप्नों की यह संवदनता संश्लिष्ट एवं शक्ति होने के कारण मन उखाट जाती है तथा वेप रह जाता है परचात्ताप। महादेवी भी कविताओं में ऐसे प्रियतम का उल्लेख करती हैं जो उनके स्वप्न-संसार में मात्र सज-भर के लिए आता है और जब वह उसे रिझाकर स्वायी बनाने का प्रयास करती हैं तो वह दूर कहीं लो जाता है। अपने प्रियतम की रिझने एवं विसन के इन लक्षों की स्मरण बनाने के उनके सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तथा वेप रह जाता है मात्र परचात्ताप। अपने प्रियतम को रिझाने विचन के लक्षों की स्मरण बमान एवं बाध में परचात्ताप करने का उल्लेख उनकी कविताओं में प्राण हुआ है—

तुम्हें बाँध जाती सपने में !
तो फिर जीवन प्यास बुझा लेती

इस छोटे सपने में ॥^१

कबयित्री के मन-व्यक्ति में तब कैसा छंद उठता है 'भीरवा' की ये पंक्तियाँ—

निद्रा उम्पन कर-कर बिचरण
लौट रही सपने संचित कर ।

जब कबयित्री का प्रियतम उसके स्वप्नों में आया इसका भाव उन्हें होता है तो अपने जान बान प्रियतम की बहु द्विम प्रकार प्रतीक्षा करती हैं तथा निद्रन की इस बात को फिर एवं स्थायी बनान की बहु कैसी कल्पना-करती हैं यह पंक्तियाँ—

बहु सपना बन बन जाता
जागृति में जाता लौट
मेरे भबन मात्र बँठ है
इन पलकों की ओट ।

जब यह कहरना भी साधार नहीं होती तो भी कबयित्री साहस नहीं हारती एवं यह सपनों में सपनों की सेज ही सत्राय रहना चाहती हैं—

जब आँसों में पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ ।

यह इन सेज की सत्रानेके लिए स्वप्न-मानी हुई सानी हैं तथा प्रियतम की प्रतीक्षा करती हैं—

भीर सागर से सजनि !
जो हुई लाई स्वप्न मोती !
गुंजनो हूँ हार उनका !
क्यों कहा मैं प्रात रोती ?^२

जब यह सब ध्यय मिड होता है तो कबयित्री इन्हीं स्वप्नों से अपने मयन अत्रिज कर देना चाहती हैं—

किसमें देज सेंबारे पुंजल
अंगराम पुनकों का मलमल
स्वप्नों में सींभू पलकों जलने
लपनों की रज मात्र पया
मयनों में प्रिय का हान ।^३

जब इन सपनों के सींभू भी मूगकर मूग मुमन बन जाने हैं कबयित्री यह कहे बिना नहीं रहती—

हरतियों में उतल बिन्दे
स्वप्न के मुने मुमन से ।

१ भीरवा ।

२ भीरवा ।

३ माध्वपीन ।

४ माध्वपीन ।

काव्य में 'चेतन' पर बस मही दिया बल्कि अधिकतर 'अवचेतन' का ही आशय लिया है। अथर्व के महापुत्रार भावनाएँ चेतन के प्रभाव से ही नहीं दबती बल्कि जब ये स्वप्नों में आती हैं तो भी चेतन द्वारा प्रभावित रहती हैं। इन भावनाओं को हम वासना का नाम भी दे सकते हैं तथा ये भावनाएँ अथवा वासनाएँ स्वतन्त्र न रहकर परतन्त्र हो जाती हैं एवं छद्मवेद्य धारण कर लेती हैं। परतन्त्रता के मय से जब ये भावनाएँ स्वप्न का रूप धारण कर लेती हैं तो इनका रूप परिवर्तित हो जाता है—अर्थात् ये इसी रूप पूर्णपोषण होती हैं जो व्यक्ति के 'संस्कृत' का रूप होता है। इस परिवर्तन के पीछे व्यक्ति का मानस ही क्रियाशील होता है। इस प्रकार की विरहग्रस्ता एव परिवर्तन के कारण ऐसे छद्मवेदी स्वप्न सुन्दर नहीं रहते तथा परिणाम यह होता है कि इनकी बाह्य पाने के लिए अनेक काव्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। वे साधन विस्थापन एवं संवदन हो सकते हैं। इस प्रकार के विस्थापन की स्पष्ट झलक महादेवी के काव्य में मिलती है जैसे—

मैं पुरुषों में बाल रही हूँ
यह सपना सुकुमार किसी का।
संघर्षीत की मैं परिस्थिति भी इसी विस्थापन को स्पष्ट करती है —
कील भाषा का न जाने
स्वप्न में बुझाओ जगामे !
याद में उन भक्तियों के
हैं मुझे पर ब्रुग मिलते ! !

विस्थापन का अर्थ है—सुकृत भावना को सप्रवेद्य का रूप देने के लिए अनुकूलित को किसी जलौकिक आसन्नता की ओर विस्थापित करना। महादेवी की उपर्युक्त परिस्थितियों में नम विस्थापन का भाव स्पष्ट है। संवदन का अर्थ है संक्षिप्त करना—अर्थात् जो बात हमें पाँच सौ व्यक्तियों में कहनी है इन पाँच व्यक्तियों में कही जा सके। इसका उदाहरण 'श्रीपतिबा' की इन पंक्तियों से मिलता है—

एक तरफ का वह स्वप्न तुम्हारी
सूय-सूय की पहासाप बन गया।

स्वप्नों की वह संवदनता संक्षिप्त एवं लघुिक होने के कारण मन उठाट जाती है तथा वेप रह जाता है परचात्ताप। महादेवी भी कविताओं में ऐसे प्रियतम का उल्लेख करती हैं जो उनके स्वप्न-सदृश में मात्र जल-मय क बिन्दु जाता है और अब वह उसे रिझाकर स्वामी बनाने का प्रयास करती हैं तो वह दूर कहीं चो जाता है। अपने प्रियतम को रिझाने एवं मिलन के इन लक्ष्यों को स्थिर बनाने के उनके सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तथा वेप रह जाता है माय परचात्ताप। अपने प्रियतम को रिझाने, मिलन के लक्ष्यों को स्थिर बनाने एव बाद में परचात्ताप करने का उल्लेख इनकी कविताओं में प्रायः हुआ है—

तुम्हें बाँध जाती लक्ष्मी मैं !
तो फिर जीवन प्यास बुझा लेती

इस छोटे लाल अपने में ॥१

कवयित्री के मन-वस्तुत्व में तब कैसा छद्म उठता है, 'नीरजा' की ये पंक्तियाँ—

निहा उमन कर-कर बिचरण
कौट रही सपने संजित कर ।

जब कवयित्री का प्रियतम उसके स्वप्नों में आया इसका भास उन्हें होता है तो अपने जाने वाले प्रियतम की बहु क्रिम प्रकार प्रतीक्षा करती हैं तथा विसन की इस बेसा को फिर एवं स्थायी बनाने की बहु कैसी कल्पना-करती हैं यह पंक्तियाँ—

बहु सपना बन बन जाता
जागृति में जाता सौंद
मेरे शब्द भाव बैठे हैं
इन पलकों की ओट ।

जब यह कल्पना भी साकार नहीं होती तो भी कवयित्री साहस नहीं हारती एवं यह नयनों में सपनों की सेज ही सजाने रहना चाहती हैं—

जब जाग्रो में पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊ !

यह इस सेज को सजाने के लिए स्वप्न-मोनी बूँद साती है तथा प्रियतम की प्रतीक्षा करती है—

नींद सागर से सजनि !
जो बूँद साईं स्वप्न मोती ।
बूँदती हूँ हार उनका ।
क्यों कहाँ मैं प्रात रोती ?^२

जब यह सब ध्यय विद्य होता है तो कवयित्री इहीं स्वप्नों से अपने मनन प्रविष्ट कर लेना चाहती हैं—

किसमें देख सँभारें कुंतल
अंशुराग पुलकों का भसमस
स्वप्नों में झंझू पलकों चम^३
सपनों की रज भाव गया
नयनों में प्रिय का हास !^४

जब इन सपनों के जागू भी मूगकर मुझे मुमन बन जाने हैं कवयित्री बहुते दिना नहीं रूनी—

कवयित्री में उसस बिचरे
स्वप्न के मुझे मुमन है।

१ नीरजा ।

३ नीरजा ।

२ सत्यभदीप ।

४ सत्यभदीप ।

काव्य में 'चेतन' पर बल नहीं दिया बल्कि अधिकतर 'अवचेतन' का ही आश्रय लिया है। काव्य के महाभूतों में जागनाएँ 'चेतन' के प्रभाव से ही नहीं दबती बल्कि जब ये स्वप्नों में आती हैं तो भी चेतन द्वारा प्रभावित रहती हैं। इन भावनाओं को इन भासना का नाम भी दे सकते हैं तथा ये जागनाएँ अथवा भासनाएँ स्वप्न में रहकर परलोक हो जाती हैं एवं छपबेध धारण कर लेती हैं। परलोकता के समय में जब ये जागनाएँ स्वप्न का रूप धारण कर लेती हैं तो इनका रूप परिवर्तित हो जाता है—अर्थात् ये इसी रूप बृष्टिमोक्ष होती हैं जो व्यक्ति के 'वैलक' का रूप होता है। इस परिवर्तन के पीछे व्यक्ति का मानन ही क्रियाशील होता है। इस प्रकार की विलम्बता एवं परिवर्तन के कारण ऐसे छपबेधों स्वप्न मुक्त नहीं रहते तथा परिभाषा यह होता है कि इनकी वाहू पाने के लिए अनेक अन्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। बसापन विस्वापन एवं संघमन ही सफल हैं। इस प्रकार के विस्वापन की स्पष्ट उदाहरण महादेवी के काव्य में मिलती है जैसे—

मैं पलकों में पाल रही हूँ

यह सपना तुझमार किसी का।

ताभ्यगीत की ये पंक्तियाँ भी इसी विस्वापन को स्पष्ट करती हैं—

कौन आया वा न जाने

स्वप्न में कुछको जगाने !

याद में उन अभूतियों के

ह मुझे पर युग बिताने ॥

विस्वापन का अर्थ है—मूलभूत भावना को छपबेध का रूप देने के लिए अनुभूति को किसी असौकरिक आत्मन की ओर विस्थापित करना। महादेवी की सपर्युक्त पंक्तियों में इस विस्वापन का भाव स्पष्ट है। संघमन का अर्थ है संक्षिप्त करना—अर्थात् जो बात हम पाँच छंदों में कहती हैं, इन पाँच पंक्तियों में कहनी पड़ेगी। इसका उदाहरण 'रीपणिता' की इन पंक्तियों से मिलता है—

पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी

पुप-पुप की पहचान बन गया।

स्वप्नों की वह सघनता संक्षिप्त एवं अधिक होने के कारण मन उखाड़ जाती है तथा घप रह जाता है परचात्ताप। महादेवी भी कविताओं में ऐसे त्रिभुज का उल्लेख करती हैं जो उनके स्वप्न-संसार में घाब घप भर के लिए आता है और अब वह उसे रिक्तकर स्वाधी बनाने का प्रयास करती हैं तो वह दूर कहीं चो जाता है। अपने त्रिभुज की रिक्तता एवं मिथन के इन क्षणों की स्थिति बनाने के इनके सभी प्रयास विफल हो जाते हैं तथा घप रह जाता है माध परचात्ताप। अपने त्रिभुज को रिक्तता के क्षणों को स्थिर बनाने एवं बाद में परचात्ताप करने का उल्लेख उनकी कविताओं में प्रायः हुआ है—

तुम्हें बांध जाती सजने में !

तो फिर जीवन म्यात कुछ हैती

इस छोटे लम्बे मन्त्र में ११२

कवयित्री के मन-व्यञ्जक में यह बड़े छंद गूढ़ है, 'सुख' की सं-
क्षिप्तता—

निद्रा उग्रम, कर्म-कर्म विचरत

लौट रही सने संक्षिप्त कर।

जब कवयित्री का त्रिपुत्रम उग्रक स्वप्नों में आया इसका भास उन्हें हुआ है तो
बने जाने नाम त्रिपुत्रम का वह दिन प्रकार प्रताया करती है तथा विपन की इस कथा
की विर एवं स्थाया बनान की यह कैसी कथना-कथना है यह पंक्तियाँ—

वह सपना बन-बन भाता,

आपुत्रि में जाता लौट

मेरे मन्त्र आत्र बँठे है

इस पलकों की ओट ।

जब यह कल्पना भी साकार नहीं होती तो भी कवयित्री साहस नहीं हासती एवं
यह स्वप्नों में स्वप्नों की क्षेत्र ही सत्राय रहना चाहती है—

जब आसो में पलकों में

स्वप्नों से सेत्र विच्छिन्न ।

वह इस क्षेत्र का मन्त्राने के लिए स्वप्न-मोटी बूँड लाती है तथा त्रिपुत्रम की प्रतीक्षा
करती है—

नीच सागर से सञ्जनि ।

जो बूँड लाई स्वप्न मोती ।

बूँडतो हूँ हार उरका ।

क्यों कहा मैं प्रात रोती ? १

जब यह सब व्यय सिद्ध होता है तो कवयित्री इन्हीं स्वप्नों से अपने मयन संक्षिप्त
कर लेना चाहती है—

किसमें देस शोभाई कुंतल

अंगराम पुलकों का मलमल

स्वप्नों में आँसू पलकों जम

सपनों की रत्न आत्र तथा

मयनों में प्रिय का हाग । २

जब इन सपनों के आँसू भी गुणरत्न गुण गुणन बन जाते हैं कवयित्री परम
विना नहीं रहती—

कवयित्री में उमल विपने

स्वप्न के गुण गुणन नि ।

घोजने फिर शिबिल पय
निश्चात हुत निकल चुका है !^१

जब कवयित्री इन काव्यनिबन्ध स्वप्नों में ठब गईं तो कह उठी—

मेरे जीवन की जागृति
देखो फिर भूल न जाना
जो मे सपना बन मार्ग
तुम फिर निद्रा बन जाना ।^२

यदि हम महादेवी के स्वप्ना के गुणों पर विचार करें तो हम पायेंगे कि उनके स्वप्न मूल न होकर स्मरणों का केवल स्मरण मात्र हैं क्योंकि उनके काव्य में लौकिक अनुभूति की उप्मा हमें नहीं मिलती। 'नीरजा' की ये पंक्तियाँ इसका उदाहरण हैं—

निकल देला मैं मसल तु
तो पाई कुछ जागकर जब
फिर गया यह स्वप्न मे !
आ रही प्रतिध्वनि वही फिर !
नींद का उपहार मे !
बल लबनिबीपक बार मे ! !

यदि हम स्वप्नों की मौलिकता एवं स्मृत-स्वप्नों पर विचार करें तो जात होता कि दोनों में साम्य नहीं है। स्मृत स्वप्न अपने आनुपूर्वी गुणों को जो देते हैं। फॉयट ने कवयानुसार स्मृत स्वप्न 'विकृत स्वानापन' होते हैं। इन दोनों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मौलिक स्वप्न 'सबसेतन' का सर्वाधिकार है किन्तु इसके विपरीत स्मृत स्वप्नों को स्मरण लघो में अतन्त्रात् प्रभावित हुआ पड़ता है। इस प्रकार स्मृत स्वप्न मौलिक स्वप्नों की अपेक्षा विकृत हो जाते हैं। इसी कारण फॉयट ने इन्हें 'विकृत स्वानापन' कहा है। प्रो. विमलजी ने एक स्थान पर लिखा है—“महादेवी के काव्य निबन्ध स्मृत स्वप्नों में बराबर 'जीन' कहकर अभिविष्ट किया जाने वाला असौक्य अनुभूतियों का प्रेरक तायक अवश्य ही मूल स्वप्न में किसी निश्चित व्यक्तिवाचक संज्ञा का चिरपरिचित 'छात्रिया' रहा होगा। स्मृत स्वप्ना का सामान्य एवं स्वानाबिक विवृति से महादेवी के काव्य निबन्ध स्वप्नों को सरसतापूर्वक असौक्य धरातल मिल गया है। फ्रायडिय मनोविश्लेषण की छायाबसी में कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य निबन्ध स्वप्नों में हमें व्यक्त स्वप्न वस्तु (मेरीकैस्ट ड्रीम कांटेक्ट) मिलती है किन्तु उनके मुक्त स्वप्न-विचार (मेटेस्ट ड्रीम पाट्स) को जानने के लिए हम जातव्य व्याख्या का आश्रय लेना पड़ेगा जिसमें निश्चित रूपेण लौकिक अनुभूतियाँ मिलेंगी जबकि मनोविश्लेषण के अनुसार मुक्त स्वप्न विचार का ही महत्त्व है व्यक्त स्वप्नवस्तु तो उस तक पहुँचने का केवल माध्यम मात्र है।”

उपर्युक्त विवरण का विषय हम इन पंक्तियों में देख सकते हैं—

१ क्षीपयिष्वा ।

२ नीह्वार ।

अधु मेरे माँपने जब
 नींद में बहु पास आया ।
 स्वप्न-सा हूँत पास आया ।।
 हो गया बिब की हूँसी से
 झुग्य में सुरचाप अंकित ।
 रसिम रोमों में हुमा
 नित्यन्व तम भी तिहर पुनक्ति
 अनुसरण करता ममा का,
 चाँदनी का हास आया ।
 नींद में बहु पास आया ।।१

महादेवी की कविताओं में 'स्वानापन्न मनोबिम्बों' के विषय में प्रो० विमल न लिखा है कि उनकी स्मृत-स्वप्नों की ऐंगिय सौविक अनुभूतियों को न पकड़ पाने का एक कारण यह है कि इनकी अभिव्यक्ति अधिकतर स्वानापन्नमनाबिम्बों (मण्टीक्यूट ईमिज) द्वारा हुई है। स्वानापन्न मनोबिम्बों की विशेषता यह है कि वह अत्योक्ति अथवा समासोक्ति की तरह बिनी दूरवर्ती अग्रस्तुत को सरसतापूर्वक माने ठिक कर दन हैं। अतः महादेवी के स्वप्नों में आध्यात्मिकता का अनुस्मृत करने वाले स्वानापन्न बिम्बों का तत्त्वों के बीच प्रमुख स्थान है—

नीरव तम को छाया में
 छिप लीरभ को अलकों में
 गायक बहु गान तुम्हारा
 आ मडराया पलकों में ।

यहाँ 'गायक का गान स्वानापन्न बिम्ब है। यह अवश्य ही त्रिय की या त्रिय का स्पष्ट अथवा त्रिय की बात के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है।

महादेवी की कव्या विरह एवं बेदना की बाह्य कवयित्री बटा गया है तथा पर स्वाभाविक ही है कि ऐसे कवियों अथवा कवयित्रियों की रचनाओं में सुग-स्वप्न नहीं मिलने बल्कि इसमें अपीर स्वप्नों की ही अधिकता होती है। महादेवी व काव्य के मानसिक बलाकरण का यदि हम मनोविरमणय करते तो हम पारंगि कि उनके काव्य में भी स्वप्नों की अपीरता ही है—स्वप्न-मुग नहीं। इसका उदाहरण है 'नीहार' की दो पंक्तियाँ त्रियमें उल्लेख किया है कि जब त्रियनम तम की छाया में छिपकर उनकी पलकों में मना गया तब—

हाला-तो हवाहल-तो
 बहु गई अथानक सहरी
 डूबा जय जूला तम-मन
 अलें निपिमाई तिहरी ।१

पीड़ा में प्रेम तत्त्व

मधु भारती

बुद्ध की बरती घुम घुमकर गमने वाली दीपशिखा ओस के झंझु बिछपटो हुई पीड़ा स्थिति प्रिय की अनन्त प्रतीक्षा में सीन साधिका पीड़ा के राज्य की रानी अमरों का सोक त्यागकर मिटने का अधिकार माँगने वाली समर्पिता कर्म को वियोग के नाम में अभिव्यक्त करने वाली चिर चिरहिणी ये हैं महादेवीजी के वे चित्र जो उनकी कविता का आनन्द करते ही कल्पना में झूमने लगते हैं।

काव्य-क्षेत्र में 'नीहार' 'रश्मि तीरजा' 'सांख्यभूत और दीपशिखा' के अमिट चरण-निष्कल छोड़ने वाली कवयित्री के जीवन में पीड़ा की चिर-वेदना की इतनी तीव्र अनुभूति कहीं से आई यह प्रश्न बार-बार काव्य-प्रेमियों को आन्दोलित करता रहा है। पीड़ा कला का सारवत् स्वर रहा है। मनुष्य के अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् की क्रिया प्रतिक्रिया की सागरमय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही काव्य तथा अन्य कलित कलाओं का स्व्यं चरित्र करती है। काव्यान्तर्व्यत पीड़ा के भी दो रूप हैं—बाह्य-व्यतिष्ठतिजन्य नागमिक वेदना जो संसार की असारता स्वार्थपरता और संकुचित मनोभूति से उत्पन्न होती है और अभिजातियों के अशुभ रहने पर मन की कचोट प्रियत्वों के बिसृष्टि से मानुष हृदय की कातरता बाह्य प्राणियों के दुःख-दैन्य से उत्पन्न व्यथता और कष्टता की भावना में परिलभित होती है। दूसरे प्रकार की वेदना अन्तर्जगत् से सम्बन्धित होती है और आध्यात्मिक कारणों से उत्पन्न होती है। परमात्मा का अत्या काल-सीमा के बन्धन में पड़कर विश्वात्मा में सीन होने के लिए मार्ग खोज करती रहती है। पर यह एकाकार सहज सम्भव न होने से बहु व्यथित हो रो पड़ती है। निराश हो बहुविध केमला उपकरणों में विश्वात्मा की मूलक पाने के लिए अकुला उठती है। इस प्रकार मानव-जीवन में वेदना के इन दोनों रूपों का सहज विकास होता रहता है। बाह्य जीवन की अभावजन्य बुभानुभूति और अन्तर्जगत् की चिर-भावना मन में पीड़ा और कलना की अनन्त महर् उठाना करती है। महादेवीजी की पीड़ा के प्रेरक तत्वों की पर काव्य प्रेमी उनके जीवन में खोजने का प्रयास करते हैं तब महादेवीजी का यह वाक्-बाल उन्हें उत्साह देता है—

'संसार साधारणतः जिसे दुःख और अज्ञान के नाश से-व्यथता है वह-मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुःख, बहुत आदर और बहुत मान में-सब-कुछ मिला है।

उस पर पाबिब दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिधिया है कि वेदना मुझे हलनी मधुर सगने लगी है।

परिण जीवन में अतिथय बुझार, भार और सब-कुछ बहुत मात्रा में मिलने की प्रतिधिया स वेदना प्रिय नहीं हो जाती। अनुभूति के स्तर पर भाए बिना प्रतिधियात्मक साहित्य मर्मस्पर्शी नहीं हो सकता। किन्तु महारेबीजी मर्म की सफल कवयित्री हैं। उन्होंने कवि-मुनम 'माधुका' और संवेदनशील हृदय पाया है अतः वह अपने सम्पूर्ण काव्य को प्रतिधियात्मक बहकर पाठकों को भ्रमा नहीं सकतीं। उनमें निहित पीड़ा बाहर से उधार ली हुई नहीं है। यह पीड़ा शुद्ध स्वानुभूति मिये हुए उनके अन्तर्बग्न स चूनी एवं बिबमिग हुई है। 'मीहार' में उनके सौकिक प्रेम मानसिक संघर्ष और ध्यक्तिगत दुःख क स्वर हठी बासक क समान मुखर हो जाना चाहते हैं पर जैसे महारेबीजी ने सतर्कतापूर्वक उन्हें बचा दिया है। कुछ ऐसा ही आभास पाकर शायद श्रीमती शचीरानी गुर्दू यह तथ्य प्रकाशित करने पर साधार हो गई हैं— 'माता-पिता की स्नेह-छाया में अशोभ शीतल बिनाकर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से टकराई ता अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रम-मुत्र में न बंध सके और तभी से उनक मातम स नीरवता बेधनी और बुबसेपन की छाया परिभ्याप्त हो गई। जीवन के लूफानी धर्मों में जब उनका अरहूड हृदय किमी प्रबपी क स्वागत के लिए मचल रहा था और जीवन-गदम क रवताभ पट पर स्नेह-न्यास्ता छिन्की पड़ रही थी तभी अकम्मात् बिपन प्रेम की बुल गिलगिला पड़ी और पुनकने प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ-मी धरिन कर गई। आत्म-संघम का पत मिये हुए उग्रहान जिम सौकिक प्रेम की दुःखानर पीड़ा का गन ममामा बहु कामात्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ बिगर ता गई किन्तु उनके हृीसे मन का उससे कभी लगाव न चूना और वह उगे मिगन्तर बमत्र से बिपनाय रगत की मानो हठ पकड़ बैठी।

असफल रूप प्रेम की सौकिक आसम्बन के महारे ध्यकत करना एक ब्यारक बिगुति नमप निर्वीर संस्कारों के बोध से अङ्गीभूत धर्म में जगम भनी संकाबपीला महारेबीजी क लिए सम्भव भी तो मरी था। अतः जीवन की पुन्यता में मोर बिभुग होकर वह मोरोत्तर आसम्बन की ओर उभुग हुई और उनकी ध्यपिन आत्मा न प्रम का बहु मधुर सम्बन्ध जो प्रेमी प्रमिया के मध्य चलता है वेदम उत परम पुन्य में स्थापिन दिया किगके अनलापाल में न कभी शूलि मियती है न पीड़ा का अन्त होता है।

आध्यात्मिक प्रेम पनपने के लिए उनका मन पकन न ही था। माधुका मात्रा मर प्रवार की शास्त्राधिकता से हुए बर्बन्दि तथा दार्शनिक विना के संहार सेकर माधुका शोडिकता मयपना व्यापक दार्शनिकता और सम्प्रदायहीन चरता के पयनय पर गरी हाकर बहु उम लकृत साहित्य और दार्शनिकता क अध्ययन से लीन हा गई किनक मर में आध्यात्मिकता के स्तर हो नूजने हैं। शोड-धम की महाकथा और हिन्दी शास्त्र क अरिन काव के अल कविशों की चरमात्मा न पनपान जान की तदुपन भीग का 'र-नृपिणों की प्रम की पीर मूर की गप्या की मग्धीर विगड वेदना और दुःखी क माग्म का माह-पीड़ा को उन्नीन आग्ममात् बिना था।

आधुनिक काल में वह रवि बाबू की आध्यात्मिकता स्वामी विवेकानन्द और परमहंस रामकृष्ण की अर्पितवारी विचारधारा से भी प्रभावित हुई। अतएव उनकी अलौकिक प्रेम-बस्तनी एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यापक सम्मीह्यता में बड़ बसी। महादेवीजी के काव्य में उनके विकास की एक अन्तर्घात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है जिसके विषय में महादेवीजी ने 'माया' में स्वयं लिखा है—“नीहार के रचनाकाल में मरी बीबी ही पुनःपुनः-निमित्त बेचना उमड़ जाती है जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहरी उषा और स्वप्न से दूर सजल मेघ के प्रथम वर्णन से उत्पन्न हो जाती है। रवि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक विस्तृत प्रिय था। परन्तु 'नीरवा और 'साम्प्रदीत' मेरी उम्र मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुःख में सार्वत्रिक का अनुभव करने लगा।

प्रेम अनुभूतिमाध्य विषय है। उसका पहला लक्षण है अन्तर में कोमलता और स्निग्धता का उद्वेक होना। आकषण के क्षण से ही व्यक्ति के मुख प्राणों को मधुरता निहित बर्त-बैठी सीतल बालन की तीव्र अनुभूति होने लगती है। उस समय कोमलतम मधुरतम काव्यमयी भावनाएं अन्तर्मन के किसी निरुद्ध कोने से निकलकर चुपके से होंठों पर आ बैठती हैं जिनमें से कुछ गीत बन जाती हैं और कुछ गीत त्रास से प्रेयात्मक क मधुर इपितों को अपमक निहारती रहती हैं। 'नीहार' के गीतों में प्रेयविज्ञाना महादेवीजी की यही मुखता मुखरता गीतता और मधुर बेचना-नृमिति अभिव्यक्त हुई है। यह प्रेम लौकिक अथवा आध्यात्मिक कम है।

उनकी मुखभावस्था का यह चित्र कियता आकर्षक है—

बाल बिलबल के हुत मुगा
उनके पल में रहस्य की बस्त,
मेरे निमित्त बलकों में
मका गये बस-बसा उत्पन्न।
बीबन है पम्पाद तनी से
निमित्त प्राणों के छाले
नाग रहा है विपुल बेचना—
के मम प्याले पर प्याले।

उनका वह मिलन काव्यनिक रूप में नहीं इसी संसार में हुआ है इसे वह आपके प्रभावित करती हैं—

कैसे कहती हो सपना है
जलि उस मुख मिलन की बात
परं हुए सब तक चुनौतों में
मेरे जानू उनके हास ?

पीड़ा के राज्य की रागी बीप-सी बस बलकर उसे आलोकित कर रही है। प्रेम की शांतिना कण्ठ-कण्ठ एक दिन उसका बीबन-बीप बुझ जायगा। प्रिय को बिये गए इस उपालम्भ में प्रेम की अमर छाविका का बीसा अद्भुत आत्मविश्वास अलक उठा है—

बिम्बिता क्या है हे निर्मम !
 बुझ जाये हीपक मेरा
 हो जायेगा तेरा ही
 पीड़ा का राज्य भँसेरा ।

अपनी पीड़ा मूलपत्र और ससीमता पर उन्हें बढ़ा अभिमान है। वह प्रिय से किसी बात में कम नहीं। अतः उन्हें पूरा विश्वास है कि उनकी मधुता के कारण प्रिय को सञ्चित नहीं होना पड़ेगा। स्वाभिमानिनी महादेवीजी का यह स्वर मन की पहचानों में उतरता क्या जाता है—

उनसे कसे छोटा है
 मेरा यह निधुक जीवन
 उनमें अमल कबला है
 इतमें असीम सूनापन ।

सब तो यह है कि महादेवीजी के प्रिय को भी उनका समान पीड़ा दुःख और करुणा प्रिय है तभी तो तम के बरों में धाना जाता है—

कबलाप्य को जाता है
 तम के बरों में धाना
 है नम की हीवाबलियो
 तुम पलभर को बुझ जाना ।

फिर महादेवीजी को पीड़ा इतनी प्रिय क्यों न हो। इसीलिए उनकी बह्य प्राप्ति की साधना दुरापरक है। रवि बाबू की साधना में भी इसी प्रकार के रंग भरे हैं। 'गीतांजलि' के एक गीत में बेरना-दूती आकर उन्हें मन्देश ब रही है—ओ प्राण तेरे ही लिए भयवान जाग रहे हैं।

बदनादूती गाहिछे औरे प्राण
 तोमार लागि जायेन भगवान ।
 निशीच एन मग्बकारे
 डास्टेन तोरे प्रेमामितारे ।
 दुस दिसे रानेन तोर मान ।
 तोमार लागि जायेन भगवान ।

महादेवीजी के मानस में पीड़ा भीमे बन्ध-भी लिपटी है। यह पीड़ा प्रिय से विपन्न का साधन है। बन्धुन उनके लिए पीड़ा और विपन्न एकवचन ही हुए हैं—

तुमको पीड़ा में बुँडा
 तुममें बुँदुंगी पीड़ा ।

तभी ठा पीड़ा के बिनिमय में उन्हें अमरों का लोक भी तुच्छ लगता है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
 तेरी कबला का उपहार

रहने दो हे देव ! धरे
यह मेरा मिटने का अधिकार ।

'रश्मि' में महादेवी की कल्पना प्रबलता कुतूहल-मिश्रित बेदना और व्यक्तिगत जीवन के प्रसन्न कुञ्ज वर मये । चिन्तन द्वारा समझी पीड़ा अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी हुई । भौतिक अभाव और सामाजिक विषमताएँ मानव-जीवन के प्रमुख तत्व हैं इस मानोपमरश्मि ने उनके कल्याण-भूयिष्ठ जीवन में अत्यन्त महत्त्व पाया । घटपट्ट उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पीड़ा विषय-पीड़ा में मिला ही । विरवारमा का प्रेम विरह के कण-कण म अयात्त कर दिया । प्रियतम ब्रह्म के व्यक्त रूप अभावपस्त और कष्टमय सगर को विस्मृत कर क्या प्रिय को पाया जा सकता था ? इसीलिए उन्होंने सारे विश्व से ठाढारम्भ कर लिया ।

तुम मानस में बस जाओ
रश्मि कुञ्ज के अन्तर्मुख से
में तुम्हें ईदने के मित
परिचित हो नूँ कण-कण से

जब-जब चातक का बामक-मन मये मेरों के लिए रोया किरनों ने तितलियो क चिन्तित पंखों की माया बुरा सेनी बाही बादलों ने मन को बँध लिया प्रेम-सावित्रा महादेवीजी का मन बन्दवाई हो उन पर मुक्त की छाया करने को बातु हो उठा । जीवन की विषमता देखकर उन्होंने प्रश्न किया—

'कह दे नो क्या अब देखूँ ?
देखूँ सिल्ली कलियाँ या
प्याती सृजे जवरीं को
तेरी फिर जीवन धुपमा
या जर्जर जीवन देखूँ ।

'रश्मि' में यह है महादेवीजी की पीड़ा का नया रूप और बुझ की व्यापकता । महादेवीजी ने दुःख-पीड़ा के इसी रूप को कवि का मोक्ष कहा है । वह लिखती है—“दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की कामता रखता है । हमारे अस्तव्य मुख हमें बाँधे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बँध जाँसू भी जीवन को अधिक मजबूत, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता । मनुष्य मुझ को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर—विरह-जीवन में अपने जीवन को विरह-बेदना में अपनी बेदना को इस प्रकार मिला देना विश्व प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिला जाता है कवि का मोक्ष है ।

“मुझे दुःख के बोनो ही रूप प्रिय हैं । एक वह जो मनुष्य के सविरलधीन हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम नेतन का कल्पन है ।

असीम नेतन का कल्पन ता उनके सम्पूर्ण काव्य में परिष्कार है बिदे काव्य मुश्किलों में माधनारमक रहस्यबाह भी कहा है । मनुष्य के सविरलधीन हृदय का सारे संसार से अविच्छिन्न मन्बन्ध जोड़ने वाले दुःख स भी उनका काव्य बँधित नहीं है वीसा

कि ऊपर दिखाया जा चुका है। 'नीरजा' 'साग्यमीत' और 'दीपदिगा' में कृष्ण का महारूप अधिक स्पष्ट हुआ है। प्रायः काव्य प्रेमियों और आलोचकों को महादेवीजी से यह सिद्धायत रही है कि वह काव्य में अन्तर्जगत् की रहस्यमय शक्तियों में ही भटकती रही है बहिर्जगत् की यथार्थता को नहीं धुँसती। महादेवीजी ममर पीठों की मायिका हैं। उनके गीतों में अन्तर्वर्तन और आत्मनिष्ठा की ही प्रधानता रहती है। महादेवीजी की बहिर्मुखता देखने के अभिलाषी उनके पद्य में उतरें।

'रसि में प्रम-आधिका बिरह में दूबी अक्षय सेविन आरिभक पीड़ा का नहीं भुला पाइ। अज्ञात प्रियतम क साग्निध्य से उन्हें अक्षय-सुख मयन-सुग प्राग औरस्पर्स सुप मिसा तृप्ति भी मिसी—

अक्षय-सुग—

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है ?

मयन-सुग—

तब अन्क जो लोचनों को मूँबता
तड़ित की मुसकान में वह कौन है ?

प्राग और स्परा-सुग—

सुरभि बस जो बपकियाँ बैता मझे
नीच के पञ्चदास सा वह कौन है ?

पर उन्हें यह तृप्ति नहीं चाहिए। वह बिरह की कामना करती हैं। कारण यह है कि बिरह अनृप्ति है। जब ठन अनृप्ति है अभाव है तभी तब उन्हें उम्पाम और आनन्द की प्रेरणा मिलती है। मिसल होने पर उनका जीवन हलकम-सुग्य होकर दूर भावनाहीन एवं पड़ हो जायगा और महादेवीजी नहीं मही नहीं चाहती। तृप्ति का एक बप भी उन्हें स्वीकार नहीं—

पाने में तुमको लोर्ड,
पाने में तमगुं बाना।
यह बिर अनृप्ति हो जीवन
बिर तृप्ता हो बिट जाना।

'रसि में उहोंने प्रिय का पीड़ा में हूँसा बिर तृप्ता की जानाया और प्यविपद सुग को बिरह-बैरना में पुना दिया। इस प्रकार उहोंने 'नीहार' की अनुभूतियों का सांस्कृतिक दृष्टि में विश्लेषण कर अपना एक जीवन-दान मुनिरिचन किया। यही जीवन दान अज्ञेय और ईशानेय भावना का आधार लेकर साधारण अनुभूतियों का स्पष्ट पावन अधिब लीबना और लक्ष्यता के साथ 'नीरजा' 'साग्यमीत' और 'दीपदिगा' में आना बहना का साधारण सींग हो गया महादेवीजी का उपासना-भाव प्रेम विष्णुवता सांस्कृतिक आरग आत्मनिष्ठा और आनन्दानुभूति करमाक्षय पर पहुँच गी। अज्ञान बान म बगी जा रही ईशानसुग प्रमाविष्णुति में महादेवीजी ने आकाश का रस मिला लिया। प्रिय का भावदान मियन-बिषय आत्मनिष्ठा उन्मग और सक्तीय भीति अन्तिम म

रखते हुए भी उसी प्रकार भौतिक हो गए, जिस प्रकार कबीर-बावरी को रहस्यवादी कविता में और भीरा के भाव भीम पीठों में है ।

अब एक प्रकृति उनकी बिरह-विषाद आत्मा को सहानुभूति के अधुओं से घीतल करती थी अब महादेवीजी ने जड़ चेतन सभी में सार्वत्रिक प्रीति एवं प्रभव निवेदन देता । प्रकृति से उन्हें आत्म-विसर्जन की प्रेरणा भी मिली । उन्होंने एक पुष्प को मरते मरते संसार में अपनी सुगन्धि फैलाए देता बुझते-बुझते तपु दीपक को अन्धकार में आलोक प्रकृत देखा । विसर्जन में ही सुख है इस सत्य को उन्होंने प्रकृति से समझ और अपने जीवन-दीप को धीरे-धीरे जसाकर प्रियतम का पत्र आलोकित करने की प्रेरणा पाई । उनके इस आत्म-समर्पण में किंतनी पुनः किंतनी मुमुक्षुता कितना सारथ्य और प्रिय में धुलने मिलने का सैसा पावन भाव निहित है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल ।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिश्रव्य प्रतिपल
प्रियतम का पत्र आलोकित कर
तु जल-जल कितना होता जल
बहु समीप आता छमनामय
मधुर मिलन में मिट जाता तु
उतकी उज्यवत स्मिति में बुल-सिल ।
मधिर-मधिर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पत्र आलोकित कर

उनके लिए जीवन बिरह-रस्य अपारानों से निर्मित है 'बिरह का जलजाठ जीवन बिरह का जलजाठ ।

में नीर मरी कुल की बरनी ।

बरबान भी बहु मन बनने का चाहती है जिससे रुग्णामय के संतप्त लसार को हरियाली बेकर बहु प्रियतम को प्रसन्न कर सकें ।

मित बिजो अर-अर किदू प्रिय
पन बनू बर हो मुझे प्रिय ।

'प्रिय सन्ध्य-यवन मेरा जीवन' गीत में सन्ध्य-यवन की विविध-रस्य रंजनवता से उनके जीवन की बिरहाकुलता अनिजाया जाया मिलनेच्छा न मित लफने की कसक और विपार क मिले-बुझे भावों की एकक्यता देखते ही बनती है । कुल सहुते-सहुते सन्ध्या हो गई । कवयित्री को पूर्ण बिरहास है कि जब मिलनेच्छा पूर्ण हो जायगी बहु पुकार उठती है—

उतरो अब पलकों में पाहुन ।

निष्ठुर प्रियतम भला क्यों आता । उन्होंने प्रकृति के उपकरणों से आध्यात्मिक गृहार करने प्रियतम को रिझाया चाहा—

राशि के दर्पण से देख-देख
मैंने मुलम्या तिमिर केज,

गुंसे कम सारक पारिजात
अवगुच्छन कर फिरसे मरीच ।

इस पर भी जब प्रिय नहीं आया तो शृंगार की बिकल्पता पर वह चुपक-चुपके
ने उठी—

क्यों आज रिक्त पाया उसको
मेरा अभिन्न शृंगार नहीं ?

वह कभी प्रिय की प्रतीक्षा करती है 'जा तुम आ जात एक बार' कभी उसे अपनी
लागि रिक्त करवाकर कल्पार्थ करना चाहती है 'यह अज्ञान मुख देख लेत यह कवच मुख बेग
लेने ; कभी उस सपने में बाँधने की कामना करती है कभी उन्हें एकाग्र भित्त और
महिमा की साथ सिद्धा देती है । फिर भी क्षण-क्षण मुग्धागिनी का मान आँसुओं की राह
भ्रमण गमा नहीं है । निजत्व देने की असमर्थता के कारण वह अभिमानिनी प्रिय में निज
भी नहीं पाती—

सज्जनि मयूर निजत्व दे
कैसे किस अभिमानिनी में ?

उन्हें प्रियत्व की आरती उतारने के लिए विरह के सारे उपकरण व्यवहारे हैं
क्योंकि विरह का मूर्च्छा उनका जीवन ही नीराजना बन गया है—

प्रिय मेरे पीले लयम बनोगे भारती
स्वालों में सपने पर युष्मिन्न
अम्बुवार बेहना अचित
अर हुय ल जीवन घट नित
रुक लक्षों में मयूर कर्सेती भारतो ।

यही आज दीपतिग्या में भी आया है—

वह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने ली ।

प्रियत्व के मास्त्रिप्य में आया अहंकार 'गुण हा आत्म-बिम्बुता-नी प्रिय में
साहाय्य मुग वाली है फिर उसे प्रिय में परिचय की आकांक्षा नहीं रहती 'तुम मुझमें
प्रिय फिर परिचय क्या ? मुग-मुगाग्र स पूरक अस्तित्व के अमभाव म पदी 'यप इय
बिना ही रैन में प्रिय बहूबानी नहीं का करन बिना करने वाली आत्मा मारे गाने-बाने
कुनवर बातों की एकता को लमभने लगती है और निरागा के 'तुम लय हिमायव श्रुय
और में अचल-गति मुर-अग्नि' के समान करने लगती है—'बीन भी हूँ मुग्धागी रागिनी
भी हूँ ।' और

चिञ्चल तु मैं हूँ रेखा अम
मयूर राग तु, मैं स्वर संगम
तु अमोघ मैं सीमा का अय
बापा छया में रहस्य में
प्रयति प्रियत्व का अविनय क्या ?

विरह की यही बड़ी अमावस्या है जो कुल-कुल विरह-मिथन आत्मा-नरमात्मा

में भेद नहीं रहता है। अनूठा आरामदायक ममत्व बेदनार्णहर सेना है।

विरह की घड़ियाँ हुईं जलि
मधुर मधु की मासिनी-सी।
पिल्लन का मत नाम ले
मैं विरह में बिर हूँ।
हो गई आराध्यमय में
विरह की आराधना ले।

बीपतिव्या में मासिका की प्रम-आधना सर्वोच्च धितर पर पहुँच गई है। यह साधना तीन कथा में परिणतित होनी है—

पहला रूप है बीपक की तरह जपने की भावना। विरह राशि को प्रकाशित करने के प्रिय के समीप पहुँचने के लिए ही जैन बहु बीपतिव्यावन् गिन-तिन करके जम रही है।

धूप-सा तन, बीप-सी मैं
जा रही अद्विराम मिट-मिट
रबबल और समीप-सी मैं।

बहु यह बिना क्यों करें कि मियन कब होना ? प्रभात को पाना उनका लक्ष्य ही नहीं है। वह तो प्रभाती तक अनवरत जमती रहना चाहती है—

मैं क्यों हुईं यह विरह निरा
बिजली बीती क्या शेष रही ?

दूसरी विमपता कठगा-म्लिख को से कल-कण को आशुच प्रधान करना है। पीड़ा-अस्तित्व उनका हृदय इतना मजबूतगील हो गया है कि बहु दूधरे की कथा को सहज ही हृदयंगम कर लेती है—

अलि मैं कल-कण को आन बली
लबका कल्पन पहचान बली।

उनकी सच्ची पलका से ममता छसक उसककर कण-कण में बिलर गई है बेदनाधु बहाँ भी गिरे वहाँ की धूल पवित्र हो गई।

इन बीकों के रस मैं पीली
रज भी है बिब से गर्बीली
दुल से बचल दुल से बोमिल
कण-कण का बीबल आन बली
पिड़ने को छर बिर्वाण बली।

तीसरी विरोपता है मिय से प्रेरणा और मिसल-सकनों का मिलना। अपनी विरहातुष्टि में उन्हें प्रिय से प्रेरणा मिल रही है और मिसल-सकने भी जिसमें कवयित्री को अतीव दक्षिण मिलती है। बहु अपनी बचभानुनति को बिब के कल-कल के माधुम से उस अनन्त निकटवर्ष के चरणों तक पहुँचा रही है। ऐसी भावना के पद पर घूम अज्ञान धूल जगन्त का समान लय रही है प्रिय की मुग्धि से सानि सुग्धित हा गई है प्रम-बाती

जल गही है तबन अब्बु बहाकर अभियुक्त कर रहे हैं निस्सन्देह साधना-भागकी यह वेदना बड़ी सख्त और मधुर है—

हुए गूल अलत, मुझे ब्रूति चन्दन
अगह-सुम-मी साँस पम्ब-सुरमित
बनी स्नेह लौ भारती बिर अकम्पित
हुमानयन का नीर अभियुक्त कलकषा

साधनात्मक दृष्टि में ज्यों-ज्यों प्रियतम और साधिका के बीच की दूरी घट रही है भाग्यमान हो रहा है ज्यों-ज्यों विमल की उत्कण्ठा और तन्मयित व्याकुलता भी तीव्र होगी जा रही है दूरी कम हुई तो पीड़ा बहुत अधिक बढ़ गई है—सबसे प्रतीक्षा के कुछ क्षण भी युग कल्प-से मग रह है। बस एक सकेत ही विमल-अकेत के लिए उनके प्राण घात मत बार मजबम रहे हैं—

अगतहोन बिभाबरी है
पास अगारक तरी है
तिमिर की लटिनी कितिन की कूस रेल उबा भगी है।
गिबिल कर से सुभग
सुबि पतवार मात्र बिछड़ चुका है
अब कहो सग्देस है क्या ?
और इबास बिग्यव है क्या ?
अजि-यव के पार—अगहन
बाबनी का देस है क्या ?
एक इहित के लिए
दान बार प्राण मजबल चुका है।

अह यह सखत म भी विना हो फिर भी बहु पून बिस्वास व साथ घट मागी रही

१—

रात-सी भीरब इप्या
तन सी अगम मेरी बहानी
खेरी है पुन मुनहसे
बाँसुओं का लजिब पापी
स्वाम कर डेगी है
तु प्राण की मसकान !

प्राय महादेवीजी का अतीविक प्रेम की कविताओं और फिर पीड़ा के कारण किमल-पान भावुकता रहित और अनुभूतिमय होने का आरोप लगाया गया है। जबकि हम 'मोहारे' ग सेकर 'दोपनिगा' तक का भी अनुभूति का एक पीका नहीं गेगते। 'दोपनिगा' के लीसे से भी यहाँ किमल उच्छ हो गया है अनुभूति और भावुकता का भावना और भी अधिक नीच गेकर आया है।

ज्यों-ज्यों अनुभव कायपद आरोपित भावना का सम्बन्ध उत्तर अंगन काकर-अप्या

की भूमिकाओं में दिया है। अनुभूति की समर्पणा के सम्बन्ध का निवारण भी काव्य के द्वारा ही किया है। सर्वप्रथम तो बहु सौगों की धारणा पर विस्मिप्त है—

जाने क्यों कहता है कोई
 मैं तम की उलझन में कोई ?
 मैं कब-कब में डाल रही प्रति
 जातू के मित प्यार किसी का,
 मैं पलकों में पाऊ रही हूँ
 यह सपना सुकुमार किसी का।

इस पर भी बह आलोचकों की बटमूल धारणाएँ नहीं बरसी उगहोने उनसे
 अत्यन्त सहज भाव से अपने अनुभवों का कोई समाधान माँगा—

जो न प्रिय पशुधान पाती।
 बौझती क्यों प्रति पिरा में
 प्यास बिछतू-सी तरल बन ?
 क्यों अचेतन रोम पाले चिर
 व्यथामय सजग जीवन ?
 किस लिए हर सीत तम में
 सजल दीपक राव गाती ?
 मेघ-पथ में चिह्न बिछतू के
 नाएँ जो छोड़ प्रिय पर
 जो न जनकी चाप का मैं
 जानती लम्बे-लम्बे चम्मच।
 किस लिए पावस नवन में
 प्राण में चातक बसाती ?

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उनके एकाकी और बेरनामय जीवन का कारण
 सुख और दुःसाह का अभाव नहीं है। कोई गहरी अनुभूति है जिसने उनसे 'यामा' और
 'दीपधिया' जैसी सजल कृतियों की सृष्टि करवा भी है। पर उस अनुभूति को स्वस
 पारिस्थितिक बर्ष में लेना सुसम्भूत और संयत तपस्विनी के प्रति जोर अपराध होया।
 कबचित्री होने के कारण पुण्य कवि की तरह उनका प्रणय निवेदन स्वभावतः ऐन्द्रिय
 रोमानी असंयत और मुक्त नही है। वह स्वकीय की भावना लिये हुए संयत और
 गार्हस्थिक-सा परब्रह्म के प्रति अपारिणय प्रणय-निवेदन है। उसमें प्रच्छन्न रूप से प्रारम्भिक
 प्रणय का स्पन्दन भरे ही ही किन्तु उसकी ऐन्द्रियता सूक्ष्म से सूक्ष्मतरम होती हुई
 अतीन्द्रियता में परिणत हो गई है अर्थात् उसका उदात्तीकरण हो गया है। इसीलिए
 'नीहार' में कही-कही म्लान करने वाला लौकिक प्रेम पीड़ा के प्रयुक्त मार्ग से चलकर
 'दीपधिया' तक जाते-जाते मस्कारिष्ठ होकर आध्यात्मिक ऊँचाई तक पहुँच गया है और
 व्यक्तिगत पीड़ा को शोक-व्यापी बनाता हुआ सुख-दुःख का सामंजस्य करता रहा है।

पुस्तक-सूची
परिशिष्ट

कृतियाँ

(क) काव्य

- १ भीष्म [१९३०], १९२४ १९२८ के गीत संख्या ४०
- २ रत्न [१९३२] १९२८ १९३१ के गीत संख्या ३२
- ३ भीष्म [१९३२] १९३१ १९३४ के गीत संख्या २८
- ४ सायब गीत [१९३६] १९३४ १९३६ के गीत संख्या ४२
- ५ दीपिका [१९४२] १९३६ १९४२ के गीत संख्या २१
- ६ सप्तपर्वा [१९६०], काव्यानुवाद
- ७ लम्बिनी [१९६२] विविध गीतों का संग्रह संख्या ६२

(ख) गद्य

- ७ अलीन के अलखि [१९४१] १९३० १९३९ कुल ११
- ८ कृति की रत्ना [१९४२] कुल ७
- ९ श्रुतता की कविता [१९४८] संग १९३१ १९३७ कुल ११
- १० पत्र के साथी [१९४६] रत्नाखि कुल ७
- ११ लक्ष्मी [१९४६] निबन्ध कुल १७
- १२ विवेकनाथक गद्य [१९४४] आलोचना
- १३ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध [१९६२], आलोचना

आलोचनात्मक साहित्य

- १४ महादेवी की रत्न-आपना विश्वम्भर 'मानव'
- १५ महादेवी वर्मा अन्वयानुसूचक कुमार विमल
- १६ महादेवी अभिनन्दन गण्ड
- १७ आधुनिक कविता का अन्वयानुसूचक : अन्वयानुसूचक

- १८ छायाबाब नामचरसिंह
- १९ महादेवी कर्मा संग्रहालयाचे पाठ्य
- २० छायाबाब पुनर्मुद्रणार्थ श्री सुमित्रानन्दन पन्थ
- २१ महादेवी श्री काम्य-साधना मत्पथान् शुभ'
- २२ हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी मन्मदुनारे बाबपयी
- २३ विचार और अनुभूति मगध

